ब्रह्मचर्य एवं 84 लाख उत्तरगुण मंत्र विधान

लेखक : प.पू. आचार्य १०८ श्री वासुपूज्यसागरजी महाराज

अतिशयकारी भगवान पार्श्वनाथ, काशीपुर

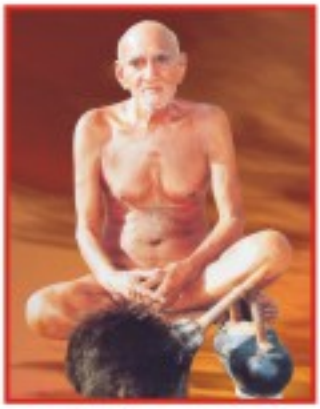

समाधि सम्राट वात्सल्य रत्नाकर
आचार्य श्री 108 विमलसागर जी महाराज

समाधि सम्राट आचार्य
श्री 108 पार्श्वसागर जी महाराज (कोटला वाले)

अध्यात्म योगी 84 लाख मंत्र लेखनकर्ता बा.ब्र. परम पूज्य

आचार्य श्री 108 वासुपूज्य सागर जी महाराज

परम पूज्य आचार्य श्री १०८ पार्श्वसागर जी महाराज का जीवन परिचय

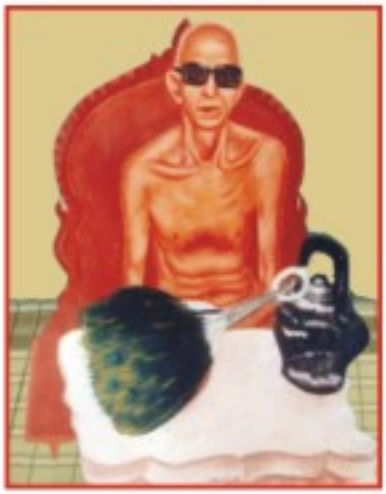

जन्म नाम	राजेन्द्रकुमारजी
जन्मस्थान	कोटला (फिरोजाबाद, यू.पी.)
जन्म तिथि	कार्तिक सुदी ६ वि.सं. १९७२ शनिवार
माता	श्रीमति जानकीबाई
पिता	श्री रामस्वरूपजी
जाति	पद्मावती पोरवाल
सप्तम प्रतिमा	फाल्गुन सुंदी १२ वि. सं. २०१६ ता. १२-११- १९५९ पन्ना में
क्षुल्लक दीक्षा	फाल्गुन सुदी १४ वि.सं २०१६ ता. १२-३-१९६०
क्षुल्लक नाम	बाहुबलीसागरजी
मुनिदीक्षा	सावन सुदी ८ सं. २०१८ शनिवार ता. १९-८-१९६१
मुनि नाम	पार्श्वसागरजी
आचार्य पद	आ. विमलसागरजी से, सागवाड़ा (राजस्थान) ता. ६-१२-१९७९
समाधि	आषाढ़ वदी एकम् सन १९८८

परम पूज्य आचार्य
श्री १०८ वासुपूज्य सागर जी महाराज का संक्षिप्त जीवन परिचय

गृहस्थ नाम	दयाचन्द्र
जन्म स्थान	महेबा, जिला पन्ना (म.प्र.)
जन्म तारीख	संवत 2011 मार्गशीर्ष कृ. 3 शनिवार 13.11.1954
पिता का नाम	श्री कालीचरण जी जैन
माता का नाम	श्रीमती रामा देवी (स्व. आर्यिका श्रेणीमती माता जी)
जाति व शिक्षा	समस्त सिद्धान्त न्याय व्याकरण (जाति गोलालारे)
भाषा ज्ञान	हिन्दी, संस्कृत, प्राकृत, कन्नड़, मराठी, गुजराती, बुन्देलखण्डी आदि
ब्रह्मचर्य व्रत	18 वर्ष की आयु में सन् 1973
सप्तम प्रतिमा	अवागढ़ (एटा) में सन् 1974, श्रावण सुदी सप्तमी
मुनि दीक्षा	सन् 1976 मार्गशीर्ष शुक्ला दशमी
दीक्षा स्थान	सागवाड़ा, जिला डूंगरपुर (राज.)
दीक्षा गुरु	समाधिस्थ आचार्य श्री पार्श्वसागर जी महाराज (कोटला वाले)
आचार्य पद	सन् 1988 अक्षय तृतीया (वसगड़े जि. कोल्हापुर, महा.)
प्रा. व प्रौढ़ शिक्षा गुरु	प. प्यारेलाल जी व प. पन्नालाल जी उदयपुर वाले
भाई-बहन	तीन भाई एवं तीन बहन
अब तक विहार	राजस्थान, गुजरात, महाराष्ट्र, कर्नाटक, मध्यप्रदेश, बिहार, बंगाल, उड़ीसा, उत्तर प्रदेश, उत्तराखण्ड

परम पूज्य आर्यिका १०५ श्री श्रेयमती माताजी का जीवन परिचय

जन्म नाम	यशवन्ति कुमारी जैन
जन्म स्थान	पाडवा, जिला-डूंगरपुर (राज.)
पिता	श्रीमान हीरालाल जी जैन
माता	श्रीमती केशर बेन जैन
ब्रह्मचर्य व्रत	तपस्वी सम्राट आचार्य श्री सन्मतिसार जी से
दीक्षा गुरु	आ. श्री वासुपूज्य सागर जी महाराज
दीक्षा स्थान	गांधी नगर (गुजरात)
दीक्षा तारीख	सन् 1993, रक्षाबंधन
भाई-बहन	तीन भाई, तीन बहन

कर्मयोगी क्षुल्लकरत्न १०५ श्री समर्पणसागर जी महाराज का जीवन परिचय

जन्म नाम	भरत जैन (सोनू)
जन्म तारीख	28 नवम्बर 1971
जन्म स्थान	धुलिया (महाराष्ट्र)
पिता	स्व. श्रीमान वीरचन्द जी जैन (ज्योतिषाचार्य)
माता	श्रीमती विमला देवी जैन
दीक्षा गुरु	आ. श्री निर्मलसागर जी महाराज
दीक्षा स्थान	सूरत (गुजरात)
दीक्षा तारीख	22 अक्टूबर 1989
भाई-बहन	तीन भाई, एक बहन

परम पूज्य प्रथम संघस्थ समाधिस्थ आर्यिका १०५ श्री श्रेणीमती माताजी का जीवन परिचय

जन्म नाम	रामा बाई
जन्म स्थान	बंदिया
जन्म संवत्	1972
पिता का नाम	श्रीमान् लक्ष्मण जी
माता का नाम	श्रीमती छबरानी जी
दीक्षा तारीख	सन् 1998 रक्षा बंधन पर भागलपुर (बिहार) में
दीक्षा गुरु	आचार्य श्री वासुपूज्य सागर जी महाराज
समाधि स्थल	आरा (बिहार)
तिथि	आसोज वदी अष्टमी सन् 2003

परम पूज्य द्वितीय संघस्थ समाधिस्थ आर्यिका १०५ श्री श्रेणीमती माताजी का जीवन परिचय

जन्म नाम	श्रीमती शान्ति बाई
गृहस्थ पति	स्व. श्री ओंकारमल जी जैन
माता	श्रीमती कस्तूरीबाई
पिता	श्री दोहाचन्द जी
जन्म स्थान	पाड़वा, जिला-डूंगरपुर (राजस्थान)
ससुराल	रठौड़ा, जिला-उदयपुर (राजस्थान)
भाई-बहन	तीन
सप्तम प्रतिमा	2003 विजयदशमी
दीक्षा गुरु	आ. श्री वासुपूज्य सागर जी महाराज
दीक्षा स्थान	बनारस (उ.प्र.) 2004 बसन्त पंचमी

बा.ब्र. सुगन्ध भैया जी का जीवन परिचय

जन्म नाम	सुगन्ध कुमार जैन
जन्म स्थान	पाडवा, जिला-डूंगरपुर (राज.)
जन्म तारीख	30 दिसम्बर 1973
पिता	श्रीमान हीरालाल जी जैन (जोदावत)
माता	श्रीमती केशर बेन जैन
ब्रह्मचर्य व्रत	आश्विन शुक्ला चौदस (सम्मेद शिखरजी में) 25.10.1997 में
भाई-बहन	तीन भाई, तीन बहन
सातवीं प्रतिमा	रक्षाबंधन, भागलपुर, बिहार (1998)

ब्र. मुकेश भैया जी का जीवन परिचय

जन्म नाम	मुकेश कुमार जैन
जन्म स्थान	मंगलौर, जिला सहारनपुर, उ.प्र.
जन्म तारीख	30 दिसम्बर 1962
पिता का नाम	श्री मोहन लाल जैन
माता का नाम	श्रीमती राजबाला जैन
भाई-बहन	(दो) भाई एवं (चार) बहन
पत्नी का नाम	श्रीमती स्नेहा जैन
बच्चों के नाम	(दो) मनीष जैन व अवनीश जैन
ब्रह्मचर्य व्रत	22.4.2010 आचार्य श्री विमलसागर जी महावीर जी (राज.)
प्रतिमा	दो (पूर्णिमा 22/10/10) आचार्य श्री वासुपूज्यसागर जी महाराज, पार्श्व विहार, दिल्ली

बा.ब्र. नेहल दीदी का जीवन परिचय

जन्म नाम	नेहल जैन
जन्म स्थान	ईडर (गुजरात)
जन्म तारीख	14.06.1973
पिता	श्री चन्द्रकान्त जैन (दोशी)
माता	श्रीमती कुसुम जैन (दोशी)
ब्रह्मचर्य व्रत	02.09.1991
दीक्षा गुरु	आ. श्री वासुपूज्य सागर जी महाराज
भाई-बहन	दो भाई, तीन बहन
पांचवी प्रतिमा	महेबा, चातुर्मास 1995

बा.ब्र. गुंजा बहन का जीवन परिचय

जन्म नाम	गुंजा बेन
जन्म स्थान	टिकैत नगर (उ.प्र.)
शिक्षा	11वीं
पिता	श्री राजेश चन्द्र जैन
माता	श्रीमती मधु जैन
ब्रह्मचर्य व्रत	30.1.2007 मुरादाबाद
दीक्षा गुरु	आ. श्री वासुपूज्य सागर जी महाराज
भाई-बहन	एक भाई, चार बहन

बा. ब्र. सुगन्ध भैय्याजी के भजनों की वीडियो सीडी

पंचम वीडियो सीडी

नमनकर्ता :

श्री पंडित रतनचन्दजी जैन, रामपुर (सपरिवार) उत्तर प्रदेश

षष्टम् वीडियो सीडी

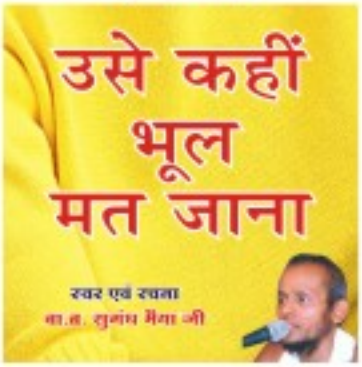

नमनकर्ता :

श्री दिगम्बर जैन समाज, काशीपुर, उत्तराखण्ड

भैय्याजी के भजनों की चतुर्थ वीडियो सी. डी.
बनवाने का सौभाग्य मिला

श्री मुकेशजी कीर्ति जैन

पंचमहल, पटपड़गंज, दिल्ली

मुनि बिना मोक्ष नहीं

चतुर्थ विडियो सी.डी.

स्वर एवं रचना
बा.ब्र. सुगंध भैया जी
संघस्थ

संघस्थ-प्रकाशक अन्य ग्रन्थ

गूढ़ रहस्य चिंतामणि

लेखक : आचार्य वासुपूज्य सागर जी महाराज

आन्तरिक पीड़ा दिग्दर्शन

लेखक : आचार्य वासुपूज्य सागर जी महाराज

छहढाला सुरक्षाचक्र ज्ञानवर्धिनी प्रश्नोत्तरी टीका

लेखक : आचार्य वासुपूज्य सागर जी महाराज

चतुर्विंशति निर्वाण भक्ति

लेखिका : आर्यिका श्रेयसमती माताजी

भक्ति संगीत की लहरें

रचना : ब्र.ह. सुलभ भैया जी

भक्ति संगीत वर्तमान के गीत

रचना : ब्र.ह. सुलभ भैया जी

प्रथम सी.डी.

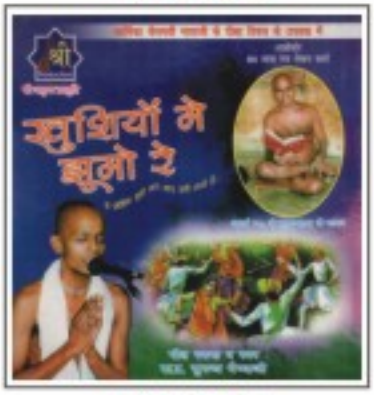

खुशियों में झूमों रे

राजन जैन एवं अनिता जैन
हल्द्वानी

द्वितीय सी.डी.

मंदिर में बजे शहनाई

राजन जैन एवं अनिता जैन, हल्द्वानी
विमल जैन, लता जैन, हल्द्वानी

तृतीय सी.डी.

देखो बदला जमाना कितना

श्रीमान हीरालाल जी एवं केशर बेन जैन,
कान्तिलाल जी जैन प्रेमलता जैन
विजय कुमार जी प्रेमलता जैन 'घाड़वा'
जिला डूंगरपुर (राजस्थान)

ग्रन्थ प्रकाशक

पुष्पेन्द्र कुमार जैन-सुषमा जैन , अमित जैन- मीतू जैन, रजत जैन-श्वेता जैन

श्री महावीर पैकेजिंग इन्डस्ट्रीज
आदर्श सेल्स कॉर्पोरेशन

काशीपुर (उत्तराखण्ड)

श्री सुखवीर सिंह, योगेशजी जैन (नावला वाले)
हिमालय सरिया, काशीपुर (उत्तराखण्ड)

श्री विकासजी अन्जु जैन
विश्वकर्मा पेपर मिल,
रामनगर रोड, काशीपुर (उत्तराखण्ड)

पं० रतनचन्दजी जैन,
रामपुर (उ० प्र०)

देवेन्द्र कुमार जैन-ममता जैन, असित जैन-तन्वी जैन, आदर्श जैन

आदर्श इलैक्ट्रिक प्रिंटिंग प्रेस

रामनगर रोड, काशीपुर (उत्तराखण्ड)

पू० आर्यिका श्रेयमती माताजी के जन्मदिवस पर खुशीयां मनाते बच्चें

प्रवचन करते आचार्य श्री

प्रवचन सुनते श्रावक श्राविकायें

श्री श्रेयमती माताजी

बा० ब्र० सुगन्ध भैय्याजी द्वारा रचित विधान मण्डल की रचनायें काँच व मोतियों से बने मण्डल

84 लाख उत्तरगुण मंत्र विधान

84 लाख उत्तरगुण मंत्र विधान

नौ मण्डल रचना एक साथ

अष्टापद (बद्रीनाथ) यात्रा की झलकियाँ

ये है वात्सल्य का प्रतिक
आचार्य वासुपूज्य सागर जी
एवं आचार्य पुष्पदन्त सागर जी
का मिलन

चर्चारत युगल आचार्य

कलकत्ता महानगर में तीन
आचार्यों का मिलन
आ. सम्भव सागरजी
आ. वासुपूज्य सागरजी
आ. पुष्पदन्त सागरजी

आचार्य श्री का जीवन परिचय, गुरू परिचय, संघ परिचय, प्रमुख ग्रन्थ एवं रचनायें चातुर्मास दिवस, भजन, प्रवचन एवं साहित्य की जानकारी के लिए

लॉग ऑन करें

www.vasupujyasagarji.com

अष्टापद (बद्रीनाथ) यात्रा की झलकियाँ

ब्रह्मचर्य
एवं
८४ लाख उत्तरगुण मंत्र
विधान

लेखक
परमपूज्य आचार्य १०८ श्री पार्श्वसागरजी (कोटलावाले)
के प्रथम और परम शिष्य
बा. ब्र. आचार्य १०८ श्री वासुपूज्यसागरजी महाराज

प्रथम संस्करण के सम्पादक संशोधक
पं. प्यारेलालजी-पं. पन्नालालजी उदयपुर
द्वितीय संस्करण की संपादिका संशोधिका
बा.ब्र. भाग्याजी (बा. ब्र. नेहलजी)
प्राप्ति स्थान
परम पूज्य आचार्य श्री १०८ वासुपूज्य सागरजी महाराज संघ
मूल्य
अपने जीवन में उतारना

मुख्य पृष्ट के चित्र का परिचय

इस चित्र में नीचे जाली बिछी हुई है जाली के चारों ओर गोलाकार चक्र हैं जो वातवलयों के सूचक हैं। जाली के नीचे भाग में निगोद राशि का स्थान है जिसमें नित्यनिगोद और इतरनिगोद जीव रहते हैं। जो एक श्वास में १८ बार जन्म मरण के दुःखों को और सदा कर्मफल चेतना को ही भोगते हैं। इसके ऊपर कुछ ही दूर पर जाली में दायें हाथ में बिच्छू और बायें हाथ में सर्प का तथा शस्त्रों के चिह्न हैं जो नरकों की सूचना दे रहे हैं। नारकी जीव परस्पर में अपृथक् विक्रिया विषैले जंतु रूप या शस्त्र रूप में करके कष्ट देते हैं, चीरते हैं, फाड़ते हैं, जलाते हैं, पकाते हैं, घसीटते हैं, गरम गरम पानी पिलाते हैं और पुतलियों से चिपकाते हैं आदि। ऐसा क्यों करते हैं? जिन मनुष्यों ने यहाँ पर जिनके साथ जैसे कुकर्म किये हैं वैसे ही नरक में उन्हीं जीवों के द्वारा स्वयं उनको कष्ट दिये जाते हैं तीसरे नरक तक नारद की तरह अंबरीशादि भवनवासी देव पूर्वभव की याद दिलाकर परस्पर में बदला चुकवाने का काम करते हैं। मध्य में कमर के पास तितली और रत्नों की माला है, स्त्री पुत्रों का चित्र है जिसमें संसारी मिथ्यादृष्टि मोही प्राणी अपने धर्म और समीचीन लक्ष्य को भूलकर चेतन और अचेतन सामग्री में रमण कर, रौद्रध्यान करके मरणकर नरकों में जा पड़ता है। इसी प्रकार १२वें स्वर्ग तक के देव कनक कामनी के मोह में पड़कर अंत में दुर्ध्यान से मरण कर मनुष्यगति और तिर्यंचगति में जन्म लेकर इंद्रियजन्य सुखों को तथा दुःखों को भोगकर बाद में मरण कर नरक में जा पड़ते हैं। बीच में जो एक रेखा है वह प्रारंभ में एकदम नीले रंग की पतली है बाद में कुछ कुछ मोटी होती हुई कमर तक आई पुनः बाद में ऊपर ऊपर पतली होती गई है इसका मतलब यह है कि निगोद अवस्था में कषाय कम मात्रा में रहती है और आगे आगे हीनाधिक होती हुई चली आई अंत में समाप्त हो गई। निष्कर्ष यह है कि जिन जीवों ने मनुष्य पर्याय पाकर आत्म साधना की वे क्रमशः कषायों को, कर्मों को क्षय करते हुए आगे बढ़े और यहाँ तक बढ़े कि ॐ के ऊपर जो अर्ध चंद्राकार में बिंदु है उस अर्धचंद्राकार के समान सिद्धशिला और बिंदु के उपरिम भाग के समान अंतिम तनुवातवलय तथा धर्म द्रव्य, अधर्म द्रव्य, आकाश द्रव्य, काल द्रव्य का जहाँ जिस प्रदेश पर लोक का अंत है वहाँ सिद्धक्षेत्र में सिद्ध जीव जा विराजमान हुए। अतः चित्र को अच्छी तरह से समझकर, मन में धारण कर विषय कषायों से, आरंभ परिग्रह से, ख्याति पूजा लाभ से विमुख होकर संयम सहित आत्म साधना करके मोक्ष प्राप्त कर लेना चाहिए क्योंकि प्रत्येक प्राणी का लक्ष्य ही सुख प्राप्ति का है। अतः चित्र परिचय के ध्यान का यही फल है तथा अंतिम लक्ष्य भी समस्त प्राणियों का यही होना चाहिए।

इत्यलम् सर्वेषु प्राणिनां भद्रं भूयात्।

प०पू० आ० श्री १०८ पार्श्वसागरजी का परिचय

ॐ नमः

अष्ट कर्म को नष्ट कर, शुद्ध अष्ट गुणपाय।
भए सिद्ध निज ध्यान में, नमूं मोक्ष सुखदाय।।
दया रूप जिनवाणि को, गुरु अरिहंत महन्त।
नमों पार्श्वगुरु संत को, स्व पर को तारन्त।।

कार्तिक सुदी ७ वि. सं. १९७२ दिन शनिवार श्रवण नक्षत्र गंडयोग में जन्मे परम पूज्य आचार्य परमेष्ठी श्री १०८ पार्श्वसागरजी महाराज (कोटला यू.पी. वालों) का जीवन परिचय

परिचयः जाति पड्डावती पोरवाल, जिला फिरोजाबाद से उत्तरदिशा में कोटला गाँव में श्रावकों के १०-१२ घर हैं उसमें एक श्रावक दंपति रामस्वरूपजी और जानकी बाई थीं जिनकी कूख से पुत्र रत्न राजेन्द्रकुमार का जन्म हुआ। बुद्धि की तीव्रता होने से थोड़े ही समय में मिडिल पास कर विश्वविद्यालय मुरेना में जैनदर्शन, व्याकरणादि शिक्षण के लिए गये परंतु पापोदय से पिताजी की मृत्यु ३७ वर्ष की अवस्था में हो गई तो मुरेना छोड़कर घर चले गये उस समय से आपका मन संसार से उदास ही रहता था, पर माँ की सेवा के लिए आप घर में रहकर ब्रह्मचर्य का पालन कर न्यायनीति से व्यापार करने लगे। ४४ वर्ष की अवस्था तक माँ के साथ रहकर सेवा करके माँ की समाधी कराई। समाधि कराने के बाद थोड़े ही समय तक घर में रहे।

वैराग्य का कारण : पर्यूषण पर्व की चतुर्दशी के दिन उपवास किया था। प्रातःकाल की दिनचर्या और अभिषेक पूजन करने के बाद में अपने घर पर चटाई बिछाकर लेटे थे किंतु भाग्यवश स्वप्न में दो जंगली सुअर आमने सामने खाने के लिए आक्रमण करते हैं। इसमें एक ने तो कंधे पर पैर रखकर खाने की कोशिश की और दूसरा पुनः खाने के लिए झपटता है। इतने ही में नींद खुल जाती है, शरीर कांप जाता है। देखते हैं न यहाँ सुअर है न यहाँ कुछ है। मैंने तो उपवास किया है, यह तो निद्रा के कारण स्वप्न आया है जैसे स्वप्न में सुअर ने आक्रमण किया है वैसे ही मेरा जीवन व्यर्थ में जा रहा है, नष्ट हो रहा है। अतः अब आत्मकल्याण करना चाहिए ऐसा निश्चय कर जिसका कर्ज देना था वह सामान बेंचकर कर्ज चुकता कर फरिहा जाकर पं. भगवत् स्वरूपजी से मुहूर्त निकलवा कर सूतक के दिनों में ही गृह त्याग कर पन्ना चातुर्मास में १८ भाषाविज्ञ घोर उपसर्ग विजेता आचार्य महावीरकीर्तिजी के प्रथम और मुख्य शिष्य विमलसागरजी के पास आकर के तीसरे ही दिन कार्तिक सुदी १२ वि.सं. २०१६ गुरुवार ता. १२/११/५९ को सातवीं प्रतिमा ली नाम पार्श्वकीर्ति रखा। विहार कर फाल्गुन सुदी १४ को वि. सं. २०१६ में शनिवार ता. १२/३/६० को सोनागिरि सिद्धक्षेत्र में जाकर क्षुल्लक दीक्षा ली नाम बाहुबलिसागर रखा। वि. सं. २०१७ का चातुर्मास टूंडला चौराहा में किया बाद

में अनेक शहरों देहातों में विहार करके मेरठ चातुर्मास में सावन सुदी ७ वि. सं. २०१८ शनिवार तारीख १८/८/६१ को मुनिदीक्षा हुई नाम पार्श्वसागर रखा। गुरु के पास रहकर ११ वर्ष तक गहन रूप से अध्ययन और तपश्चरण कर हर कार्य में समर्थ होकर धर्म प्रभावना तथा आत्मबल बढ़ाने के लिए गुरु आज्ञा लेकर गुरु से अलग विहार कर सैकड़ों व्रती बनाये, दीक्षायें दीं तथा अनेकों को अवस्थानुसार पापों का त्याग कराकर धर्म के मार्ग में लगाया। आपने १२ दीक्षायें दीं जिसमें ३ मुनि दीक्षा, ३ आर्यिका दीक्षा, ३ ऐलक दीक्षा, दो क्षुल्लक दीक्षा, एक क्षुल्लिका दीक्षा। सागवाड़ा चातुर्मास में वि. सं. २०३६ सन् ६/१२/१९७९ मगसिर में आचार्य विमलसागरजी महाराज ने श्रावक के साथ में आचार्य पद के लिए पत्र सहित पीछी, शास्त्र और मुहूर्त भेजा तथा आ. श्री विमलसागरजी की आज्ञानुसार चतुर्विध मुनिसंघ ने सागवाड़ा (राजस्थान) समाज की साक्षी सागवाड़ा में आचार्यपद दिया। चतुर्विध संघ के नाम मुनि श्री वासुपूज्यसागर, मुनि उदयकीर्ति, आर्यिका सरस्वती माताजी, सुपार्श्वमतिजी, ऐलक अनंतसागर, वैराग्यसागर, त्रिलोकसागर, क्षु.आनन्दसागरजी तथा अनेक त्यागीव्रती मौजूद थे।

प. पू. आ. श्री पार्श्वसागरजी महाराज ने श्री मुक्तागिरि सिद्धक्षेत्र में सन् ८१ फाल्गुन सुदी १४ के दिन १२ वर्ष की समाधि का नियम लिया तथा सन् ८५ में श्री श्रवणबेलगोला में चार रस का त्याग तो पहले से ही था किंतु यहाँ पर दूध बूरा (शक्कर) का भी आजन्म त्याग किया फिर सन् ८८ में महावीर जयन्ती के दिन मुनि अमृतसागरजी की समाधि के उपरांत धान्य का भी त्याग कर दिया।

प्र.१-एक दिन मैंने पूंछा कि महाराजजी समाज में प्रत्येक जगह झगड़े चल रहे हैं तब समाज का क्या होगा?

उत्तर- समाज की बड़ी दुर्गति होने वाली है क्योंकि रोटी बेटी आचार विचार व्यवहार बिगड़ रहा है।

प्र.२-आजकल समाज के सदस्यगण सुधारकवादी अजैनों को जैन बनाने में लगे हैं तो क्या इस प्रयास में सफल होंगे या नहीं?

उत्तर- आजकल हजारों की संख्या में जैन अजैन बन रहे हैं इन जैनों को पुनः जैन बनाने का प्रयास तो करते नहीं हैं किंतु अजैनों को जैन बनाने का प्रयास कर रहे हैं जो पत्थर को पीसकर रोटी बनाने के समान है इससे तो मंदिरों में चोरियां बहुत होने लगेगीं तथा बेटी व्यवहार भी बिगड़ जायेगा।

प्र.३-समाधि के कुछ समय पहले मैंने पूंछा की भग.आरा. में लिखा है कि समाधि दूसरे संघ में जाकर करना चाहिए और आप तो अपने ही संघ में हो तब समाधि कैसे ठीक होगी, आर्त रौद्रध्यान होने से बिगड़ जायेगी?

उत्तर- जब हमने रसों का, धान्यों का तथा संघ का ही त्याग किया है तब समाधि कैसे बिगड़ेगी? अब तो शरीर ही छोड़ने वाले हैं और छोड़ी हुई वस्तु अपनी नहीं कहलाती अतः यह संघ हमारा है ऐसा प्रश्न ही पैदा नहीं होता है।

प्र.४-आप तो छोड़कर जाने वाले हैं पर अब हमारा क्या होगा, कौन सम्बोधन करेगा?

उत्तर- हम छोड़कर जानेवाले हैं तो क्या हुआ तुम्हारा रत्नत्रय तो तुमको छोड़कर जाने वाला नहीं है फिर क्या होगा ऐसा प्रश्न ही पैदा नहीं होता तथा तुम स्वयं बुद्धिबल से समर्थ हो। इस समय के बीच में हजारों प्रश्न किये। अब समाधि के अत्यंत निकट संबंधी विषय पर आते हैं २७/६/ ८८ ज्येष्ट सुदी १३ को सांयकाल सहर्ष अपने आप ही चंद्रप्रभ जिनेंद्र को साक्षी बनाकर अब आजन्म आहार पानी मट्ठा वगैरह का पूरा त्याग किया (यम समाधि ली)। बाहर अखंड णमोकार मंत्र का पाठ चालू है, समय बड़े प्रेम से गुजर रहा है। आषाढ़ वदी एकम के दिन सायंकाल के समय हमारे जंघे पर श्री आचार्यजी का शिर है, हम एक हाथ से नाड़ी पकड़े हुए हैं दूसरा हाथ शिर पर है। क्षु. सुरत्नसागरजी हृदय पर हाथ रखे हुए हैं। एक आर्यिका और क्षुल्लिका पैरों के पास में और ब्र. शान्ता और ब्र. रामबाई पास में बैठी हुई हैं ऊर्ध्व श्वास चालू हो गया है।

प्र.५-मैंने पूछा कोई तकलीफ है?

उत्तर- दोनों हाथ ऊपर उठाकर इशारा किया कोई कष्ट नहीं है।

प्र.६-प्रथम हिचकी आई तब मैंने कहा अब तो जीवन समाप्त होने वाला है माला छोड़ दो यह साथ में नहीं जायेगी?

उत्तर- तब धीरी आवाज में जवाब दिया कि यह माला साथ में नहीं जायेगी किंतु संस्कार साथ में जायेगा। बस इतना सुनकर बाहर जाकर लोगों को तैयार किया और कहा कि अब केवल दो हिचकी और आने वाली हैं जो मिनटों का समय है तुरंत ही अंदर आकर पूंछा महाराजजी क्या बात है। बोले कुछ नहीं। पुनः दूसरी हिचकी आई तब मैंने माला पकड़ ली और कहा अब तो माला छोड़ दो गुरुजी ने पुनः माला को दबा लिया और कहा नहीं छोड़ेंगे तीसरी हिचकी का आना, आँख का कम्पन बंद होना और मुँह से लार टपकना, नाड़ी कंपन बंद होना तथा हृदय का कंपन भी बंद हो गया।

यम सल्लेखना ग्रहण समयः-

द्वितीय ज्येष्ठ सुदी १३ सोमवार ता. २७-६-१९८८।

समाधिमरण तिथि-:

आषाढ़ वदी एकम गुरुवार ता. ३०-६-१९८८।

प. पू. आचार्य श्री १०८ पार्श्वसागरजी महाराज के
शिष्य प. पू. आचार्य श्री १०८ वासुपूज्यसागर

परमपूज्य आचार्य वासुपूज्यसागरजी महाराज का जीवन परिचय

मंगलाचरण

मंगलमय मंगल करन, उत्तम शरणाधार
वासुपूज्य गुरुराजजी, पार उतारन हार, गुरूजी
ज्ञायक हो चारों अनुयोग के, स्याद्वाद का सार
गर्भित पंच परमेष्ठी में, कर्मों का क्षयकार, गुरूजी
ऐसे वासुपूज्य गुरुराज की, मैं अज्ञानी शिष्या
चरणों में हूँ आपके, मुझे भी दीजिये तार, गुरूजी।

परिचय : मध्यप्रदेश में पन्ना जिले वालों को सौभाग्य प्राप्त हुआ कि जहाँ महेवा गाँव के सर्वश्रेष्ठ पुण्य पुरुषों में से एक श्रीमत्परमपूज्य त्रिकाल वंदनीय वर्तमान में शुद्ध दिगम्बर भेष, वस्त्र रहित, परम हंस के समान निर्ग्रंथ संन्यासी आचार्य मोक्षमार्ग पर चलने वाले न्याय, प्राकृत, व्याकरण, संस्कृत, आयुर्वेदिकादि विषयों के विद्वान, कन्नड, मराठी, गुजराती, हिंदी, वागड़ी, मेवाड़ी आदि भाषाओं के ज्ञाता, आध्यात्मयोगी बा. ब्र. परम शांतमूर्ति आ. रत्न १०८ श्री गुरुवर्य वासुपूज्य सागरजी का जन्म हुआ था। जिनका जीवन परिचय मैं अपनी अल्प बुद्धि के द्वारा सर्वप्रथम श्रद्धा पूर्वक दो शब्दों में लिखना चाहती हूँ। वे माता पिता धन्य हैं जिन्होंने ऐसे चारित्रवान साधु को जन्म दिया। आपकी माता का नाम रामादेवी पिता का नाम कालीचरण था। आपका मुनि अवस्था के पहले दयाचंद नाम था। आपका जैसा नाम था वैसा ही काम था। आपके ३ बहनें व ३ भाई हैं। इसमें आप तीसरे नंबर के हैं। आपका जन्म शुद्ध गोलालारे जैनजाति में हुआ है। आपका जन्म सं. २०११ मगशिर वदी ३ में हुआ। बाल्यावस्था से ही आपके सभी गुण स्पष्ट झलकने लगे थे। बाल्यावस्था में आप नाना प्रकार के खेल खेलते रहते थे पर किसी को सताते नहीं थे। आपके दयाचंद नाम में वैसे दया भी खूब भरी है। जब थोड़े बड़े हुए तो पढ़ने जाते थे, पढ़ने में भी बहुत होशियार थे। आपने लौकिक पढ़ाई ११वीं तक की हैं, साईंस बायोलॉजी के बड़े विद्वान थे। पुण्योदय से या पापकर्मों के क्षयोपशम से एकबार परम पूज्य आचार्य पार्श्वसागरजी संघ सहित महेवा गाँव में आये तब आप हमेशा आ. महाराजजी की वैय्यावृत्ति करने के लिए जाते थे उस समय आपका मन घर में लगता ही नहीं था, बस स्कूल से आते ही महाराजजी के पास चले जाते थे। एकबार महाराजजी ने आपको साथ में चलने को कहा तो आप तैयार हो गये पर परिवार वालों ने मोहवश आपको निकलने नहीं दिया तो आप हमेशा निकलने का उपाय सोचते रहते, आप का मन उदास रहता। आप पढ़ने जाते तो मध्याह्न की छुट्टी में तालाब के किनारे सामायिक को बैठ जाते। जब आ. श्री कुण्डलपुर में थे तब एकदिन आधी रात

को घर से निकल गये और ११ कि.मी. पैदल चले फिर अमानगंज से बस में बैठकर महाराजजी के पास कुंडलपुर दमोह आ गये तथा आकर आ. श्री पार्श्वसागरजी से आजीवन ब्रह्मचर्यव्रत ले लिया। सुबह होते ही परिवार वालों को मालूम पड़ा तो ढूंढ़ते हुए महाराज के पास आये तो आप वहीं थे। परिवार वालों का प्रेम आपके प्रति बहुत था सो वे बलात् आपको घर ले गये तो भी आप सबसे अलग रहने लगे। आपकी शादी करवाने की भी कोशिश की तो भी आप नहीं माने और भागकर वापस महाराज के पास में जाकर रहकर अच्छी तरह अध्ययन किया। आपने १८ वर्ष की आयु में ब्रह्मचर्यव्रत लिया सन् '७३ देवेंद्रनगर में दूसरी प्रतिमा सा. सु. ७ को ली तथा सन् '७४ अवागढ़ यु.पी. मुकुटसप्तमी के दिन ७वीं प्रतिमा ली और २२वें वर्ष में मुनिदीक्षा के लिए महाराजजी से प्रार्थना की तो आपको योग्य समझकर मुनिदीक्षा देने की स्वीकृति दी। जब सागवाड़ा जिला डूंगरपुर, राज. में आये तो दीक्षा देने का निश्चय किया तब साधुवर्ग ने कहा कि सीधी मुनिदीक्षा नहीं होगी क्योंकि २ महिने से टाईफोर्ड चल रहा है, डबलनिमोनिया है पर आप अटल रहे तो सबको आपकी बात माननी पड़ी सागवाड़ा में २०हजार जनसमूह में आपकी मुनिदीक्षा अगहन सुदी १०, वि.सं. २०३३ में हुई। आप दीक्षा लेकर गुरु के साथ विहार कर उदयपुर आये वहाँ पर पं. प्यारेलाल पं. पन्नालालजी ने आपको आध्यात्म और कर्मसिद्धांत ग्रंथों में प्रवेश कराया। आपको समझमें नहीं आता तो भी उसीमें लगे रहते फिर वहाँ से गुरु के साथ रहकर चारों अनुयोगों का गहरा अध्ययन किया। आप गुरु के साथ १५ वर्ष तक रहे। आपने गुरु को नहीं छोड़ा गुरु शिष्य का बाप बेटे के जैसा प्रेम था। गुरु का स्वास्थ्य जब खराब हो गया तो आपने तन मन से सेवा करने में पीछे नहीं हटते थे। स्वयं के स्वास्थ्य का ध्यान नहीं देते थे जब गुरु की समाधि का समय आया तो आपको आचार्य पद लेने को कहा तभी आपने मना किया। मना करने पर गुरु का दिल भर आया, उनकी आँखों में आँसू भर आये तो आपने सोचा कि अब मैं पद नहीं लूंगा तो समाधि बिगड़ जायेगी ऐसा सोचकर आपने कहा कि पद तो लेता हूँ पर जब तक आप हैं तब तक पहले नमोऽस्तु मैं ही आपको करूंगा। समाधि के बाद पद लूंगा तब आ. श्रीजी को संतोष हुआ और आपको आ. श्री ने अपने हाथ से सन् १९८८ में आचार्य पद वैशाख सुदी तीज वसगड़े महाराष्ट्र में प्रदान किया उस समय चतुर्विध मुनिसंघ, ३ भट्टारक और हजारों की संख्या में जैन श्रावक श्राविकायें मौजूद थे। आ. श्री की समाधि आषाढ़ वदी एकम को हुई। आचार्य श्री ने ३महिने पहले ही आचार्य पद छोड़ दिया था। आप अपने गुरु का गौरव रखते हुए गुरु को हृदय में धारणकर सुरक्षित रूप से संघ संचालन कर रहे हैं। आचार्य पद के बाद आपका विहार बड़े बड़े शहरों में हुआ। पूज्य आचार्य श्रीजी कठिन से कठिन चारित्र का पालन करते हैं।

चारित्र की काफी जागृति हो रही है। आप हमेशा ध्यानाध्ययन में तत्पर रहते हैं सम्यक्चारित्र की साक्षात् मूर्ति हैं। इस प्रकार आचार्य श्रीजी के प्रभाव से जैनधर्म की काफी प्रभावना हो रही है इस वर्तमान में ऐसे दिगंबर साधु प्राप्त होना बहुत कठिन हैं। आपके पास २५ व्यक्ति दीक्षा लेने आये पर अयोग्य समझकर दीक्षा नहीं दी। आप दीक्षार्थी से पहला प्रश्न करते हैं कि दीक्षा के बाद चंदा तो नहीं करोगे। ऐसा सुनते ही दीक्षार्थी का मन ढीला हो गया देखकर आप दीक्षा के लिए मना कर देते। आप सामायिक के समय साक्षात् वीतराग मूर्ति प्रतीत होते हैं ऐसे ज्ञानीध्यानी गुरु का मैं अपने मुख से वर्णन नहीं कर सकती हूँ लेकिन मैं गुरुदेव के चरणों में नतमस्तक होती हुई आशा करती हूँ कि आप जैसे आचार्य श्रीजी के चरणों में रहकर मेरा भी जीवन सफल बनें।

प. पू. आचार्य श्री वासुपूज्य सागरजी के लिए मैं अपने इन बौने हाथों से क्या लिखूं, क्या वर्णन करूँ। जितना वर्णन किया जाय गुरु के लिए उतना ही कम होता है और फिर मेरे पास तो इतने शब्द भी नहीं हैं फिर भी संक्षिप्त परिचय तो ऊपर दे ही दिया है, बाकी पहंचान तो वैसे होती है जैसेः-

शस्त्र की पहंचान धार से होती है।
वस्त्र की पहंचान तार से होती है।।
गुरुवर की पहंचान मेरी कलम से नहीं।
बल्कि उनके निकट में रहने से होती है।।

फिर भी कोशिश कर रही हूँ इसे कोई कल्पित न समझे, जो देखा, समझा, अनुभव किया वही लिखना चाहती हूँ इसमें कोई घमंड की बात भी नहीं है जो कुछ है वह सत्यार्थ है जो आपके सामने है। चंदन को जितना घिसा जाय उतनी ही अपनी सुगंधी को छोड़ता है वैसे ही आ. श्री की इस कृति का जितना वर्णन किया जाय उतना ही अपनी ज्ञान रूपी सुगंधी को छोड़ती है। आ. श्री ने अपनी इस कृति को इतनी तन्मयता से पूर्ण किया है कि जितना तीर्थंकरों ने, महापुरुषों ने उपसर्ग, परीषह की चिंता किये बिना अपने ध्यान रूपी कुठार के द्वारा कर्मों का क्षय कर सिद्धावस्था को प्राप्त करने में किया वैसे ही आ. श्री ने किसीकी परवाह न करते हुए जो लक्ष्य बनाया था सो वह पूर्ण करके ही अपनी कलम को विश्राम दिया जैसे चिंटी अपना लक्ष्य बनाती है फिर कोई कितना ही रोके वह नहीं रुकती अपने लक्ष्य को पूर्ण करती ही है। आ. श्री के लिखते समय भक्तगण कहते कि आ. श्री इतना बड़ा ग्रंथ कौन पढ़ेगा? इतनी मेहनत क्यों करते हो तब आ. श्री दृढ़ता के साथ कहते थे कि जब लिखने वाला पैदा हुआ है तो पढ़नेवाला भी पैदा होगा। आज नहीं तो कल। **'देर है अंधेर नहीं'** जैसे **आ. श्री वीरसेन स्वामीजी** ने आज से करीब **१२००** वर्ष पहले **धवलजी, जयधवलजी** ग्रंथ का सम्पादन किया और करीब बारह सौ वर्ष तक अलमारियों में बंद रहा सिर्फ दर्शन की वस्तु बनी रही पर आ. श्री शांतिसागरजी जैसे महापुरुष पैदा हुए जिन्होंने जन जन तक पहुंचा दिया। आज भाग्यशाली उनका अध्ययन कर अपने अज्ञान रूपी अंधकार को दूर कर रहे हैं। उस समय आ. श्री वीरसेन ने चिंता नहीं की थी कि कोई पढ़ेगा या नहीं। वैसे ही आ. श्री का कहना है कोई न कोई भाग्यशाली पैदा होगा और ग्रंथ को समझकर जन जन तक पहुंचा कर अज्ञान अंधकार को दूर करेगा। इन्हीं मंत्रों के द्वारा तो धर्मध्यान होता है जो इस लोक में और परलोक में सुख शांति देने वाला है इसमें कोई संदेह वाली बात नहीं है। आ. श्री ने यह ग्रंथ दिन में १८-१८ घंटे लिखना, शिष्यों को पढ़ाना और जिज्ञासुओं की जिज्ञासा का समाधान करना ऐसे अथक परिश्रम के साथ ७ वर्ष में पूर्ण किया। आ. श्री जो भी कृति लिखते हैं उसमें नवीनता ला देते हैं। आ. श्री की पहले ब्रह्मचर्य के भंगों के नाम की कृति पूर्ण होते ही विचारों की शृंखला आगे बढ़ी और प्रमादत्याग के ३७५०० प्रमाण भंग पूर्ण होते ही विचारों की अविरलधारा आगे बढ़ी और पहुंच गयी उन्हीं महापुरुषों के गुणों पर जो अयोगी अरहंतऔर सिद्धावस्था को प्राप्त हो गये हैं। जब उन महान आत्माओं के गुणों को बतलाने वाली मूल गाथाओं पर विचार किया तो आनंद विभोर हो गये। जिस प्रकार बादल देखकर मयूर नाचता है, पंख फैलाता है उस पंख से अपनी रक्षा हेतु ढाल का रूप देता है उसी प्रकार आ. श्री ने भी जब मूलाचार प्रतिक्रमणादि की मूल गाथाओं पर विचार किया तो मन रूपी मयूर नाच उठा और अपने ज्ञान रूपी

पंख फैलाकर ८४लाख उत्तरगुण मंत्र शास्त्र की रचना कर आत्म रक्षा हेतु ग्रंथरूपी ढाल रच दी। आ. श्री को कभी लिखने में प्रमाद करते नहीं देखा आ. श्री की कलम ऐसे चलती थी जैसे आज कम्प्यूटर चलता है। आ. श्री को बाजार की बनी हुई स्याही का त्याग है, अपने हाथ से मार्यादित गरम पानी लेकर उसमें सूखी स्याही का पाउडर डालकर बनाते हैं और होल्डर से लिखते हैं, कोई कहता आ. श्री यही स्याही आप पैन में भरकर लिखो होल्डर को बार बार स्याही में डुबोना पड़ता है। तो आप कहते थे नहीं पेन में स्याही भरने पर स्याही पेन में सूखेगी नहीं, अमर्यादित स्याही हो जायेगी इसलिए पेन भी नहीं लेते मना कर देते। ऐसे महान गुरुवर जो हम लोगों को इतनी सूक्ष्मता से समझाने का प्रयास करते हैं फिर भी हम जैसे पामर लोग कह देते थे कि आ. श्री आप क्या दिन भर लिखते रहते हैं हम लोगों को तो कुछ समझ में भी नहीं आता हैं तब आप अपनी वात्सल्यता दर्शाते हुए कह देते कि कोशिश करो सब समझ में आ जायेगा। कोई कुछ भी कह देता आप हँसकर निकाल देते, उस बात पर ध्यान ही नहीं देते संक्षिप्त उत्तर देते कोई बात नहीं, मेरी तो एकाग्रता होती है, ध्यान होता है साथ में कर्मों की निर्जरा भी होती है। आ. श्री की कृति जैसी आज तक किसी ने नहीं लिखी होगी। आ. श्री कभी किसी के द्वारा लिखे ग्रंथ की पुनरावृत्ति नहीं करना चाहते हैं। उनका कहना है कि किसी ने लिखा है उसकी क्या पुनरावृत्ति करना, लिखना है तो स्वयं खोज करो और लिखो कि प्रमाण, नय, निक्षेप से किसी प्रकार का दोष उत्पन्न न हो। आ. श्री का अध्ययन अत्यंत सूक्ष्मता को लिए हुए है जब भी देखो हाथों में कोई न कोई ग्रंथ अवश्य पढ़ते हुए मिलेंगे। आ. श्री अधिकतर मौन रहते हैं। मौन साधना इन्हें अधिक प्रिय लगती है। बहुत ही कम बोलते हैं जैसे कोयल आम की मंजरी आती है तब अपनी मीठी मीठी वाणी की वर्षा कर आनंदित करती है। वैसे ही आ. श्री भी जब भक्तों की प्रश्न रूपी मंजरी आती है तब अपनी मीठी अमृतमयी वाणी द्वारा समाधान की वर्षा कर आनंदित कर देते हैं। आचार्य श्री के गुणों का कहाँ तक वर्णन करूं। दूध में जितनी शक्कर डालो सब समाहित हो जाती है वैसे ही आ. श्री के गुणों का जितना वर्णन करूं सब समाहित हो जाता है। अंत में आ. श्री जी के चरणों में सिद्ध, श्रुत, आचार्य भक्ति पूर्वक नमन करती हुई यही भावना करती हूँ कि मुक्ति मंजिल पर पहुंचकर विश्राम लूं ऐसा आशीष गुरुवर का बना रहे।

ॐ शांति

आर्यिका :-श्रेयमति श्रेय

हाथ जोड़ कर शीश नवाऊं, गुरुवर की महिमा को गाऊं।
वासुपूज्य के शरणे जाऊं, शिवपद मारग को मैं पाऊं।।

पूज्य गुरुदेव के चरणों में
शत शत नमन

संसार चक्र की घनघोर मेघ घटाओं को छिन्न भिन्न करने के लिए अवतरित हुए उस भानुमल ने अपनी तेज प्रकाशमान किरणों के द्वारा मेघ की काली घनघोर घटाओं को नष्ट कर जगत को नया प्रकाश प्रदान कर अन्धकार को जिस प्रकार दूर भगाया उसी प्रकार पूज्य आचार्यश्री ने ८४ लाख उत्तरगुण मंत्र शास्त्र रूपी प्रकाशमान तेज सूर्य का उदय कर अपने अन्तरंग में बैठे जिज्ञासाओं के बादलों को छिन्न भिन्न कर संतोष प्राप्त कर आध्यात्मिक समुन्दर में डुबकी लगाकर आध्यात्म में एक नया कीर्तिमान स्थापित किया।

प. पू. आचार्य श्री को बहुत लम्बे अरसे से जिज्ञासा थी कि मैं उत्तरगुण मंत्र शास्त्र लिखूं और मन को केन्द्रित कर आध्यात्म में गोता लगाऊं आखिर सपना साकार हो ही गया।

नई वस्तु के प्रति जिज्ञासाएँ

हम कभी बाजार जाते हैं तो अचानक किसी नई वस्तु की ओर हमारा ध्यान केन्द्रित हो जाता है तब बहुत आश्चर्य सा लगता है, मन में अनेक तरह की विचार धारायें उठती हैं, मन में अनेक तरह के प्रश्न उठते हैं कि यह चीज कैसी है, कहाँ से आई, किस देश की है, खाने की है या पहनने की, कृत्रिम है या अकृत्रिम इसे खरीदें या न खरीदें, खरीदने से लाभ होगा या अलाभ आदि नाना प्रकार की विचारधाराओं से जब अपना सन्तुलन खो बैठते हैं, अपनी सोचने की शक्ति को चरमसीमा तक ले जाते हैं फिर भी समझ में नहीं आता तब थके मांदे जाकर व्यापारी से पूंछते हैं कि यह क्या चीज है, कैसी है, क्या उपयोगी है तब व्यापरी हमें अच्छे ढंग से नजदीक में बैठाकर अपने समय की परवाह न कर समझाता है तब समझ में आने पर उसे खरीद लेते हैं।

उसी प्रकार पूज्य आचार्य श्री ने ८४ लाख उत्तरगुण मंत्र शास्त्र रूपी नई वस्तु को धर्म के बाजार में वितरण कर आम आदमी को बड़े अचम्भे में डाल दिया इसी बीच किसी ने आकर जिज्ञासु को कह दिया कि ८४ लाख उत्तरगुण मंत्र शास्त्र आचार्य श्री ने अपने हाथों से प्रत्येक मंत्र को अलग अलग कर लिखा है। वो भी प्रतिदिन १८ घंटे की कड़ी मेहनत से एक लाख पन्नों पर सात साल में पूर्ण किया इतना ही नहीं जिस तरह शान्तिविधान, भक्तामरविधान आदि विधान हैं उसी तरह आचार्य श्री ने **उत्तरगुण महामण्डल विधान** की एक नई रचना करा दी, इस विधान के ७ कोठों में ८४ अर्घ हैं इसका पूरा विधिविधान इसी पुस्तक में दिया हुआ है। आचार्य श्री के आदेशानुसार पूज्य आर्यिका चन्द्रमतिजी एवं दक्षमतिजी ने यह विधान लिखा।

इतना सुनते ही जिज्ञासु की जिज्ञासा और बढ़ी, सोचने लगा कैसा ग्रंथ है, कितना बड़ा है? कैसे लिखा होगा, कौन पढ़ेगा, अभी कहाँ होगा क्या मुझे ऐसे अपूर्व ग्रंथ के दर्शन होंगे आदि नाना प्रकार की शंकाओं से शंकित जिज्ञासु पूज्य आचार्य श्री के पास में जाकर बैठ जाता है। जिज्ञासु के मन में पुनः विचार धाराएं उठती हैं कि आचार्य श्री स्वाध्याय में तल्लीन हैं, मैं कैसे पूंछूं, पूंछने पर उत्तर

मिलेगा या नहीं, आ. श्री के द्वारा समझाने पर मेरी समझ में नहीं आया तो आदि अनेक विचारधाराओं के तहत जिज्ञासु आचार्य श्री के कुछ और निकट पहुँचता है, पूंछने की हिम्मत बांधता है। जैसे ही आचार्य श्री अपने प्रसन्न चेहरे से जिज्ञासु के सामने देखते हैं तब जिज्ञासु अपने अनुकूल परिस्थिति को देख ग्रंथराज के बारे में प्रश्न पूंछ ही लेता है प्रश्न पूंछने पर पूज्य आचार्य श्री जिज्ञासु को बड़े प्रेम के साथ वात्सल्यता पूर्वक निकट में बैठाकर समझाते हैं। कोशिश करने पर जिज्ञासु की समझ में आ जाता है जिसको समझने का लक्ष्य होगा उसीको समझ में आयेगा सबको नहीं क्योंकि कहा भी हैं।

स्टोव में तेल नहीं तो बाती जलाने से क्या होगा।
खेत में बीज नहीं तो पानी बहाने से क्या होगा।।
प्यारे बन्धुओं मेरा कहना बुरा न मानना।
जिसके दिमाग में छाई अज्ञानता है उसे समझाने से क्या होगा।।

अज्ञानता को हटाकर यदि ग्रंथराज को समझने की कोशिश करेंगे तो अवश्य समझ में आ जायेगा। बंधुओं ग्रंथराज संबंधित या धर्म संबंधित अन्य कोई भी वार्ता आपकी समझ में न आ रही हो तो बिना हिचकिचाहट के आ. श्री के सम्मुख बैठ जाइये बार बार पूंछिये, आ. श्री वात्सल्य के धनी हैं अपने स्वाध्याय को विराम देकर प्रेम से समझायेंगे इसमें कोई संदेह नहीं हैं क्योंकि मैंने स्वयं इस बात का अनुभव किया है।

वर्तमान में इस ग्रन्थराज का दर्शन कहाँ सुलभ है?

इस लघु पुस्तक को पढ़ते हुए अगर आपके भाव विशाल ग्रंथराज के दर्शन करने के हो जायें तो इसका दर्शन अवश्य मिल सकता है। वर्तमान में यह ग्रंथ मध्यप्रदेश, महेवा ग्राम में बिराजमान हैं, जि. पन्ना से ५० कि.मी. एवं कुण्डलपुर से ९० कि.मी. है सतना कटनी से बस द्वारा ८०-८५ कि. मी. चार घण्टे का रास्ता है।

अन्तिम चार पंक्तियों को गुरु चरणों में समर्पित कर मैं अपनी लेखनी को विराम देता हूँ।

जिसका कोई घर न हो उसे बेघर कहते हैं,
जिस हण्डी में पानी न हो उसे नील गागर कहते हैं।
धर्म स्नेही बन्धुओं ८४ लाख मंत्रों के
लेखनकर्त्ता को आ. वासुपूज्य सागर कहते हैं।।

लिखितः संघस्थ बा. ब्र. सुगन्ध कुमार जैन (सौरभजी)

जइ जिणमयं पवज्जह ता मा ववहारणिच्छए मुयह।
एक्केण विणा छिज्जइ तित्थं अण्णेण उण तच्चं।।१२।। समयसार

अर्थः- यदि तुम जैनधर्म में प्रवेश करना चाहते हो तो व्यवहार और निश्चय इन दोनों नयों को मत छोड़ो क्योंकि एक व्यवहारनय के बिना व्यवहार मोक्षमार्ग का, व्यवहार धर्मतीर्थ का और निश्चयनय को छोड़ देने से निश्चय मोक्षमार्ग का, आत्मतत्त्व का अभाव हो जायेगा।

उभयनय विरोधध्वंसिनि स्यात्पदांके जिन वचसि रमंते ये स्वयं वांतमोहाः।
सपदि समयसारं ते परं ज्योतिरुच्चैरनवमनय पक्षाक्षुण्णमीक्षंत एव।।४।।

अर्थः- निश्चय व्यवहार रूप दो नयों में विषय के भेद से होने वाले परस्पर के विरोध को दूर करने वाले स्यात् पद से चिह्नित जिनेन्द्र भगवान के वचन में जो पुरुष रमण करते हैं वे पुरुष स्वयं मिथ्यात्व का वमन करते हुए इस उत्कृष्ट परम ज्योति स्वरूप सनातन सर्वथा एकांत रूप कुनय के पक्ष से खंडित नहीं होने वाले समयसार को देखते हैं।

स्याद्वादकौशल सुनिश्चल संयमाभ्यां
यो भावयत्यहरहः स्वमिहोपयुक्तः।
ज्ञानक्रियानयपरस्परतीव्र मैत्री
पात्रीकृतः श्रयति भूमिमिमां स एकः।।२६७।। अमृत.

अर्थः- जो भव्य प्राणी अनेकांत स्वरूप जिनवाणी के अभ्यास से उत्पन्न सम्यग्ज्ञान के द्वारा तथा निश्चल आत्मसंयम के द्वारा इस स्वात्मा में उपयोग स्थिर करके बार बार उस स्वात्मा की भावना करता है ज्ञाननय तथा क्रियानय दोनों की परस्पर में तीव्र मित्रता का पात्र बना हुआ वही एक भव्य इस शुद्धोपयोग की भूमिका को प्राप्त करता है।

गुरु की महिमा वरणी न जाय,
गुरु नाम जपो मन वचन काय।

जी हाँ, फिर भी मुझ अत्यंत अल्पज्ञानी ने दुस्साहस करके आखिर कलम उठा ही ली। सागर को गागर में भरने की जो कुचेष्टा कर रही हूं इसके लिए हास्यपात्रा ही होऊंगी किंतु यह बेकरार ..... बेचैन दिल गुरुगुणों की महिमा कहने का तलबगार है।

प्रथम तो प. पू. १०८ आ. श्री वासुपूज्यसागर महाराजजी के चरण कमलों में मस्तक झुकाकर शत शत वदंन।

कुएँ में होगा वही तो हौदी में आयेगा या यों कहिए जैसे बाप वैसे बेटे। सचमुच में ये लोकोक्तियाँ भी अपने आप में बहुत कुछ बतला देती हैं। आचार्य श्री के गुरु प. पू. १०८ आ. श्री पार्श्वसागर महाराजजी (कोटलावाले यू.पी.) जैसे थे वैसे ही आचार्य श्री हैं अगर ऐसा कह दूं तो कोई अतिशयोक्ति न होगी। पूज्य गुरु श्री ने दीक्षा से समाधि पर्यंत एक अज्ञातवास ही ग्रहण कर लिया था, वैसे ही आपने भी ख्याति पूजा लाभ की भावना को तिलांजलि देकर वनवास ही स्वीकार कर लिया है। एकान्तप्रिय, मौनप्रेमी आपने आध्यात्म मार्ग में कमर कस ली है। न्याय व्याकरण सिद्धांत त्रैविध य शास्त्र में प्रखरता प्राप्त कर ली है। अच्छे अच्छे न्यायाचार्य और व्याकरणाचार्य भी दाँतों तले उंगली दबाने लगते हैं। तर्क कुतर्क या किसी भी प्रकार की चर्चा हो प्रश्नकर्त्ता का हित मित प्रिय रूप में उचित समाधान करना आपका मूलभूत सिद्धान्त है आचार्य श्री को १०००० प्रमाण श्लोक गाथा सूत्र कंठस्थ हैं। जैसे भूतपिशाच की बाधा वाले को धुन सवार होती है वैसे ही अगर आचार्य श्री कोई कार्य की ठान लें तो धुन सवार हो जाती है फिर कोई चाहे कुछ भी कहे चिकने घड़े की तरह आचार्य श्री को कोई फर्क नहीं पड़ता।

७साल के अथक प्रयास में ८४लाख उत्तरगुणमंत्र ग्रंथराज पूर्ण किया। श्रावकों ने कितने प्रकार से तर्ककुतर्क विवाद किये पर **बस ठानी सो ठानी**। कार्य पूर्ण होने तक अविरत कलम चलती रही। आचार्य श्री का यही लेखन कार्य आश्चर्यकारी है। वर्तमान में दिगंबर जैनधर्म में अथवा सारे विश्व धर्मों में यह हस्तलिखित सबसे बड़ा ग्रंथ है। प्रमाण १ लाख पेपर का है। **सोना जाने कसे मानुष जाने बसें।** आचार्य श्री का संयम, व्रत, तप, सहनशीलता, वात्सल्य आदि तो वे ही विरले प्राप्त कर सकते हैं जो आपके सान्निध्य में निरपेक्ष निस्वार्थ भाव से रहें। नहीं.....नहीं..... ..... मुझे सूर्य को दीपक दिखाने की मूर्खता नहीं करनी चाहिए।

अंत में मेरी यही अभिलाषा है कि आचार्य श्री जैसे गुणों की प्राप्ति मुझ पामर को भी होवे। आचार्य श्री का वात्सल्य पूर्ण वरद हस्त मुझ तुच्छ के शीश पर अविलम्ब सतत ही रहे इसी तमन्ना के साथ पूर्ण करती हूँ।

गुरु गोविन्द दोनों खड़े, काके लागु पाय।
बलिहारी गुरु आपकी गोविंद दियो बताय।।

इत्यलम्

संघस्थ बा.ब्र. नेहल जैन भाग्याजी

ॐ नमः सिद्धेभ्यः।

प्रस्तावना

योग वेद को पृथक् कर भये अयोगी देव।
मनवचतन से मैं नमूं अविनाशी पद हेत।।

ब्रह्म अर्थात् आत्मा, चर्या अर्थात् विचरण करना, अतः शील, प्रकृति, स्वभाव ब्रह्मचर्य, आत्म रमणता ये एकार्थवाची हैं।

आत्म रमणता के लिये पहले आत्मा और पुद्गल, जीव और अजीव आदि तत्त्व, प्रत्येक का स्वभाव, द्रव्य गुण पर्याय और प्रमाण नय निक्षेप से जिसका जैसा स्वरूप है उसे वैसा ही जानकर मानकर स्थिर होने से सम्यग्दर्शन प्राप्त होता है।

परम पूज्य प्रातः स्मरणीय चारित्र चक्रवर्ती आचार्य श्री १०८ शांतिसागरजी महाराज ने अपने सल्लेखना के अंतिम सन्देश में कहा था कि दर्शनमोहनीय कर्म का क्षय उभयकेवलियों के सामने निज शुद्धात्मा के चिंतन से होता है। कर्म की निर्जरा आत्मचिंतन से होती है यह कथन आ. श्री ने मुनियों की अपेक्षा से कहा है, गृहस्थों की अपेक्षा से नहीं। दान, पूजा तीर्थयात्रा और ऐसे ही धर्म के कार्य सब पुण्यबंध के कारण हैं क्योंकि जैसे दीपक से अनंत गुणा प्रकाश होता है तो किंचित् धुआं जैसा अंधकार भी होता है ऐसे ही दानपूजादि धर्मकार्यों के करने से अनंतगुणा आत्म विकाश होता है, पापकर्मों का संवर और पूर्वबद्ध कर्मों की असंख्यात गुणश्रेणी निर्जरा होती है तो किंचित् अल्प स्थितिअनुभाग के साथ पापकर्मों का बंध भी होता है तथा अनंतगुणा सातिशय पुण्य कर्मों का आश्रवबंध भी होता है फिर भी वक्ता किस धर्म को प्रधान कर कथन कर रहा है वह समझना चाहिये परंतु सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र के लिये तो निजात्म संबंधी ७ तत्त्व, ९ पदार्थ, ५ अस्तिकाय, ६ द्रव्यों का चिंतन ही तथा श्रेणिक की तरह भूल समझना, भूल सुधारना, भूल का त्याग करना ही सही साधन है। ऐसे ही पूर्व योगीश्वरों ने भी समयसार, प्रवचनसार, नियमसार, समाधितंत्र, धवला, गोम्मटसार, लब्धिसार क्षपणासार आदि ग्रंथों में बड़े ही मार्मिक तरीकों से उद्बोधन किया है।

आचार्यों ने शील के भंगों को तीन प्रकार से सामान्य श्रावक, साधक, संयमी साधुओं की अपेक्षा अठारह हजार भेदों का वर्णन किया है। अतः यहाँ संयमी साधु मुनियों को प्रधान कर ब्रह्मचर्य के अठारह हजार भंगों का वर्णन एवं तालिका दी है।

अतः सम्यग्दर्शन प्राप्त कर मुक्ति के साधक मुमुक्षुओं को आत्म उत्थान के लिये ये शील के भेदों का चिंतन, मनन कर आत्मा को जानना, मानना जमना और रमना है अर्थात् वस्तु स्वरूप को ग्रंथान्तरों से जानना और जानकर मानना जरूरी है, मानकर स्वभाव सन्मुख होकर जमना और जम कर निज शुद्ध आत्मा में लीन होकर १४वाँ गुणस्थान अयोगी होकर गुणस्थानातीत, अव्याबाध, अखण्ड, सुखधाम, मोक्षलक्ष्मी को प्राप्त करना चाहिये। अतः शील यानि ब्रह्मचर्य के ये अठारह हजार भंग जयवंत हों।

प्यारेलाल कोटडिया

संघपरिचय

प. पू. श्री १०८ आ. पार्श्वसागरजी महाराज के द्वारा दीक्षित साधु वृन्दों के नाम क्रम से

१.	क्षु नंदीश्वरसागरजी	समाधि- सलेहा (म.प्र.)
२.	प. पू. आ. १०८ श्री वासुपूज्यसागरजी	मुनिदीक्षा- सागवाड़ा (राजस्थान)
३.	ए. अनन्तसागर	ऐलक दीक्षा- देपुरा (राज.)
	मुनि अमृतसागरजी	मुनिदीक्षा- अकलूज।
	मुनि अमृतसागरजी	समाधि- वसगड़े (महाराष्ट्र)
४.	क्षुल्लक आनन्दसागरजी	क्षुल्लकदीक्षा- देपुरा।
	मुनि बाहुबलि सागरजी	मुनिदीक्षा और समाधि- सिद्धवर कूट। म.प्र.
५.	आ. श्रेयांसमतिमाताजी।	आर्यिका दीक्षा- धरियावाद (राज.)
६.	ऐ. वैराग्यसागर	ऐलक दीक्षा- धरियावाद (राज.)
७.	क्षु. उदयसागरजी	क्षुल्लकदीक्षा- धरियावाद (राज.)
	मुनि उदयसागरजी	मुनिदीक्षा-परसाद
	मुनि उदयसागरजी	समाधि-चाउन्ड
८.	उदयकीर्तिजी	मुनिदीक्षा-परसाद,
९.	ऐ. त्रिलोकसागरजी	ऐलकदीक्षा- सागवाड़ा।

छेदोपस्थाना दीक्षा

१०. आर्यिका दीक्षा सरस्वतीमति माताजी
११. आर्यिका पार्श्वमतिमाताजी।
१२. क्षुल्लिका माताजी।

आ. वासुपूज्यसागरजी द्वारा दीक्षित

१.	आ. नाम श्रेयमति माताजी	आर्यिका दीक्षा-गाँधीनगर, गुजरात।
२.	क्षु. श्रेणिमति माताजी प्रथम	क्षुल्लिका दीक्षा-भागलपुर (बिहार)
	आर्यिका श्रेणिमति माताजी प्रथम	समाधि-आरा (बिहार)
	क्षु. श्रेणिमति माताजी द्वितीय	क्षुल्लिका दीक्षा-बनारस, उत्तर प्रदेश
३.	आर्यिका श्रेणिमति माताजी द्वितीय	दीक्षा और समाधि-श्यामपुर, उत्तराखण्ड

१. बा. ब्र. सुगन्धकुमारजी (सौरभ)
२. ब्र. मुकेश कुमारजी
३. बा. ब्र. नेहल बहिनजी (भाग्याजी)
४. बा. ब्र. गुंजा बहिनजी

पुनः

आ. श्री पार्श्वसागरजी महाराज- समाधि-वसगड़े, कोलापुर, महाराष्ट्र

आ. पार्श्वसागरजी कोटलावाले (यू.पी.) के
शिष्य आचार्य वासुपूज्यसागर

ॐ नमः सिद्धेभ्य

मंगलाचरण

ब्रह्मचर्य के अठारह हजार भेदों से संबंधित विचार

प्रथम नमूं गुरु पार्श्व को मन में हर्ष अपार।
भव भव के पातक कटें होवे बेड़ा पार।।
ब्रह्मचर्य के भंग लिखूं जो हैं सहस अठार।
उनकी परिणति से प्रभु कटे कर्म जंजाल।।

ब्रह्मचर्य- आध्यात्म दृष्टि से आत्मरमणता, आत्मलीनता, प्रदेश परिस्पन्दन का अभाव होना पूर्ण रूप से निराश्रव, निर्बंध, संवर होना ही पूर्ण निर्दोष ब्रह्मचर्य है और सयोगी १३वें गुणस्थान पर्यंत आश्रव बंध है तथा पूर्ण संवर न होने से सदोष ब्रह्मचर्य है। सामान्य से ब्रह्मचर्य एक प्रकार का होने पर भी विशेष रूप से ब्रह्मचर्य के १८००० भेद हैं वे अयोगकेवली नामक १४वें गुणस्थान में पूर्ण होते हैं।

जीवो बंभा जीवम्मि चेव चरिया हविज्ज जा जदिणो।
तं जाण बंभचेरं विमुक्क परदेह तत्तिस्स।। ८७२। पृ.५१३ भ. आ. आ. शिवकोटि

गाथार्थ- मुनि की परदेहादि की रमणता से रहित आत्मा में जो चर्या होती है वह ब्रह्मचर्य है। मुनियों के जैसे जैसे कषायें दूर या नष्ट होती जातीं हैं, वैसे वैसे ब्रह्मचर्य की शुद्धि होती जाती है तथा मोहनीय कर्म के समग्र रूप से क्षय होने पर ब्रह्मचर्य के भेदों की प्राप्ति में वृद्धि हुई किंतु पूर्णता नहीं हुई क्योंकि पूर्ण ब्रह्मचर्य की प्राप्ति के घातक योग हैं। दसवें गुणस्थान तक ब्रह्मचर्य का घात योग और कषायों से होता है तथा ११वें से १३वें तक योगों से घात होता है।

प्र.१-योग किसे कहते हैं और योग के कितने भेद हैं?

उत्तर- **पुग्गल विवाई देहोदयेण मण वयण काय जुत्तस्स।**
जीवस्स जा हु सत्ति कम्मागमकारणं जोगो।।२१६।। जी. का. आ. नेमिचन्द्र

गाथार्थ- पुद्गलविपाकी शरीर नामकर्मोदय से जीव की कर्मग्रहण करने की शक्ति को योग कहते हैं।
योगों के तीन भेद हैं- **नामः-** मनोयोग, वचनयोग, काययोग।

विशेषार्थ- आत्मा की अनन्तशक्तियों में से एक योगशक्ति भी है। उसके दो भेद हैं (१) भावयोग, (२) द्रव्ययोग। पुद्गल विपाकी अंगोपांग नामकर्म और शरीर नामकर्म के उदय से मन वचन काय की शक्ति जिसकी पूर्ण हो चुकी है और जो मनोवाक्कायवर्गणा का अवलम्बन रखता है ऐसे संसारी जीवों की समस्त प्रदेशों में रहने वाली कर्मों के ग्रहण करने में कारणभूत शक्ति को भावयोग कहते हैं और जीवों के प्रदेशों में परिस्पन्दन होने को द्रव्ययोग कहते हैं।

प्र.२-परिस्पन्दन और योग किसे कहते हैं?

उत्तर- चंचलपने को या एक स्थान से दूसरे स्थान पर प्रदेशों के गमन करने को परिस्पन्दन कहते हैं। जैसे भात पकाते समय तापमान बढ़ने पर चावल ऊपर नीचे शीघ्र ही गमन करते हैं वैसे ही परिश्रम होने पर आत्मप्रदेश द्रुतगति से स्थानान्तर गमन करते हैं और इस आत्मप्रदेश परिस्पन्दन को ही योग कहते हैं तथा मुनि के केवलज्ञान उत्पन्न होने पर भी योग के सद्भाव में शील के १८००० भेद पूर्ण

रूप से उत्पन्न नहीं हो पाते तथा अयोग केवली नामक चौदहवें गुणस्थान के प्रथम समय में ही १८००० शील के पूर्ण भेद उत्पन्न होते ही अन्तर्मुहूर्त में नियम से जीव मुक्त हो जाता है। वैराग्ययुक्त गृहस्थ मुनिव्रत अंगीकार करते समय इस व्रत को पूर्ण रूप से पूर्ण रूप में प्राप्त करने की प्रतिज्ञा करता है तथा व्रत की पूर्णता गुणस्थान परिपाटी के अनुसार क्रम से होती है। जैसे मूर्तिकार पत्थर को देखकर इसमें इस प्रकार की मूर्ति बनेगी यह नक्सा क्षणमात्र में उसके दिमाग में आ जाता है किंतु पत्थर के विरुद्ध भाग को क्रमशः धीरे धीरे निकालकर अलग कर सुंदर मूर्ति प्राप्त कर लेता है या बिल्डर्स भूमि को देखकर तत्क्षण कहाँ क्या बनेगा यह निर्णय कर लेता है किंतु रचना क्रम से पूर्ण होती है इसी तरह मोक्षमार्गी गृहस्थ या मुनिजन एक ही क्षण में पूर्ण ब्रह्मचर्य व्रत की प्रतिज्ञा कर लेते हैं किंतु गुणस्थानानुसार क्रमशः घातियाकर्मों को क्षय कर और योगों का अभाव करके अयोगी अवस्था के प्रथम समय में ही १८००० भंग पूर्ण प्राप्त कर लेते हैं।

अतः प्रमत्ताप्रमत्त गुणस्थानों में सहस्त्रोंवार भ्रमण कर क्रमशः क्षपकश्रेणी आरोहण कर कर्मों को क्षय करता हुआ अयोगकेवली गुणस्थान के प्रथम समय में पूर्ण कर लेता है। सयोगकेवलियों के ब्रह्मचर्य महाव्रत पूर्ण नहीं होता है यह विधि आध्यात्म और आगम दृष्टि से बताई गई है।

अब चरणानुयोग के अनुसार बतलाते हैं:-

ब्रह्मचर्यव्रत का नियम विवाहित गृहस्थ की अपेक्षा वेश्या और परस्त्री का त्याग मिथ्यात्व गुणस्थान में ही हो जाता है तथा अविरतसम्यग्दृष्टि नामक चौथे गुणस्थान में अपनी पत्नी के प्रति भी भोगाभिलाषा कम कम होती जाती है पर यहाँ अप्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ कषाय का उदय होने से इसे अणुव्रत नहीं कहते हैं किंतु इसी व्रत के साथ यदि अप्रत्याख्यानावरण क्रोधादि कषायों का अभाव हो जाये तो यही व्रत अणुव्रत कहलाता है।

न तु परदारान् गच्छति, न परान् गमयति च पापभीतेर्यत्।

सा परदार निवृत्तिः स्वदार संतोषनामापि।। ५९।। र.श्रा. आ. श्री समन्तभद्र

गाथार्थ- जो पाप से भयभीत होकर न तो परस्त्रियों के पास विषय भाव से जाता है और कामवासना से युक्त होकर न दूसरों को भेजता है उसे परस्त्री त्यागी या स्वदार संतोषव्रती कहते हैं।

विशेषार्थ- चरणानुयोग में बाह्य त्याग या बाह्य ग्रहण की मुख्यता होती है तो आध्यात्म में अंतरंग परिणामों की निवृत्ति और प्रवृत्ति की मुख्यता होती है। यहाँ गाथा में आ. समन्तभद्र ने दोनों दृष्टियों से कथन किया है जो परस्त्री का त्याग है वह चरणानुयोग की अपेक्षा से है और जो पाप से भय है तथा संतोष है वह आध्यात्म दृष्टि की अपेक्षा से है।

त्यागादाने बहिर्मूढः करोत्यध्यात्ममात्मवित्।

नान्तर्बहिरुपादानं न त्यागो निष्ठितात्मनः।।४७।। स.तं. आ. श्री पूज्यपाद

गाथार्थ- मूढ जीव बाह्य वस्तुओं का त्याग और ग्रहण करता है आत्मतत्त्वज्ञ अंतरंग परिणामों का त्याग और ग्रहण करता है किंतु आत्मनिष्ठ कुछ भी त्याग और ग्रहण नहीं करता है।

भावार्थ- आध्यात्म भाषा में त्याग और ग्रहण की क्रिया का नाम ही प्रमाद है, जहाँ प्रमाद है वहाँ आध्यात्म नहीं है और जहाँ आध्यात्म है वहाँ प्रमाद नहीं है। अंधकार और प्रकाश के समान एकसाथ एक स्थान में दोनों नहीं रह सकते हैं।

गृहस्थ की अपेक्षा ब्रह्मचर्य

स्त्रियां तीन प्रकार की होती हैं स्वस्त्री, परस्त्री और वेश्या। इन तीनों में मैथुन क्रिया करने पर द्रव्यहिंसा एक समान होती है क्योंकि शरीर के आकार, प्रकार, रूप, ऊंचाई मोटाई में अन्तर होने पर भी भोग्य स्थान में अन्तर नहीं है। जैसे मिठाई के नाम, रंग, आकार, गंधादि में भेद होने पर भी स्वाद में भेद नहीं है फिर भी भावहिंसा की अपेक्षा से बहुत अन्तर है। जैसे निजपत्नी में प्रीति होती है पर लज्जा नहीं आती, भय तथा लोक निंदा का डर नहीं लगता है परन्तु जब अपनी पत्नी के साथ रमण करने पर इच्छा की पूर्ति नहीं हो पाती तभी प्रमाण का उल्लंघन कर वेश्या के साथ में रमण करता है। अतः राग अधिक होने से लज्जा तथा लोकनिंदा का भी भय होता है। परस्त्री के साथ कामसेवन की तीव्र अभिलाषा, भय, लज्जा और लोकनिंदा भी अधिक होती है साथ ही मारपीट, धनहानि, जानहानि भी हो जाती है। अतः आचार्यों ने गृहस्थों को परस्त्री और वेश्या के त्याग का उपदेश दिया तथा निजपत्नी में संतोषवृत्ति धारण करने को तथा निज पत्नी के त्याग करने को भी कहा है और इसी संतोषवृत्ति या त्याग को ब्रह्मचर्याणुव्रत कहा है अर्थात् अप्रत्याख्यानावरणी कषाय के उदयाभाव में ब्रह्मचर्याणुव्रत होता है। त्याग का नाम व्रत है तो भोग का नाम पाप है।

वधूवित्तस्त्रियौ मुक्त्वा सर्वत्रान्यत्र तज्जने।
माता स्वसा तनूजेति मतिर्ब्रह्मा गृहाश्रमे।।४०५।। पृ. १९१ अ. ३१ उपा.

गाथार्थ- अपनी विवाहिता स्त्री और वित्तस्त्री को छोड़कर अन्य सब स्त्रियों को माता बहिन और पुत्री मानना ब्रह्मचर्याणुव्रत है। आ. श्री सोमदेव

भावार्थ- पं. कैलाशचंद्रजी शास्त्री ने लिखा है कि सर्व श्रावकाचारों में विवाहिता स्त्री को छोड़कर शेष स्त्री मात्र के त्याग को ब्रह्मचर्याणुव्रती कहा है परस्त्री तथा वेश्या दोनों ही त्याज्य हैं ऐसा कहा है पर पंडित सोमदेवजी ने अणुव्रती के लिए वेश्या की भी छूट दे दी है, न जाने यह छूट किस आधार से दी गई है।

गाथा में आये हुए वित्तस्त्री पद से वेश्या अर्थ क्यों किया इस अर्थ पर विचार करते हैं। अगली गाथा में आ. श्री सोमदेवजी ने कहा है-

धर्मभूमौ स्वभावेन मनुष्यो नियतस्मरः।
यज्जात्यैवपराजातिबंधुलिंगिस्त्रियस्त्यजेत्।।४०६।।

अर्थ- धर्मभूमि आर्यखण्ड में स्वभाव से ही मनुष्य कम कामी होते हैं अतः अपनी जाति की स्त्री से ही संबंध करना चाहिए और परजातियों की, बन्धुबान्धवों की तथा व्रती स्त्रियों से संबंध नहीं करना चाहिए।

भावार्थ- यहाँ यदि आ. सोमदेव को वित्तस्त्रीपद से वेश्या अर्थ इष्ट होता तो अगली गाथा में यज्जात्यैव में एवकार का प्रयोग नहीं करते। अपनी जाति की स्त्री से ही संबंध करना चाहिए यह कहना व्यर्थ हो जाता है। हालांकि शब्द कोषों में वित्तस्त्री पद का अर्थ वेश्या लिया जाता है फिर भी यहाँ वेश्या अर्थ नहीं लेना चाहिए क्योंकि प्रसंग, प्रयोजन के अनुसार अर्थ लिया जाता है तथा मुख्य प्रचलित अर्थ का भी त्याग किया जाता है जैसे **सैन्धवमानय** इस पद के दो अर्थ होते हैं पहला घोडा लाओ और दूसरा नमक लाओ। भोजन के समय नमक लाओ और गमन के समय घोड़ा लाओ यह अर्थ ठीक है पर

प्रसंग बिना पहंचाने भोजन के समय घोड़ा और गमन के समय नमक अर्थ लिया जाय तो हंसी का पात्र बनना पड़ेगा। कहावत है-

सारंग ले सारंग चली, कर सारंग की ओट।
सारंग ढीली देखकर, कर गई सारंग चोट।।

सारंग - स्त्री। सारंग - दीपक। सारंग - अंचल। सारंग - हवा। सारंग - पक्षी। सारंग एक वाद्य।

अर्थ - एक स्त्री साड़ी की आड़ करके दीपक को लेकर जा रही है किंतु साड़ी को ढीली देखकर हवा प्रवेश करके दीपक को बुझा देती है।

यहाँ पर सारंग के ६ अर्थ हैं प्रसंगानुसार लगाना चाहिए। अतः यहाँ पर भी वित्तस्त्री पद से वेश्या अर्थ न लेकर विवाहित स्त्री ही करना चाहिए।

प्र.३-यदि वित्त स्त्री पद से विवाहित स्त्री ऐसा अर्थ किया जाये तो गाथा नं. ४०५ में 'स्त्रियौ' यह द्वीवचनान्तरूप क्यों दिया?

उत्तर- विवाहित स्त्रियों के दो भेद हैं एक दहेज सहित, दूसरी दहेज रहित। जैसे आजकल लड़के वाले लड़की वालों से धन दौलत मांगते हैं और लड़की वाले देते हैं। इस समय दहेज लेने वालों की लोग हंसी उड़ाते हैं, समाचारपत्रों में भी देते हैं और कहते भी हैं कि यह वर विक्रय हुआ, वर खरीदा गया। इस प्रकार आचार्य वर्य श्री सोमदेव के समय लड़की वाले लड़के वालों से धन लेते थे तथा वह लड़की पैसों से खरीदी गई वह स्त्री पैसों से खरीदकर लाई गई अतः वित्तस्त्री कहलाई और यह प्रथा यानि लड़की वाले लड़के वालों से पैसे लेते थे। आज से करीब ३०-४० वर्ष पूर्व में यह प्रथा प्रचलित थी तथा अभी भी कहीं कहीं देखी या सुनी जाती है। हमने स्वयं हासन कर्नाटक में दो घटनाएँ देखी हैं वे निम्न प्रकार हैं - एक दिल्ली के अग्रवाल ५५ वर्ष की उम्र वाले ज्ञानचन्द्र ने श्रवणबेलगोल में पुरोहित की लड़की से शादी की उसकी उम्र करीब २५ वर्ष की थी। लड़की का पिता गरीब था अतः पैसे दिये थे हमने दोनों से वार्ता की है।

दूसरा हासन काः- ६९ वर्ष की आयुवाले धनवान वृद्ध ने पास के गाँव में एक जैन चतुर्थ जाति की लड़की से विवाह किया और ये दोनों मिलकर मंदिर जाते थे तथा हमारे पास में आकर धर्म चर्चा करते थे। अतः आचार्य श्री को वित्तस्त्री से वेश्या अर्थ इष्ट नहीं था किंतु धन से खरीदकर ब्याही स्त्री ही वित्त स्त्री इष्ट है। इसलिए अवधारण (निश्चय) करने के लिए अगली गाथा को ध्यान में रखना चाहिए।

पं. कैलाशचन्द्रजी के अनुसार ही पं. जिनदासजी ने संस्कृत टीका में अर्थ किया है जो ठीक ही नहीं है। यदि वित्तस्त्री से वेश्या अर्थ लिया जाय तो गाथा नं. ४०६ के साथ विरोध आता है। पं. कैलाशचन्द्रजी ने आचार्य सोमदेव को पंडित सोमदेव लिखा है तो क्या यह ठीक है?

प्र.४-क्या वे आ. श्री सोमदेव असंयमी गृहस्थ पंडित थे?

उत्तर- यह शंका ठीक नहीं है क्योंकि स्वयं पं. कैलाशचन्द्रजी ने प्रस्तावना पृ. १७८ पर सोमदेव सूरि कहकर सूरि पद का प्रयोग किया है तथा पं. जिनदासजी शास्त्री ने संस्कृत टीका के अन्त में सोमदेव सूरिणा विरचिते ऐसा प्रयोग किया है तथा ग्रन्थमाला के मुख्य सम्पादकों ने भी सूरि पद का प्रयोग किया है अतः सोमदेव आ. दिगम्बर निर्ग्रंथ आचार्य थे असंयमी गृहस्थ पंडित नहीं थे।

प्र.५-ब्रह्मचर्यव्रत का पालन कौन कौन करते हैं?

उत्तर- ब्रह्मचर्यव्रत के पालन करने वाले पात्र दो प्रकार के हैं। १. गृहस्थ २. मुनि या श्रावक श्राविका और मुनिवर्ग अथवा १. स्त्रीवर्ग और २. पुरुषवर्ग। प्रत्येक को अपनी अपनी प्रतिज्ञा का पालन कर आत्मा को उच्च स्थान पर पहुँचाना इष्ट है, नीचे नरक में ले जाना किसीको भी इष्ट नहीं है। प्रतिज्ञा लेने वाले परस्पर में स्त्रीवर्ग पुरुषों के प्रति और पुरुषवर्ग स्त्रियों के प्रति पिता, पुत्र, भाई तथा माता, पुत्री, बहिन के समान देखें, सुनें, विचारें तथा परस्पर में व्यवहार करें तब इस महान कठिन दुर्धर ब्रह्मचर्यव्रत का पालन करने में किसी भी प्रकार की कठिनाई का सामना नहीं करना पड़ेगा। बड़ी सरलता से पालन होगा। फिर चाहे परिवार के साथ में रहो, चाहे अकेले रहो, चाहे कपड़े धारण करो, चाहे नग्न दिगम्बर जैनमुनि बनकर रहो मन में कामवासना विकार न होने से तन में, वचन में विकार उत्पन्न नहीं होगा, न हुआ है, न हुआ था। जैसे सेठ सुदर्शन के साथ गृहस्थावस्था में रात्रि में रानी ने भंयकर कामचेष्टाएँ की पर सुदर्शन के मन में विकार न होने से तन में विकार नहीं आया वासना के शिकार नहीं हुए किंतु रानी का प्रयास निष्फल गया अतः आगम और अनुभव से सिद्ध है कि मन निर्विकार होने से ब्रह्मचर्यव्रत का पालन सर्वत्र निर्दोष तथा मन में विकार होने से व्रत का पालन सर्वत्र सदोष होता है।

देखो गृहस्थावस्था में पूरा परिवार एक मकान में, कदाचित् एक कमरे में रहता है। परस्पर में एक दूसरे के विकार युक्त शरीर को जानते देखते हैं तो भी मन में विकार न होने से कुचेष्टायें नहीं होती हैं तथा विकार होने पर पशुवत् क्रियाएँ प्रारम्भ होने लगती हैं। पशुओं के मन में विकार न होने पर एक साथ निवास करते हैं किंतु काम चेष्टा नहीं करते हैं। मन में विकार होने पर नाना क्रियाओं को छोड़कर और छुड़ाकर सिर्फ कामचेष्टा के पीछे लग जाते हैं। ठीक ऐसी ही अवस्था मनुष्यों की होती है। अतः भोग परिणाम न लाकर पतिव्रत या पत्नीव्रत का निर्दोष पालन करना चाहिए। व्रत में रंचमात्र भी दोष नहीं आता। कुछ आगम के उदाहरण देते हैं जो निम्न प्रकार हैं :-

सीता का रावण के द्वारा हरा जाना, द्रौपदी का चीर दुःशासन के द्वारा खींचा जाना, अनन्तमती का अनेक जगह अपहरण होना, चंदनबाला का अपहरण होना, सेठ सुदर्शन पर रानी के और ब्राह्मणी के द्वारा उपसर्ग किया जाना आदि अनेक उदाहरण हैं। इन सबमें कुचेष्टाएँ करने वालों के ऊपर दोषों का लगना, निंदा होना, कष्ट प्राप्त होना आदि कार्य हुआ किंतु सतियों पर रंचमात्र भी आंच नहीं आई तथा अपने अपने गुणस्थान के अनुसार न पाप कर्म का बन्ध हुआ, न लोकनिंदा हुई बल्कि देवों के द्वारा और अन्यों के द्वारा पूज्यता को प्राप्त हुईं। जैसे शराब में नशा लाने की ताकत है तो पीने वालों में मतवाला होने की ताकत है जो पियेगा उसे ही नशा आता है, सबको नहीं। ऐसे ही विकारी को कर्म बंधते हैं, निर्विकारी को नहीं। यदि स्पर्श मात्र से दोष लगते हैं तो माता अपने पुत्र को स्तनपान नहीं करा सकती है, गोद में नहीं ले सकती है, एक बिछोने पर सो नहीं सकती, पिता पुत्री को वात्सल्य नहीं दे सकता, बहिन और भाई एक साथ नहीं रह सकते। अतः एक साथ रहने पर भी शील में दोष नहीं आता क्योंकि भोग परिणाम नहीं हैं। यदि केवल स्पर्श मात्र से दोष माना जाये तो जिस प्रकार छूना स्पर्श इंद्रिय का विषय है, उसी प्रकार स्वाद लेना रसना इंद्रिय का विषय है, सूंघना घ्राणेंद्रिय का विषय है, देखना चक्षु इंद्रिय का विषय है, सुनना कर्णेंद्रिय का विषय है, सो इनसे भी दोष लगेगा इसको कौन टाल सकता है। फिर जैसे अग्नि को छूने से जलन उत्पन्न होती है वैसे ही आँख से देखने पर आँख भी जल जायेगी पर आँख नहीं जलती। इसी तरह देखने से ब्रह्मचर्य में दोष माना जाय तो

सभी व्यभिचारी कहलायेंगे कोई भी ब्रह्मचारी नहीं रह पायेगा। यहाँ पर शंकाकार से कोई पूंछ सकता है कि आपकी माँ बहन बेटी पत्नी के कितने पति हैं, वे किन किन को स्पर्श नहीं करती हैं, किनके साथ नहीं बैठती है? यदि स्पर्श करती हैं, साथ में बैठती हैं तो उनके कितने पति हो जायेंगे? जब अनेक पति है तो पति व्रत कैसे रहेगा और यदि अनेक पति हैं तो वेश्या क्यों न कहोगे?

एक डॉक्टर अनेक महिलाओं का हाथ से इलाज करता है, व्यापारी स्त्री, पुरुष अनेक स्त्री पुरुषों को स्पर्श करते हैं, यात्रीगण वाहन की एक सीट पर बैठकर यात्रा करते हैं, बालक बालिकायें स्कूल कॉलेज पढ़ने जाते हैं, सामान खरीदने बाजार जाते हैं, सर्विस करते हैं और भी नाना प्रकार के परस्पर में व्यवहार करते हैं इन्द्राणी जन्म कल्याणक के समय माता के पास से बालक को लाकर नृत्य करती है, पर ये सभी व्यभिचारी व्यभिचारिणी नहीं माने जाते क्योंकि भाव खोटे नहीं होते हैं यदि केवल स्पर्श मात्र से दोष माना जाये तो किसीका शीलव्रत, पतिव्रत, पत्नी व्रत निर्दोष नहीं पल सकता तथा डॉक्टर की कितनी पत्नियां हो जायेगी कोई गणना नहीं कर सकता। अतः अपने परिणाम हमेशा ठीक रखना चाहिए। परिणामों को ठीक रखने के लिए बाह्य सदाचार की परम आवश्यकता है। बाह्य सदाचार, मान मर्यादा को बिगाड़ना नहीं चाहिए। अन्तरंग के बिगड़ने पर विनाश अवश्यंभावी है तथा बाह्य के बिगड़ने पर भी अन्तरंग की भूमिका बिगड़ जाती है। इसलिए सदाचार के साथ साथ लोक निंदा से भी भयभीत रहना चाहिए। आचार्य श्री कुंदकुंदजी ने मूलाचार में कहा है-

संजममविराधंतो करेउ ववहार सोधणं भिक्खू।
ववहार दुगंछावि य परिहरउ वदे अभंजंतो।।९४०। समय.अधि.।।अ.१०।।

गाथार्थ- संयम की विराधना न करता हुआ व्यवहार शुद्धि करे और व्रतों को भंग न करते हुए लोक निंदा का भी परिहार करे।

प्र.६-यदि भावों के द्वारा ही व्रतों में गुण या दोष उत्पन्न होते हैं तो हम कहीं भी कुछ भी चेष्टायें करें तो हमारे व्रतों में दोष कैसे लगेगा?

उत्तर- भावो कारण भूदो गुण दोसाणं जिणाविंति।।२।। गुण और दोषों में कारणभूत परिणाम ही हैं ऐसा जिनेंद्र भगवन्तों ने कहा है। भावपाहुड़ की इस गाथा को सुनकर या पढ़कर जो आप कहते हैं कि हम कहीं कुछ भी चेष्टाएं करें हमें तो कर्मों का बंध नहीं होगा कारण कर्मों का बन्ध भावों से होता है ऐसा कहा है सो ऐसा मत कहो। यदि आपकी ऐसी धारणा है तो यह आपका सदाचार नहीं है, दुराचार है। मर्यादा छोड़कर कहीं कुछ भी करना स्वच्छन्द आचरण है, उल्टी चांटने के समान है। जिसके भाव ठीक हैं उसकी बाह्य में प्रवृत्ति चरणानुयोग के विरुद्ध नहीं हो सकती क्योंकि **ज्ञानक्रिया नय परस्पर तीव्र मैत्री। २६७ अमृत.** ज्ञाननय और क्रियानय में तीव्र मित्रता है ऐसा नहीं है कि ज्ञान कहीं हो और चारित्र कहीं हो। यदि दोनों अलग अलग हों तो मोक्षमार्ग कैसे होगा? फिर मायाचार किसे कहोगे? अतः स्वच्छंद मनमाना आवारा बैल की तरह आचरण करने वाला गृहस्थ या साधु चरणानुयोग का अश्रद्धानी है, आत्मवंचक है और स्वपर घातक है।

अन्याय और अभक्ष्य पदार्थों का सेवन करने वाला मोक्षमार्गी न श्रावक श्राविका है और न साधु साध्वी।

सम्यग्दृष्टिः स्वयमयमहं जातु बन्धो न मे स्यात्,
इत्युत्तानोत्पुलकवदना रागिणोऽप्याचरन्तु।
आलम्बन्तां समितिपरतां ते यतोऽद्यापि पापाः,
आत्मानात्मावगम विरहात् सन्ति सम्यक्त्वरिक्ताः।।

स.सा. अ.क.१३७ आ.अमृतचन्द्रजी

अर्थ- यह मैं स्वयं सम्यग्दृष्टि हूँ अतएव मेरे कर्मबंध कदाचित् भी नहीं होता ऐसा विचारकर ये रागी विकारी जीव ऊपर मुंह फुलाकर स्वच्छन्दाचरण करें चाहें समिति आदि का आलंबन करें तो भी सम्यग्ज्ञान और सम्यग्दर्शन रहित हैं इसलिए मनमानी विरुद्धाचरण करने वाले होने से पापी ही हैं इसमें अनेकान्त नहीं हैं कि पापी हो सकते हैं या नहीं क्योंकि मोक्षमार्ग में मनमानी नहीं चलती है अतः रत्नत्रय में से यदि एक सही है तो शेष दो सही हैं और यदि एक गलत है तो शेष दो भी गलत हैं।

पढमक्खरं च एक्कं पि जो ण रोचेदि सुत्तणिद्दिट्ठं।
सेसं रोचंतो वि हु मिच्छाइट्ठी मुणेयव्वो ।।३९।। भ.आ.

गाथार्थ- सूत्र कथित आगम के पद और अक्षर जिसे नहीं रुचता तथा शेष में रुचि होते हुए भी उसे निश्चय से मिथ्यादृष्टि जानना चाहिए। जैसे दूध से भरे घड़े में किंचित् जहर की कणिका सारे दूध को जहरीला बना देती है वैसे ही किंचित् अविश्वास सारे विश्वास को अविश्वास बना देता है।

प्र.७-ब्रह्मचर्याणुव्रती को कैसी भावना का वा कितनी प्रकार की भावनाओं का चिंतन करना चाहिए कि जिससे यह व्रत अंत तक निर्दोष रीति से पालन होता रहे?

उत्तर- इस व्रती को निरन्तर ऐसी भावना मजबूत करनी चाहिए कि जिससे दिनचर्या निर्दोष हो और देव शास्त्र गुरु की, पंचों की साक्षीपूर्वक व्रत स्वीकार किया है तो उसको आमरण निभाना चाहिये। यदि व्रत भंग किया तो रावण के, रौद्रों के समान लोक में निंदित होकर नरक में सागरों पर्यंत नाना प्रकार के दुःखों को भोगना पड़ेगा। दूसरों की बहिन, बेटियों के साथ गलत व्यवहार किया तो दूसरे भी हमारी बहिन बेटियों के साथ गलत व्यवहार करेंगे। यदि हम अपने परिवार के साथ अनुचित व्यवहार नहीं देखना चाहते हैं तो हम भी दूसरों के परिवार वालों के साथ अनुचित व्यवहार नहीं करें। कहा भी है- **आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्। अर्थ-** जो व्यवहार अपने प्रतिकूल है वह व्यवहार दूसरों के साथ में नहीं करना चाहिए।

ब्रह्मचर्य व्रत को दृढ करने के लिए पाँच भावनाओं का चिंतन करना चाहिए।

स्त्रीरागकथा श्रवण तन्मनोहरांग निरीक्षण पूर्वरतानुस्मरण वृष्येष्टरस स्वशरीर संस्कार त्यागाः पंच।।६। त.सू. अ. ७। १. स्त्रीराग कथा श्रवण त्याग २. तन्मनोहरांग निरीक्षण त्याग ३. पूर्वरतानुस्मरण त्याग ४. वृष्येष्ट रस त्याग ५. स्वशरीर संस्कारत्याग ये ५ ब्रह्मचर्य व्रत को दृढ़ करने के लिए भावनायें हैं।

प्र.८-स्त्रीरागकथा श्रवण त्याग नामकी प्रथम भावना किसे कहते हैं?

उत्तर- १. स्त्रीरागकथा या पुरुषराग कथा श्रवण त्याग नामकी प्रथम भावना को कहते हैं। ब्रह्मचर्यव्रती को नव कोटि से पुरुषों को स्त्रियों के प्रति और स्त्रियों को पुरुषों के प्रति कामवासना पूर्वक प्रेम उत्पन्न

करने वाली कथाओं को न सुनना, न सुनाने को, न पढ़ना, न पढ़ाने को, न लिखना न लिखाने को कहते हैं। अतः ब्रह्मचर्य को निर्दोष पालने के लिए कामजनक कथाओं का त्याग करना चाहिये।

प्र.९-पुराणों में तथा कथाग्रन्थों में बालब्रह्मचारी जैन दिगम्बराचार्यों ने शृंगार रस का, स्त्री पुरुषों के अंग उपांगों का, गुप्तांगों का वर्णन क्यों किया, दूसरों को त्याग करायें और स्वयं वर्णन करें यह कहाँ का न्याय है तथा भड़ृजी खायें काकड़ी औरों को दे आखड़ी इस लोकोक्ति को चरितार्थ नहीं करता है क्या?

उत्तर- दिगम्बराचार्यों ने जो प्रथमानुयोग शास्त्रों में शृंगाररस का तथा स्त्री पुरुषों के अंग उपांगों का सुन्दरतम वर्णन किया है वह रागभावों से नहीं किया और न मनोरंजन के लिए किया है। दर्पणवत् जैसा का तैसा वर्णन करना इसमें क्या दोष है? यदि आपके सौंदर्य और वैभव का कोई वर्णन करे तो आप उसे सही कहेंगे या गलत? तब मोक्षमार्गियों के वर्णन को अन्याय क्यों कहा किंतु इसमें कोई विशेष रहस्य छिपा हुआ है।

प्र.१०-तो फिर यह विशेष रहस्य क्या है?

उत्तर- जो श्रोता या मुमुक्षु दीक्षा लेना चाहता है उसकी परीक्षा के लिए यह विशेष वर्णन किया है।

हेतौ प्रमत्तयोगे निर्दिष्टे सकल वितथवचनानाम्।
हेयानुष्ठानादेरनुवदनं भवति नासत्यम्।।१००।। पु.उ. आ. अमृतचन्द्रजी

अर्थ- समस्त ही झूंठ वचनों का प्रमाद सहित योग हेतु है अतः प्रमाद के बिना हेय उपादेय आदि अनुष्ठानों के संबंध में बोलना झूंठ नहीं है। असंयम प्रत्यय होने से मनोरंजन के वचनों में तीव्र राग होता है जो असंयम के साथ संभव है, संयम के साथ नहीं।

प्र.११-छठवें प्रमत्तसंयत गुणस्थान में पन्द्रह प्रकार का प्रमाद रहता है और प्रमाद में चार विकथाएं शामिल हैं तब आपने कैसे कहा कि मनोरंजन असंयम के साथ संभव है संयम के साथ में नहीं?

उत्तर- छठवें गुणस्थान में संज्वलन क्रोध, मान, माया और लोभ का तथा हास्यादि नोकषायों का वासनाकाल अर्थात् संस्कार केवल अन्तर्मुहूर्त बताया है जो कुछ ही सेकिंडों के बराबर है और वचन रचना में, वार्तालाप में, हंसी मजाक में मिनटों घंटों का समय लगता है फिर या तो गुणस्थानों की कालप्ररूपणा को बदलना होगा या विकथाएं स्वीकार करनी पड़ेंगी? इसका आप क्या समाधान करेंगे? अतः जो प्रमत्तसंयत गुणस्थान में पंद्रह प्रकार का प्रमाद बताया है वह बाह्य में क्रियात्मक न लेकर सिर्फ भावात्मक समयों का लेना चाहिए नहीं तो आदिनाथ, बाहुबली ने दीक्षा लेते ही मौन धारण किया था तथा आहार, विहार और निहार का त्याग किया था फिर उनके प्रमाद कैसे घटित होगा और प्रमाद न होने से छठवाँ गुणस्थान नहीं बनेगा तथा प्रमत्त न होने से अप्रमत्त भी न बनेगा फिर आगे के गुणस्थान कैसे बनेंगे? किंतु इन महापुरुषों के प्रमत्ताप्रमत्त गुणस्थान उस अवस्था में स्वीकार किया गया है इसलिए संयम के साथ हमने मनोरंजन की कथा या विकथाओं का निषेध किया है किंतु ये क्रियाएं असंयम के साथ में होती हैं संयम के साथ नहीं ऐसा कहा है।

प्र.१२-तो किस प्रकार की परीक्षा की है आप समझाइये?

उत्तर- हे भव्य जीव! इस रस काव्य को सुनकर यदि तेरे मन में शृंगार या विषय भोगों की इच्छा है

तो तेरा घर कुंटुंबादि धन सम्पत्ति का त्याग कर मुनि आर्यिका बनना ठीक नहीं है। यदि इस रस काव्य को सुनकर मन प्रसन्न हो जाता है, हंसी आती है, आँखें, हाथ आदि अंग, उपांग थिरकने लगते हैं, नाचने लगते हैं तो निश्चित रूप से समझना चाहिए कि अभी वैराग्य नहीं है, विषय भोगाभिलाषा मन में मौजूद है। अभी तेरे घर में भोग, उपभोग की सामग्री, शृंगार, अलंकार की सामग्री की कमी है। घर छोड़ने के बाद बड़े बड़े सेठ साहूकारों के घरों में आहारार्थ जाना होगा तथा तेरे दर्शनार्थ नाना तरह के दर्शनार्थी आयेंगे तब तूं क्या करेगा? नग्न अवस्था में बाजारों के, शहरों के बीच से विहार करते समय वहाँ नाना प्रकार की सामग्री दृष्टिगोचर होगी तब मन स्वाधीन न होने से उस समय क्या करेगा? मन के बिगड़ने से तन बिगड़ेगा तब एक कदम भी रखना मुश्किल होगा और इससे तेरी आत्मा का पतन होगा, धर्म की, गुरु की, कुल परम्परा की, माँ बाप की तथा परिवारादि की भी बदनामी होगी अतः ऐसी अवस्था में गृहादि का त्याग करना ठीक नहीं है तथा दिखावटी दीक्षा मत लो।

इस रस काव्य को सुनकर तेरा मन बिगड़ता है तो सामग्री सामने आने पर सुअर (सूकर) जैसी अवस्था होगी। जैसे सुअर भूंख से पीड़ित होकर भोजन की तलाश में इधर उधर घूमता हुआ, आवाज करता हुआ भ्रमण करता है, मल के मिल जाने पर जैसे खाने के लिए लपलपाता है और मन वश में न होने से भोगाभिलाषा की जागृति होने पर भोगों को भोगने के लिए सूकर के समान सामग्री सामने आने पर तूं भी लपलपायेगा। अतः दीक्षा लेना योग्य नहीं है।

यदि रस काव्य को सुनकर या पढ़कर मन में विकार नहीं होता है तो शीघ्र ही घर कुटुम्ब छोड़कर दीक्षा ले लो। इस प्रकार वैराग्य की पहंचान करने के लिए, बलवीर्य को जानने के लिए वर्णन किया है, पतन कराने के लिए नहीं। दिगम्बर जैन निर्ग्रंथ गुरुओं को मोक्षमार्ग में आयतन माना है और जो पतन के मार्ग में लगा है लगा रहा है वह आयतन कैसा? वह तो अनायतन हुआ, मोक्षमार्ग का बाधक हुआ।

रागादि दोष संयुक्तः प्राणिनां नैव तारकः।
पतन्तः स्वयमन्येषां न हि हस्तावलम्बनम्।।२५।। आ. वादीभसिंह

गाथार्थ- रागादि दोषों से युक्त देव गुरु प्राणियों को संसार सागर से पार नहीं कर सकते। निश्चय से आप ही डूबने वाला दूसरों को ऊपर उठने के लिए अपने हाथ का सहारा नहीं दे सकता है।

रागद्वेषमोहाक्रान्त पुरुषवचनाज्जातमागमाभासम्।।५१।। अ. ६ आ. माणिक्यनंदि कृत परीक्षामुख

सूत्रार्थ- राग द्वेष मोह से सहित पुरुष के वचनों से उत्पन्न हुए ज्ञान को आगमाभास कहते हैं, मिथ्याशास्त्र कहते हैं।

अन्तर रागादिक धरैं जेह, बाहर धन अंबर तैं सनेह।
धारैं कुलिंग लहि महतभाव, ते कुगुरु जन्म जल उपलनाव।। छ.ढा. २

अर्थ- जो अंतरंग और बहिरंग परिग्रह से सहित हैं, लौकिक भेषधारी हैं, ख्याति पूजा लाभ की भावना रखते हैं, वे कुगुरु भवसमुद्र में पत्थर की नाव के समान हैं जो डूबते और डुबाते हैं।

इसलिए जो पतन करायें वे धर्मायतन नहीं हो सकते, पूज्य गुरुपरमेष्ठी नहीं हो सकते वे तो लौकिक विषय भोगी, आरंभ परिग्रही पत्थर की नाव के समान कुगुरु हैं, मिथ्यागुरु हैं अतः वे ग्रन्थकर्ता जैन दिगम्बर आचार्य प्रमाण थे और उनके वचन भी प्रमाण हैं जैसे मानसिक बीमारी से

पीड़ित रोगी के सामने आने पर मनोवैज्ञानिक डॉ. किन किन शब्दों के द्वारा रोगी के भावों को नहीं पकड़ता है अब यहाँ पर डॉ. जिन शब्दों का प्रयोग करता है क्या वे शब्द पाप रूप हैं या रोग को निकालने के लिए या स्वास्थ्य लाभ के लिए? नहीं। डॉ. के वे शब्द मलिन मनवालों के लिए अशिष्ट मालुम पड़ सकते हैं किंतु स्वच्छ मनवालों के लिए निर्दोष मालुम होते हैं अतः ग्रंथकर्ताओं के अभिप्राय को समझ लेना परम आवश्यक है। अतः प्रथमानुयोग शास्त्र में अश्रद्धान नहीं करना चाहिए। आजकल बुद्धि जीवियों को प्रथमानुयोग शास्त्रों पर अश्रद्धान होने से उनको वैराग्य नहीं होता। परमेष्ठियों के पद को प्राप्त करने की इच्छा नहीं होती और जो परमेष्ठी हैं उनके प्रति आदर भाव नहीं आता इसलिए द्रव्यानुयोग के समान ही प्रथमानुयोग शास्त्रों पर भी श्रद्धान करना चाहिए।

प्रथमानुयोगमर्थाख्यानं चरितं पुराणमपि पुण्यम्।
बोधि समाधि निधानं बोधतिबोधः समीचीनः।।४३।। र.श्रा. आ. श्री समन्तभद्र

गाथार्थ- सम्यग्ज्ञान पदार्थों का व्याख्यान करने वाले, एक महापुरुष के आश्रित कथा को चरित्र तथा महापुरुषों के समूह रूप से व्याख्यान करने वाले को पुराण, पुण्य स्वरूप रत्नत्रय की प्राप्ति तथा भवान्तर में साथ में ले जाने वाले उपाय को जो बताता है उसे गणधरदेव प्रथमानुयोग शास्त्र कहते हैं। **प्रथमानुयोगः प्रथमं मिथ्यादृष्टिमव्रतिकमव्युत्पन्नं वा प्रतिपाद्यमाश्रित्य प्रवृत्तोनुयोगो अधिकारः प्रथमानुयोगः।** (गो. जी. का. में आ. नेमिचन्द्र ने ३६१)

टीकार्थ- मिथ्यादृष्टि अव्रती या अव्युत्पन्न व्यक्ति के लिए जो रचा गया है वह प्रथमानुयोग है। इस प्रथमानुयोग को आचार्यों ने दृष्टिवाद अंग के तीसरे भेद में विभाजित किया है। अपनी तरफ से कुछ भी नहीं कहा, न ही लिखा। आजकल कुछ पंडित वर्ग त्यागी वर्ग भी ऐसा कहते हुए सुने जाते हैं कि आचार्यों को इतने खुले शब्दों में नहीं लिखना चाहिए तथा व्याख्यान भी नहीं करना चाहिए क्योंकि सुननेवालों के मन में विकार उत्पन्न हो सकता है? उनके लिए हम कहते हैं कि उन दिगम्बराचार्यों को लिखने में लज्जा नहीं आई किंतु इन भुक्तभोगियों को वृद्धावस्था होने पर भी भोग भोगने में, शृंगार करने में लज्जा नहीं आती किंतु पढ़ने में या सुनने में लज्जा आती है यही बड़ा आश्चर्य है! आजकल दीक्षार्थी को पहले प्रथमानुयोग के शास्त्र नहीं पढ़ाये जाते परीक्षा किए बिना दीक्षा दे दी जाती है। जैसे मिट्टी का घड़ा जब खरीदते हैं तो खरीदने के पहले उल्टी उंगलियों से बजाकर देखकर खरीदते हैं यों ही अंधेपन से नहीं खरीदते हैं। त्रैलोक्य पूज्य जिनदीक्षा देनी है, महावीर की मुद्रा का बाना देना है, जो बिना परीक्षा लिए दीक्षा दे दी जाती है सो उसीका यह विपरीत फल दिखाई दे रहा है कि शिष्य समुदाय दीक्षा लेने के बाद कोई आरम्भ परिग्रह में, कोई संस्था चलाने में, कोई आश्रम को चलाने में, कोई सामाजिक कार्यों में, कोई मंदिर बनवाने में, धर्मशाला खुलवाने में, कोई विषय भोगों को भोगने में फंसकर पतन के मार्ग में लगकर अपने जीवन को व्यतीत करते हुए धर्म और धर्मायतन की हंसी कराते हुए, माँबाप की निंदा कराते हुए, समय व्यतीत कर रहे हैं अतः दीक्षादायक और दीक्षार्थी ये दोनों परस्पर में परीक्षा कर सम्बन्ध जोड़ें तो धर्म की और समाज की बदनामी नहीं होगी। जब बाजार में या कुम्हार के यहां जाकर मिट्टी का घड़ा खरीदते हैं तब उल्टी अंगुलियों से बजा कर आवाज सही है तो खरीदते हैं यदि आवाज सही नहीं है और देखने में कितना ही सुंदर हो परंतु नहीं खरीदते हैं। ऐसे ही अपात्र को दीक्षा देने वाला आचार्य भी प्रायश्चित्त का अधिकारी हो ही जाता है।

जदि इदरो सोऽ जोग्गो छेदमुवट्ठावणं च कादव्वं।
जदि णेच्छदि छंडेज्जो अध गिण्हदिसोवि छेदरिहो।।१६८।। मूला.

गाथार्थ- यदि वह गुणहीन है, अयोग्य है तो उसे प्रायश्चित्त देकर शुद्ध करना चाहिए। यदि प्रायश्चित्त नहीं लेना चाहता है और आ. उसे संघ में रख लेते हैं तो वे आचार्य भी प्रायश्चित्त के योग्य होते हैं। इस प्रकार रागादि विकारों को उत्पन्न करने वाली कथाओं को वासना सहित सुनने सुनाने आदि का त्याग करना, प्रथम स्त्री राग कथा या पुरुषराग कथाश्रवण त्याग नामकी भावना समाप्त हुई।

प्र.१३-जो नग्न दिगम्बर है वह जैनसाधु ही होगा फिर दिगम्बर के साथ जैन विशेषण क्यों लगाना?

उत्तर- नहीं, सार्थक है क्योंकि वर्तमान में हिंदु नागासाधुवर्ग भी अपने को दिगम्बर साधु बोलने लगे हैं। इसी वर्ष २०१० में हरिद्वार महाकुंभ के मेले में नागा साधुओं के प्रवचनों में उन्होंने अपने आपको दिगम्बर पद के द्वारा संबोधित किया है। इस विषय से संबंधित विडियो केसेट भी प्रचार प्रसार में आये हैं। अतः उन नागा साधुओं के भेष से पृथक्करण के लिए दिगम्बर के साथ जैन विशेषण लगाना सार्थक हो जाता है अन्यथा हिंदु और जैन साधु दिगम्बर होने से समीचीन और मिथ्या मुद्रा कौन है कौन नहीं ऐसा संदेह बना रहेगा कारण हिंदु नागासाधु हाथी पर, रथ पर सवार थे, नाना पुष्पमालायें धारण किये हुए थे, लाठी तलवार लेकर नृत्य कर रहे थे आदि पर ये सर्वत्र सर्वकाल निर्वस्त्र नहीं रहते हैं कदाचित् चीवर/कटिवस्त्र धारण कर लेते हैं किंतु दिगम्बर जैन साधु यह कार्य नहीं करते हैं। इस कारण नाम एक होने पर भी कार्य और लक्ष्य दोनों के भिन्न भिन्न हैं।

प्र.१४-तन्मनोहरांग निरीक्षण त्याग नामकी दूसरी भावना किसे कहते हैं?

उत्तर- मन को हरने वाले अंगों को रागपूर्वक देखने का त्याग करने को तन्मनोहरांग निरीक्षण त्याग नाम की भावना कहते हैं।

प्र.१५-मनोहर अंग किसे कहते हैं?

उत्तर- परस्पर में एक दूसरे का जिस अंग को आँख से देखकर अथवा शेष इंद्रियों से अचक्षुदर्शन के द्वारा या अचक्षु निमित्तक मतिज्ञान के द्वारा मन में कामवासना उत्पन्न हो जाय सो उस अंग को मनोहरांग कहते हैं। इसी तरह नाना चित्रों को देखकर भी मन विकार को प्राप्त हो जाता है।

प्र.१६-अचक्षुओं के द्वारा यह भावना कैसे बन सकती है?

उत्तर- यदि अचक्षुओं के द्वारा यह भावना नहीं होती है ऐसा माना जाये तो नेत्रविहीन मनुष्यों के यह भावना नहीं होनी चाहिये किंतु देखा जा रहा है कि सूरदासों के भी संतानोत्पत्ति हो रही है अब उनके यदि यह भावना नहीं बनती है तो यह लौकिक क्रिया नहीं होनी चाहिये **'हाथ कंगन को आरसी क्या?'** अतः यह भावना अचक्षुओं के द्वारा भी बन जाती है जो प्रत्यक्ष में दिखाई दे रही है।

भावार्थ- कामवासना को छोड़कर प्रत्येक कार्य धर्मानुकूल करना चाहिए। यदि किसीके सामने देखना ही पड़े तो उसे माता, पुत्री, बहिन, पिता, पुत्र भाई की भावना से देखें। ऐसे परिणाम रखने से ही ब्रह्मचर्यव्रत का पालन अच्छी तरह से होता है। अनजाने में अचानक किसीका परस्पर में अंग उपांग दिख जाय तो वहाँ रंचमात्र भी पाप नहीं है। लेकिन पुनः पुनः देखना ही वासना का कार्य कारण है,

ब्रह्मचर्य व्रत में दोष लगाना है। इस प्रकार परस्पर में दुर्भावना का त्याग करना तन्मनोहरांग निरीक्षण त्याग नामकी दूसरी भावना समाप्त हुई।

प्र.१७-पूर्वरतानुस्मरण त्याग नामकी तीसरी भावना किसे कहते हैं?

उत्तर- ब्रह्मचर्य व्रत लेने के पहले जो भोग भोगे थे उन्हें स्मरण कर पुनः भोगने की भावना उत्पन्न करना पूर्वरतानुस्मरण कहलाता है और ऐसी भावना के त्याग करने को पूर्वरतानुस्मरण त्याग भावना कहते हैं। बाह्यकारण के बिना या बाह्य कारण के मौजूद होने पर भी पूर्व में भुक्त भोग याद आने पर निंदा, गर्हा करना, ऐसा विचार करना कि मैंने अनादि काल से इन विषय भोगों में फंसकर नाना प्रकार के दुःख भोगे हैं अब पुनः ऐसे विचार आ रहे हैं जो आत्मा को किंचित् विषय भोगों के लोभ में फंसाकर नरक, निगोद में ले जाकर पटक देंगे और वहाँ दारुण दुःख मेरे को भोगने पड़ेंगे आदि विचार कर अपने आपमें स्थिर होने से ब्रह्मचर्य व्रत दृढ़ होता है जो मोक्ष का साधन है तथा इससे विरुद्ध भावना के कारण पूर्वकाल में नारायण, प्रति नारायण, नारद, रौद्र, ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती, सुभौम चक्रवर्ती आदि महापुरुष पुण्य पुरुष होते हुए भी विषय भोगों में फंसकर नरकायु को बांधकर मरणकर नरक में उत्पन्न होकर वहाँ के दारुण दुःख भोग रहे हैं। जिनकी हजारों देवतागण सेवा करते थे, नौकर चाकर थे, वे कोई भी उनको नरक के दुःखों से नहीं बचा सके। अतः ऐसी निकृष्ट भावनावालों को नरक निगोद ही शरण है। केवल व्रत लेने मात्र से कल्याण नहीं होता किंतु भावों सहित व्रतों का पालन करने से कल्याण होता है।

दीक्षाक्षणान्तरात्पूर्वं ये दोषा भव संभवाः।
ते पश्चादपि दृश्यन्ते तन्न सा मुक्ति कारणम्।।१६।। उ.अ.१ पृ.४

गाथार्थ- दीक्षा धारण करने के पहले जो दोष उत्पन्न हुए थे वे यदि दीक्षा लेने के बाद भी किए तो केवल दीक्षा मोक्ष की कारण नहीं है। आ.सोमदेव

भावार्थ- जैसे कुत्ता उल्टीकर वापिस पुनः खाता है वैसे ही देव शास्त्र गुरु से प्रतिज्ञा धारण कर और पालन करने में समर्थ होकर के भी यदि प्रतिज्ञा का पालन नहीं करता किंतु उल्टा आचरण करता है तो उसका जीवन कुत्ते के समान है। दूसरी बात यह है कि यदि प्रतिज्ञा पालन करने की सामर्थ्य नहीं है तो प्रतिज्ञा नहीं करनी चाहिए। यदि भाग्यवशात् प्रतिज्ञा कर ली और प्रतिज्ञा भंग करने का कारण उपस्थित हो जाय तो उस समय समाधि लेना श्रेष्ठ है किंतु नियम तोड़ना श्रेष्ठ नहीं है क्योंकि जो जन्मजात भंगी है वह सिर्फ भंगी है किंतु नियम तोड़ने वाला महाभंगी है जो उभयलोक में निंद्य है, अपूज्य है, त्याज्य है।

पूर्वरतानुस्मरण भावना में पाँचों इन्द्रियों का विषय और मन का विषय भी आता है जिससे ब्रह्मचर्य पूरा दूषित हो जाता है और कालान्तर में पूर्ण रूप से ब्रह्मचर्य को यह भावना नष्ट कर देती है। इसका खुलाशा करते हैं- जैसे कि किसी ने किसी स्त्री के मुख से शब्द संगीत सुना तब उस शब्द संगीत को सुनकर विचार किया कि इसी प्रकार हमारी पत्नी का कंठ है, वह बहुत मधुर गाती है, बोलती है इन कर्ण मधुर शब्दों से अपने अंतस्ताप को उत्पन्न करना या कामाग्नि को बढ़ा लेना, इसी प्रकार किसी स्त्री के रूप लावण्य अंग उपांगों को देखकर के अपनी पत्नी के रूप लावण्य अंग उपांगों की याद कर मन में प्रसन्न होना आदि, पुनः इसी प्रकार किसी स्त्री की सुगंधित द्रव्यों से संस्कारित

गंध को सूंघ करके अपनी स्त्री के सुगन्धित संस्कारों की याद करना कि हमारी पत्नी इसी प्रकार के तेल, पुष्प, स्नो, क्रीम पाउडर आदि का लेप करती है इतर लगाती है जैसे पशुवर्ग सूंघ करके वासना को प्राप्त होते हैं ऐसे ही कामी पुरुष सूंघ करके वासना को प्राप्त होते हैं। इसी प्रकार किसी के द्वारा बनाये गये भोजन को ग्रहण कर ऐसा ही हमारी पत्नी भी अच्छा भोजन बनाती है, बहुत अच्छा भोजन कराती है, यह अच्छा धातुवर्धक भोजन है इससे खूब ताकत आयेगी आदि विचार करना, इसी तरह किसी अबला के हाथ आदि के लग जाने पर उसके शरीर के अंग वगैरह ठंडे हैं या गर्म हैं, कठोर हैं, मुलायम हैं या रूखे हैं, चिकने हैं आदि ऐसे ही हमारी पत्नी के अंग प्रत्यंग हैं जो काम क्रीड़ा के समय स्पर्श किये थे, रोम रोम से हर्ष उत्पन्न हुआ था, बार बार चुम्बन किया था उस समय जो आनन्द आया था वह अभूतपूर्व था आदि विचार इंद्रियों के विषय कहलाये तथा किसी एकान्त स्थान में स्थित होकर बाह्य साधन के बिना केवल मन में ही विचार हुआ तो मन का विषय कहलाया इससे जो पुनः मन में क्षोभ उत्पन्न होता है, उद्रेक पैदा होता है उससे ब्रह्मचर्यव्रत घाता जाता है। यह भावना व्रत लेने के पूर्व भुक्तभोगी के ही बन सकती है क्योंकि इसने भूतकाल में पांचों इन्द्रियों के इष्टविषय भोगे हैं किंतु जिन्होंने भरत चक्रवर्ती के ९२३ पुत्रों की तरह भूतकाल में भोग भोगे ही नहीं हैं उनके पूर्वरतानुस्मरण नामकी यह भावना उत्पन्न ही नहीं हो सकती है। हाँ जब पूर्व का अर्थ भूतकालवाची न कर भावीकालवाची करेंगे तब यह भावना बन जाती है जैसे अविवाहित परस्पर में देख कर मैं शादी करुंगा, भोगूंगा ऐसी भावी काल संबंधित भावना उत्पन्न हो जाती है क्योंकि पूर्व के भूत और भावी ये दोनों अर्थ होते हैं इसलिए इस पूर्वरतानुस्मरण त्याग की भावना में पाँचों इन्द्रियां और मन को वश में करने के लिए कहा गया है। यदि सभी विषय मौजूद हैं और यह भावना उत्पन्न न हुई तो किसी भी प्रकार से शीलव्रत में रंचमात्र भी दोष पैदा नहीं होगा। यह भावना सभी अनर्थों की जड़ है अतः इसका त्याग करना ही श्रेष्ठ है।

प्र.१८-वृष्येष्ट रस त्याग नामकी तीसरी भावना किसे कहते हैं?

उत्तर- जिन रसों के सेवन करने से शरीर में धातु उपधातुयें अधिक मात्रा में उत्पन्न हों तथा पाचन करने में कठिनाई हो उसे वृष्येष्ट रस कहते हैं और इनके त्याग की भावना को या त्याग करने को वृष्येष्ट रस त्याग भावना कहते हैं। इस चौथी भावना में दो प्रकार के रसों को छोड़ने की बात कही है-

खीर दहि सप्पि तेलं गुड लवणाणं च जे परिच्चयणं।
तित्त कडु कसायंविल मधुररसाणं च जं चयणं।।४१३।।

अर्थ- दूध दही, घी, तैल, शक्कर और नमक ये ६ रस पुष्टि करने वाले होने से ये वृष्यरस (गरिष्टरस) कहलाते हैं। चरपरा, कडुआ, कषायला, खट्टा और मधुर ये ५ रस स्वाद को बढ़ाने वाले होने से इष्टरस कहे जाते हैं। आ. श्री कुंदकुंदजी ने मूलाचार अ. ५।

प्र.१९-वृष्टरस (पौष्टिकरस) किसे कहते हैं?

उत्तर- जिन रसों का पाचन करना कठिन हो तथा रजोवीर्य अधिक मात्रा में उत्पन्न हों वे वृष्यरस कहलाते हैं इसके ६ भेद हैं। **नामः-** दूध, दही, घी, तैल, शक्कर और नमक।

प्र.२०-इष्टरस (स्वादिष्टरस) किसे कहते हैं?

उत्तर- जो भोजन में रुचि बढ़ाते हैं, जिससे भोजन में प्रीति की वृद्धि होती है उसे इष्टरस कहते हैं।

इसके ५ भेद हैं। **नामः-** चरपरा, कडुआ, कषायला, खट्टा और मधुर।

अतः ब्रह्मचर्यव्रती को दोनों प्रकार के रसों के प्रमाण का उल्लंघन न करते हुए सेवन करना चाहिए यानी मात्रानुसार सेवन करना चाहिए। यदि प्रमाण का उल्लंघन कर दोनों रसों का सेवन किया तो अधिक मात्रा में रजोवीर्य की उत्पत्ति होने से मन में विकार होगा, मन विकृत होने से लिंग और योनि में चेतनता उत्पन्न होगी तथा प्रमाद की वृद्धि होने से विषयों में प्रवृत्ति होगी जिससे आर्त्तध्यान रौद्रध्यान बनेगा, षडावश्यकों के पालन करने में बाधा आयेगी, निद्रा भी अधिक आयेगी, दुःस्वप्न आने से विषयों में प्रवृत्ति होगी। आलोचना पाठ में एक पद्य पढ़ते हैं-

निद्रावश शयन कराई, सुपने मधि दोष लगाई।
फिर जाग विषयवन धायो, नाना विध विषफल खायो।।

इसके अलावा विकथायें करेगा, हंसी मजाक करेगा जिससे वैरविरोध उत्पन्न होगा इससे दुर्ध्यान उत्पन्न होंगे जिससे व्रत संयम का समूल नाश होगा और मरणकर नरक निगोद में जाकर भयंकर दुःख भोगने पड़ेंगे। अतः प्रमाण का उल्लंघन कर रसादि का सेवन करना धर्मात्माओं को योग्य नहीं है किंतु मात्रानुसार ही सेवन करना चाहिए जिससे यम, नियम, संयम का पालन अच्छी तरह से हो। देखो पशु पक्षी कभी भी प्रमाण का उल्लंघन करके भोजन नहीं करते भले ही उनका भोजन मांस हो या रक्त हो या घास पानी हो। पशु पक्षी सिर्फ ऋतुमति के समय कामसेवन करते हैं, गर्भवती होने पर सूंघकर जानकर दूर से छोड़कर एक साथ रहते हुए, खेलते हुए भी कामसेवन नहीं करते। उनमें वासना ही उत्पन्न नहीं होती और निद्रा आदि सभी कार्य अपने अपने समय पर ही करते हैं। वे पशुपक्षी शक्तिहीन नहीं होते हैं, अंगहीन या अंग उपांग भी कमजोर नहीं होते क्योंकि उनका भोजनपान, कामक्रीड़ा सीमित है किंतु मनुष्यों में भोजन, प्रभु भजन और भोगों की मर्यादा बिल्कुल समाप्त हो गई है। चाहे वे गृहस्थ दम्पत्ति हों, धर्मात्मा हों या अधर्मात्मा, व्रती हो या अव्रती, संयमी हों या असंयमी। ये प्रमाण का उल्लंघन कर भोजनपान रसादि का सेवन करते हैं जिससे प्रतिदिन मैथुन सेवन करना, इधर उधर ताकना, अशिष्ट हंसी मजाक करना, दिन में सोना, सामायिक में शराबियों की तरह झूमना, नींद निकालना आदि दुष्कृत करते हैं। जो बुद्धिमान कहलाते हैं वे भी प्रमाण का उल्लंघन कर भोजनपान रसादि का सेवन करते हैं वे भी इन दुराचारों में फंसे रहते हैं किंतु जो मात्रानुसार रसादिक का सेवन करते हैं वे नियमतः वैराग्य को उत्पन्न कर, संयमी बनकर, परमार्थ धर्म को दृष्टि में रखकर, प्रवृत्ति रूप धर्म को पालते हुए भोगियों के लिए आदर्श स्वरूप होते हैं। भोगरूपी रोग से युक्त रोगियों के लिए परम औषधि के समान होते हैं। इसलिए ब्रह्मचर्यव्रती को इस ब्रह्मचर्य व्रत को कायम रखने के लिये मात्रानुसार रसादि का सेवन करना चाहिए। भोजन कराने वालों को और आहारदान दाताओं को चाहिए कि वे भोजन कराते समय या दान देते समय हठाग्रह नहीं करें किंतु एकादबार मना करने पर मान जाना चाहिए। आपने एक बार आहारदान देकर अपना रास्ता पकड़ लिया किंतु आपके गुरुओं को तो आहार के थोड़े समय के बाद ही ध्यान अध्ययन में स्थिर होना है, दिनरात व्यतीत करना है। यदि आहारदान से धर्मध्यान में बाधा उत्पन्न हुई और दुर्ध्यान से समय व्यतीत किया तो आपका

दान कैसा? आ. अमृतचन्द्रजी ने पु. उ. में कहा है-

रागद्वेषासंयममद दुःख भयादिकं न यत्कुरुते।

द्रव्यं तदेव देयं सुतपः स्वाध्यायवृद्धिकरम्।।१७०।।

गाथार्थ- राग, द्वेष, असंयम, मद, भय, दुःख आदि जिससे उत्पन्न न हो तथा समीचीन तप, स्वाध्याय, ध्यान आदि की वृद्धि हो, वही सामग्री दान में देने योग्य होती है। इसलिए दान देते समय विवेक को भूलना नहीं चाहिए। आत्मा को परमात्मा बनाना है, बहिरात्मा नहीं क्योंकि वृक्ष में जैसा खाद पानी दिया जाता है वैसा ही उसमें फूल फल आता है। ऐसे ही मनुष्य रूपी वृक्ष में जैसा भोजनपानी दिया जायेगा वैसा ही उसमें ध्यान अध्ययन का परिणाम उत्पन्न होगा।

प्र.२१- स्व शरीर संस्कार त्याग नामकी पाँचवीं भावना किसे कहते हैं?

उत्तर- शरीर को नाना रंगबिरंगे वस्त्रों से, सुगन्धित तेलों से, चन्दन, उबटन आदि के द्वारा तथा सोना, चाँदी, हीरा आदि के अलंकारों से दूसरे मोहित होवें या मोहित करने के लिए सजाना कि मैं सभीको अच्छा लगूं या अच्छी लगूँ, मेरे को चाहें या स्वीकार करें अतः नाखून सुन्दर बनाना, दांतों को साफ रखना, मेंहदी लगाना, लिपस्टिक लगाना, स्नो पाउडर, क्रीम लगाना, अच्छे घुंघराले बाल बनाना आदि से शरीर को सजाने के उपायों को शरीर संस्कार कहते हैं। यह शरीर तो रजोवीर्य से उत्पन्न हुआ है, सप्तमल धातुओं से भरा और पुष्ट हुआ है, मलमूत्रादि को उत्पन्न करता है। इसलिए ऐसे शरीर को सजाना संस्कारित करना मलमूत्र को संस्कारित करना, मलमूत्र को सजाना है, शरीर की सेवा करना मलमूत्र की सेवा करना है। मलमूत्र में प्रेम करना ही मलेच्छपना है। जिसका अर्थ मल की इच्छा करना होता है। **अवर्ण इवर्णे ए।।२७।।** इस सूत्र से मल + इच्छा = मलेच्छ यहाँ गुणसंधि हुई। का. रू. व्याकरण आ. शर्ववर्म

संधिप्रकरण- अ आ के आगे इ ई के आने पर ए हो जाता है अतः यहाँ मल में जो ल है उस ल के अ तथा इच्छ के इ का अ+इ को परस्पर में मिलाने से ए हुआ अर्थात् मल इच्छ मलेच्छ हुआ। शरीर को सजाना ही मलेच्छ पना है, नीचगोत्र का आश्रव करना है।

उच्चंणीचं चरणं उच्चंणीचं हवे गोदं।।१३।। आ. नेमिचन्द्र गो. क.

अर्थ- उच्च आचरण से उच्चगोत्र और नीच आचरण से नीचगोत्र का आश्रव बंध होता है। इसका अभिप्राय यह है आत्म उत्थान के लिए जो आचरण और परिणाम किये जाते हैं वह उच्चगोत्र तथा शरीर के उत्थान के लिए, सजाने के लिए जो आचरण और परिणाम किये जाते हैं वह नीचगोत्र है क्योंकि जैसी मन वचन काय की चेष्टा होती है वैसा ही कर्मों का आश्रव बंध होता है और नीचगोत्र का आश्रव बंध मिथ्यात्व गुणस्थान में प्रायोग्यलब्धि के ३४ बंधापसरणों में से २४वें बंधापसरण तक ही होता है, हो सकता है, इसके आगे विच्छेद हो जाता है। सासादन गुणस्थान में जो नीचगोत्र का आश्रव बताया है वह पतन की अपेक्षा से कहा है क्योंकि सासादन गुणस्थान उपशमसम्यग्दर्शन अथवा द्वितीयोपशम सम्यग्दर्शन के काल में कम से कम एक समय और अधिक से अधिक ६ आवली शेष रहने पर अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया और लोभ में से किसी एक के उदय में आने पर उभय सम्यक्त्व की विराधना कर सासादन सम्यक्त्व को प्राप्त होता है किंतु मिथ्यात्व गुणस्थान से सासादन गुणस्थान की प्राप्ति नहीं होती है किंतु अतत्त्व श्रद्धान मिथ्यात्व और सासादन में समान

है। अंतर केवल इतना है कि मिथ्यात्व गुणस्थान में अतत्त्व श्रद्धान व्यक्त है तो सासादन में अतत्त्व श्रद्धान अव्यक्त है। आगे के गुणस्थानों में नीचगोत्र की बंध व्युच्छिति हो जाती है। बंध के अभाव के लिए आश्रव का अभाव करना और आश्रव के अभाव के लिए परिणति का अभाव करना होता है। अतः परिणति के अभाव के लिए आ. श्री उमास्वामीजी ने शरीर संस्कार के त्याग का उपदेश दिया है। यदि शरीर को भविष्य में प्राप्त करना है तो शरीर को बाह्य सामग्री से सजाना है और यदि आत्मा प्राप्त करना है तो आत्मा को वैराग्य, तप, संयम रत्नत्रय से सजाना है। आत्मा को सजाये बिना मोक्षमार्ग नहीं मिलता तथा वैराग्य के बिना आत्मा को सजाना होता नहीं और शरीर संस्कार के त्याग किये बिना वैराग्य होता नहीं, ऊपर रत्नत्रय से मतलब भेद रत्नत्रय से है। इसलिए ब्रह्मचर्यव्रत को पालने के लिए स्वशरीर संस्कार त्याग नामकी भावना का निरन्तर चिंतन करना चाहिए। हमने इस शरीर के मोह में फंस करके कुछ कम चौरासी लाख योनियों में नाना प्रकार के दुःख भोगे हैं, यह शरीर महा अपवित्र है, अशुचि है, अनित्य है, दुर्गंधयुक्त है, ऐसे शरीर में क्या प्रीति करना इत्यादि पाँचों इंद्रियों के विषयों में प्रवृत्ति करने से अपने अपने गुणस्थानानुसार ब्रह्मचर्यव्रत की विराधना और त्याग करने से साधना होती है। शरीर संस्कार करना, स्पर्शन इंद्रिय का सजाना है और स्थावर नाम कर्म, एकेन्द्रिय जाति नाम कर्म और स्पर्शनेंद्रिय नाम कर्म ये तीनों सजातीय नाम कर्म की प्रकृतियां हैं, इनका आश्रव मिथ्यात्व गुणस्थान में ही होता है जो प्रायोग्यलब्धि के ३४ बंधापसरणों में से १८वें बंधापसरण में ही व्युच्छिन्न हो जाती हैं। इसलिए ब्रह्मचर्य व्रत लेने के बाद में शरीर संस्कार का किंचित् परिणाम होना अतिचार है और पुनः पुनः परिणाम होना अनाचार दोष है। अनाचार के उत्पन्न होने पर व्रत रूपी मोक्षमार्ग का समूल विनाश हो जाता है। अतः शरीर को नाना तरह की बाह्य वस्तुओं के द्वारा सजाने का और सजाने के भावों का त्याग करना चाहिए। यहाँ पर सिर्फ विचार करना अर्थ न लेकर तदनुरूप परिणत होना ऐसा अर्थ लेना चाहिए। जैसे पेट में दर्द होने पर दर्द को दूर करने की भावना से दर्द दूर नहीं होता किंतु यथायोग्य पथ्यापथ्य और औषधि के सेवन से ही दर्द दूर होता है, भावना मात्र से दूर नहीं होता ऐसे ही ब्रह्मचर्य व्रत धारण करने के बाद में भावना मात्र से ही व्रत का निर्दोष पालन नहीं होता किंतु तदनुरूप परिणत होने से ही व्रत का निर्दोष पालन होता है, अन्यथा नहीं। कथनी करनी एकरूप होना ही मोक्षमार्ग है और अन्तर होना संसारमार्ग है।

अन्तर- आ. श्री कुंदकुंदजी ने चारित्रप्राभृत की गाथा ३५ में और आ. श्री उमास्वामीजी ने त. सू. अ. ७ पाँच भावनाओं का कथन किया है। दोनों में चार भावनाएं समान हैं किंतु एक भावना में अन्तर है। चा. पा. में **संसक्त वसतिका** है तो त. सू. में **स्वशरीर संस्कार त्याग** नामकी भावना। संसक्तवसतिका का अर्थ है जिस समय जिस आसन, शैय्या या वसतिका में महिलाएं, आर्यिकाएं आदि निवास कर रही हैं उस समय उस स्थान आदि में व्रती, महाव्रती मुनिजन निवास नहीं करें ऐसे ही जिस समय पुरुषवर्ग या मुनिवर्ग वसतिका में निवास कर रहा हो उस समय आर्यिकायें, व्रती अव्रती श्राविकायें वहाँ निवास नहीं करें। कदाचित् निवास कर लिया तो व्रतभंग नहीं होगा किंतु निंदा का पात्र अवश्य ही बनना पड़ेगा। जैसे शराबी की दुकान पर कोई सत्पुरुष दूध ले जाकर पिये तो लोग उसे शराबी कहेंगे क्योंकि **संसर्गजा दोष गुणाः भवन्ति** संसर्ग से दोष गुण उत्पन्न होते हैं। उस वसतिका में निवास करने का निषेध सर्वकाल के लिए नहीं है क्योंकि जिस वसतिका, आसन आदि में अभी मुनिगण निवास करके चले गये बाद में कोई आर्यिका संघ आया तो उसी वसतिका में निवास करेगा, उसी पाटे पर बैठेंगीं विश्राम लेंगीं ऐसा नहीं है कि उनके लिए वसतिका आसन अलग से

बनाया जाय और नाम भी अलग अलग लिखा जाय। जैसे जिस वसतिका में मुनिराज अवधिज्ञानी ठहरे हुए थे बाद में उसी वसतिका में (गुफा में) अंजना और अंजना की दासी ठहरी थी, उसी गुफा में हनुमान का जन्म हुआ था। वर्तमान में भी मुनियों के लिए वसतिकायें अलग हों और आर्यिकाओं के लिए वसतिकायें अलग हों ऐसा नहीं है किंतु वे हीं वसतिकायें दोनों के उपयोग के लिए होती हैं किंतु वे परस्पर में एकसाथ एक समय में न ठहरकर भिन्न भिन्न समय में ठहरते हैं यह अन्तर है।

अतः परस्पर में एक के निवास करते समय दूसरे को निवास नहीं करना चाहिए। यदि किया तो परिणामों में विकार नहीं होने पर भी लोक में निंदा का पात्र बनना पड़ेगा। कहावत है- **यद्यपि शुद्धं लोक विरुद्धं न करणीयं न चरणीयम्।** यद्यपि कुछ कार्य आगम के अनुकूल होने पर भी लोक विरुद्ध होने से न करना चाहिए और न आचरण में लाना चाहिए। फिर भी आ. श्री ने प्र. चा. **आगमचक्खू साहू इंदिय चक्खूणि सव्वभूदाणि।।३४।।** समस्त असंयमी जन, मिथ्यादृष्टि जीवों के इंद्रियां ही नेत्र हैं और साधकों का आगम नेत्र है। इसलिए सभी मोक्षमार्गियों को अपने अपने गुणस्थान की मर्यादानुसार आगम की आज्ञा का पालन करते हुए तथा लोकनिंदा से भयभीत होते हुए आचरण करना चाहिए क्योंकि सभी को आत्म कल्याण इष्ट है, आत्मा का पतन कराना, नरक निगोद में ले जाना इष्ट नहीं है। आ. शिवकोटि (शिवार्य) ने भ. आ. में कहा है-

महिलाणं जे दोषा ते पुरिसाणं पि हुंति णीचाणं।
तत्तो अहियदरा वा तेसिं बलसत्ति जुत्ताणं।।९८७।।
जहसील रक्खयाणं पुरिसाणं णिंदिदाओ महिलाओ।
तहसील रक्खयाणं महिलाणं णिंदिदा पुरिसा।।९८८।।

गाथार्थ- नीच महिलाओं में जो दोष रहते हैं वे दोष नीच पुरुषों में भी रहते हैं तथा महिलाओं की अपेक्षा पुरुषों में बलवीर्य अधिकमात्रा में होता है। जैसे अपने शील की रक्षा करने के लिए पुरुषों को महिलाएं निंदित (त्याज्य) हैं वैसे ही अपने शील की रक्षा करने के लिए पुरुषवर्ग महिलाओं के लिए निंदित (त्याज्य) हैं।

ब्रह्मचर्य विशुद्ध्यर्थं सङ्गः स्त्रीणां न केवलम्।
त्याज्यः पुंसामपि प्रायो विट विद्यावलम्बिनाम्।।४३।। आ. शुभचन्द्र

गाथार्थ- हे भाई! ब्रह्मचर्य की रक्षा के लिए केवल स्त्रियों के संसर्ग का निषेध नहीं किया है किंतु विट् विद्यावलम्बी व्यभिचारी स्त्री पुरुषों का संग भी त्यागने योग्य कहा है। ज्ञानार्णव पृ. १५३

पणिदरस भोयणेण य तस्सुवजोगे कुसीलसेवाए।
वेदस्सुदीरणाए मेहुणसण्णा हवदि एवं।।१३७।। गो.जी.

गाथार्थ- कामोत्तेजक स्वादिष्ट और गरिष्ट रसयुक्त पदार्थों का सेवन करने से, कामभोगों में मन लगाने से, कुशीली स्त्री पुरुषों की संगति करने से तथा वेद कर्म की उदीरणा होने से मैथुनसंज्ञा की उत्पत्ति होती है। यहाँ पर भी केवल स्त्रियों का त्याग नहीं बताया है किंतु व्यभिचारिणी स्त्रियों के समान व्यभिचारी पुरुषों का भी त्याग करना बताया है। यहाँ गाथा ९८८ में जो निंदा पद का प्रयोग किया है उसका अर्थ त्याज्य है बुराई करना या पतन कराना, हंसी करना नहीं है किंतु जो साधु बनकर के

फिर विकारी होकर स्त्रियों के प्रति मोहित हो रहे हैं उनको निर्मोही बनाने के लिए इन शब्दों का प्रयोग किया है।

किं पुण गुण सहिदाओ इत्थीओ अत्थि वित्थड जसाओ।
णर लोग देवदाओ देवेहिं वि वंदणिज्जाओ।।९८९।। भ.आ.

गाथार्थ- जो गुणवान महिलाएं हैं जिनका यश लोक में फैला हुआ है जो लोक में देवता के समान हैं और देवों के द्वारा पूज्य हैं ऐसी महिलाओं की जितनी प्रशंसा की जाय उतनी कम ही है।

तित्थयर चक्कधर वासुदेव बलदेव गणधरवराणं।
जणणीओ महिलाओ सुरणरवरेहिं महियाओ।।९९०।।

गाथार्थ-तीर्थंकर, चक्रवर्ती, वासुदेव, बलदेव और श्रेष्ठ गणधरों को जन्म देने वाली महिलाएँ श्रेष्ठ देवों और उत्तम पुरुषों के द्वारा पूजनीय होती हैं।।९९०।

एगपदिव्वइकण्णावयाणि धारिंति कित्ति महिलाओ।
वेधव्वतिव्वदुक्खं आजीवं णिंति काओ वि।।९९१।।

गाथार्थ- कितनी ही महिलाएँ एक पतिव्रत और कौमार ब्रह्मचर्य व्रत धारण करती हैं, कितनी ही जीवन पर्यंत वैधव्य का तीव्र दुःख भोगती हैं।।९९१।।

सीलवदीवो सुच्चंति महीयले पत्तपाडिहेराओ।
सावाणुग्गहसमत्थाओ वि य काओवि महिलाओ।।९९२।।

गाथार्थ- ऐसी भी कितनी शीलवती स्त्रियाँ सुनी जाती हैं जिन्हें देवों के द्वारा सन्मान प्रातिहार्य आदि प्राप्त हुए तथा जो शील के प्रभाव से शाप देने और अनुग्रह करने में समर्थ थीं।।९९२।।

ओग्घेण ण बूढाओ जलंतघोरग्गिणा ण दड्ढाओ
सप्पेहिं सावदेहिं य परिहरिदाओव कोओ वि।।९९३।।

गाथार्थ- कितनी ही शीलवती स्त्रियाँ महानदी के जल प्रवाह में भी नहीं डूब सकीं और प्रज्वलित घोर आग में भी नहीं जल सकीं तथा सर्प व्याघ्र आदि भी उनका कुछ नहीं कर सके।।९९३।।

सव्वगुणसमग्गाणं साहूणं पुरिसपवरसीहाणं।
चरमाणं जणणित्तं पत्ताओ हवंति काओ वि।।९९४।।

गाथार्थ- कितनी ही स्त्रियाँ सर्व गुणों से सम्पन्न साधुओं और पुरुषों में श्रेष्ठ चरम शरीरी तीर्थंकर जैसे महापुरुषों को जन्म देने वाली माताएँ हुई हैं।।९९४।।

मोहोदयेण जीवो सव्वो दुस्सीलमइलिदो होदि।
सो पुण सव्वो महिला पुरिसाणं होइ सामण्णो।।९९५।।

गाथार्थ- सब जीव मोह के उदय से, कुशील से मलिन होते हैं और वह मोह का उदय स्त्री पुरुषों के समान रूप से होता है।९९५।।

तम्हा सा पल्लवणा पउरा महिलाण होदि अधिकिच्चा।
सीलवदीओ भणिदे दोसे किह णाम पावंति।।९९६।।

गाथार्थ- अतः ऊपर जो स्त्रियों के दोषों का वर्णन किया है वह सामान्य स्त्रियों की अपेक्षा से किया है। ऊपर कहे दोष शीलवती स्त्रियों में कैसे हो सकते हैं।।९९६।। जिस प्रकार स्त्रियों के योनि नाभि कांख और दोनों स्तनों के मध्य में सम्मूर्च्छन मनुष्य होते हैं उसी प्रकार **चक्रिस्कंधावार प्रस्त्रवोच्चार भूमयः शुक्र सिंहाणक श्लेष्म कर्ण दंत मलानि चांगुलासंख्यातभाग मात्र शरीराणां सम्मूर्च्छिमानां मनुष्यानां जन्म स्थानानि।भ.आ. ४४८।।** चक्रवर्ती की सेना के निवास स्थान की मलमूत्र त्यागने की भूमियां, वीर्य, नाक, थूंक, कान और दांत का मैल ये अंगुल के असंख्यातवें भाग मात्र शरीर वाले सम्मूर्च्छन मनुष्यों के जन्म स्थान है अर्थात् केवल स्त्रियों के शरीर में सम्मूर्च्छन मनुष्य नहीं होते हैं किंतु पुरुषों के उक्त स्थानों में भी सम्मूर्च्छन मनुष्य होते हैं।

सूत्र-परात्मनिंदाप्रशंसे सदसद्गुणोच्छादनोद्भावने च नीचैर्गोत्रस्य। त.सू.अ.६ सू ३४

सूत्रार्थ- परनिंदा से और अपनी प्रशंसा करने से, दूसरों के समीचीन गुणों को छिपाने से और अपने में असद्भूत गुणों के होने पर भी मैं गुणवान हूँ ऐसा कहने से नीचगोत्र कर्म का आश्रव होता है।

भावार्थ- नीचगोत्रकर्म के आश्रव के स्वामी मिथ्यादृष्टि जीव हैं और पतन की अपेक्षा सासादन सम्यग्दृष्टि है, किंतु सम्यग्दृष्टि तथा मुनिवर्ग नीचगोत्रकर्म के आश्रव के स्वामी नहीं है। कारण इन गुणस्थानों में नीचगोत्र कर्म के आश्रव कराने वाले परिणाम ही उत्पन्न नहीं होते। यदि उत्पन्न हुए तो वह मोक्षमार्गी ही नहीं रहा। अतः यहाँ निंदा का अर्थ त्याज्य लेना चाहिए, बुराई करना अर्थ नहीं। गुणवान स्त्री पुरुष सर्वत्र पूज्य हैं, उपादेय हैं दोषयुक्त स्त्री पुरुष सर्वत्र त्याज्य हैं, हेय हैं। जो महापुरुष होते हैं वे कभी भी किसी की निंदा नहीं करते यदि ये महापुरुष भी निंदा करने लगें तो नीच पुरुषों में और उच्च पुरुषों में कोई अंतर ही नहीं रहा दोनों समान हुए। केवल नामों में अन्तर है, दोष में अंतर नहीं है।

सज्जन दुर्जनौ समावेव यदि चित्तं मलीमसम्।
यात्यक्षान्ते क्षयं पूर्वः परश्चाशुभचेष्टिताम्।। २२०।। आ. सोमदेव उपासका.

अर्थ- यदि मन मलिन है तो सज्जन और दुर्जन दोनों समान हुए क्योंकि मन की निर्मलता के अभाव में तो सज्जन नष्ट हुआ तथा अशुभ चेष्टाओं के द्वारा दुर्जन नष्ट हुआ किंतु नष्ट दोनों हुए। सज्जन का मन मलिन है तो दुर्जन के अंतरंग और बहिरंग दोनों मलिन हैं। **दोषवादे च मौनम्। दृष्टि न दोषों पर जावे।। समाधिभक्ति.. मेरी भावना..**

अर्थ- किसी के दोषों को कहने में मेरा मौन रहे तथा दोषों पर निगाह ही न जाय। ऐसे विचार, भावना, धारणा उच्च पुरुषों की ही हो सकती है, नीच पुरुषों की नहीं।

प्र.२२-यदि ऐसा है तो ब्रह्मचर्यव्रत का कथन करते समय आचार्यों ने स्त्रियों के लिए मर्मच्छेदी, कटु शब्दों का प्रयोग क्यों किया जैसे कहीं पिशाचनी कहा, सर्पिणी कहा, कहीं अंगार के समान कहा, कहीं चण्डिका कहा, कहीं विषवृक्ष के समान हैं ऐसा क्यों कहा आदि?

उत्तर- ग्रन्थ कर्त्ताओं ने ये वचन निंदा की दृष्टि से नहीं कहे हैं किंतु संबोधन की दृष्टि से कहे हैं। जैसे पुष्पडाल और भावदेव के समान त्यागी व्रती मुनिपद में दीक्षित होकर भी मन में कामवासना जागृत हो रही है, स्त्रियों के प्रति अनुराग उत्पन्न हो रहा है, मन में उनके प्रति झुकाव हो रहा है तो उन त्यागियों की दुर्वासना को निकालने के लिए ऐसे शब्दों का प्रयोग किया है। दुराचारी महाव्रती, त्यागियों के लिए भी आचार्य श्री कुंदकुंद ने, शिवार्य ने नारकी, पशु, गन्ने के फूल के समान, गटर के पानी के समान, घोड़े की लीद के समान कहा है। जैसे घोड़े की लीद बाहर में चिकनी और भीतर में भूषा तिनका होता है ऐसे ही दर्शनार्थियों के आने पर कोई त्यागी बाहर से बगुला के समान कठोर आचरण, पत्थर की मूर्ति के समान सीधे नीचे देखते हुए बैठते हैं पर अंतरंग में ख्याति, पूजा, लाभ, विषय वासना, भूषा तिनका के समान विद्यमान है ऐसे नामधारी साधुओं को समझाने के लिए आ. श्रीकुंदकुंदजी ने घोड़े की लीद की उपमा दी है और ये वचन कटु औषधि के समान या कुम्हार के समान भाषा समिति के बाहर नहीं है क्योंकि भाषा समिति में हित मित और प्रिय वचन बोलने की आज्ञा है। ये वचन कर्ण अप्रिय होने पर भी मित और हित रूप हैं। जैसे कुम्हार घड़े के अन्दर हाथ लगाकर बाहर से चोट मारता है ऐसे ही आ. श्री ने पामर त्यागियों के लिए अंतरंग में करुणा धारण कर बाहर से कठोर वचनों के द्वारा चोट मारी है परन्तु आजकल के साधुओं को चोट ही नहीं लगती, ना मालूम किस कर्म का उदय है या इनका होनहार ही खोटा है या अभी अनन्त संसार बाकी है? अतः संबोधन करने के लिए आचार्यों ने ऐसे शब्दों का प्रयोग किया है उनको धर्म से वंचित करने के लिए नहीं।

यदि ये स्त्रियां ऐसी ही हैं तब उनके हाथ से बनाया हुआ आहार उन्हीं के हाथ से या दूसरों के हाथ से क्यों लिया? प्रशंसा क्यों की? दीक्षा क्यों दी? पूज्य क्यों बताया? अभिषेक, पूजा पाठ स्वाध्याय व्रत उपवास आदि क्यों करतीं हैं? जब किसी व्यक्ति को कुछ छुड़ाना होता है तो उसके सामने हानि बताई जाती है जैसे रोगी को हानिकारक सामग्री को छुड़ाने के लिए मरण का भय दिखाया जाता है तो वह मरण के भय से हानिकारक सामग्री को शीघ्र ही छोड़ देता है ऐसे ही बाह्य त्यागी की वासना को छुड़ाने के लिए अंतरंग से त्यागी बनाने के लिए ऐसे शब्दों के द्वारा आचार्यों ने कथन किया है। गयाजी बिहार की घटी घटना याद आ रही है। जब हम (आ. वासुपूज्यसागरजी) ८४लाख मंत्रों का लेखन कार्य कर रहे थे उस समय जबलपुर के कुछ यात्री श्री सम्मेदशिखरजी से यात्रा कर गयाजी आये, दोपहर का समय था बा. ब्र. भाग्या ने आकर चरण स्पर्श कर नमस्कार किया तब मैंने शिर पर हाथ रखकर आशीर्वाद दिया उस समय पास में बैठे हुए जबलपुर के प्रोफेसर ने तत्क्षण कहा कि महाराज आपके पैर स्त्री ने छू लिये इसलिये आपको ब्रह्मचर्य महाव्रत में दोष लग गया तब मैंने कहा कैसे दोष लगा वो बालब्रह्मचारिणी हैं उन्होंने गुरु समझकर चरणस्पर्श किया है, पति मानकर नहीं तथा मैंने शिष्या मानकर शिर पर हाथ रखकर आशीर्वाद दिया, पत्नी मानकर नहीं तब कैसे दोष लगा? इसी चर्चा के बीच में उनकी ८ वर्ष की बेटी पापाजी पापाजी बोलती हुई आई और गोद में बैठ गई तब मैंने उनसे पूंछा यह आपकी कौन है? बोले मेरी बेटी है। पुनः पूंछा आपके तो एक पत्नीव्रत है फिर यह गोद में क्यों बैठ गई? यदि हमको कोई चरणस्पर्श कर ले तो ब्रह्मचर्य महाव्रत में दोष आता है तो आपको भी पत्नी व्रत में दोष आना ही चाहिये। यदि आपको पत्नीव्रत में दोष नहीं लगा तो हमें ब्रह्मचर्य महाव्रत में दोष कैसे लगेगा? हमारे तो ब्रह्मचारिणी ने केवल चरणस्पर्श किये हैं किंतु आपकी जंघा पर तो बेटी बैठ ही गई तब उन्होंने शंका प्रतिशंका करने के बाद अपनी गल्ती स्वीकार कर ली। अतः दूसरों को दोष देने से पहले अपना संशोधन करना चाहिये।

प्र.२३-निंदा किसे कहते हैं?

उत्तर- मेरे को लोग अच्छा समझें, मेरी प्रशंसा करें, मेरे भक्त बनें इस भावना से दूसरों की सद्भूत या असद्भूत, उसने की है या नहीं, उसकी बदनामी के लिए, तिरस्कार के लिए दोष प्रकट करना, दोष लगाना यह निंदा कहलाती है।

ख्याति पूजा और लाभ की भावना मिथ्याचारित्र है जो मिथ्यादृष्टियों के ही संभव है, सम्यग्दृष्टियों के नहीं फिर ये परिणाम मुनियों के कहाँ से हो सकते हैं? यदि होते हैं तो वास्तव में मुनिपना ही नहीं रहा। ख्याति पूजा लाभ की भावना से ही निदान आर्त्तध्यान होता है और इन्द्रिय भोग सम्बन्धी निदान में तीनों अशुभ लेश्यायें ही संभव हैं, इन परिणामों के उत्पन्न होते ही मुनिपद छूट जाता है। अतः ये भाव सर्वथा त्याज्य हैं।

प्र.२४-अतिचार दोष किसे कहते हैं?

उत्तर- व्रतों के एकदेश भंग होने को अतिचार कहते हैं अथवा परिणामों में कुछ अधिक मलिनता उत्पन्न होने को अतिचार कहते हैं अथवा अणुव्रतों में प्रत्याख्यानावरण कषाय के जघन्य अंश के उदय में अतिक्रम दोष, मध्यम अंश के उदय में व्यतिक्रम दोष तथा उत्कृष्ट अंश के उदय में अतिचार दोष और अप्रत्याख्यानावरण कषाय के किसी भी अंश के उदय में अनाचार दोष उत्पन्न होता है।

प्र.२५-अनाचार दोष किसे कहते हैं?

उत्तर- व्रतों के सम्पूर्ण रूप से भंग होने को अनाचार कहते हैं अथवा परिणामों में मलिनता अधिक समय तक जम जाय उसे अनाचार कहते हैं। जैसे महामत्स्य के कान में रहने वाला तंदुलमत्स्य केवल खाने की भावना से मरकर सातवें नरक में उत्पन्न हुआ। उस तंदुलमत्स्य ने जीवों को मारकर नहीं खाया पर खाने की भावना निरंतर होने से, परिणामों की मलिनता के कारण उसे सातवें नरक में जाना पड़ा। अनाचार के उत्पन्न हुए बिना सातवें नरक में या किसी भी नरक में गमन हो नहीं सकता अतः कुछ मलिनता का होना अतिचार है और अधिक मलिनता का होना अनाचार है।

प्र.२६-ब्रह्मचर्य व्रत के अतिचारों के कितने भेद हैं और नाम कौन कौन हैं बताओ?

उत्तर- अतिचारों के भेद पाँच हैं।

अन्यविवाहाकरणानंगक्रीडा विटत्व विपुलतृषाः।
इत्वरिकागमनं चास्मरस्य पंच व्यतीचाराः।।६०।। र. श्रा.

गाथार्थ-१. अन्यविवाहाकरण २. अनंगक्रीड़ा ३. विटत्व ४. विपुलतृषा ५. इत्वरिकागमन। ये पाँच अतिचार हैं।

परविवाहकरणेत्वरिकापरिगृहीताऽपरिगृहीता गमनाऽनंगक्रीडा कामतीव्राभिनिवेशाः।।२८।।
अर्थः- इन आ. उमास्वामीजी और आ. समंतभद्रजी ने ब्रह्मचर्याणुव्रत के ५ अतिचारों में से ४ में समानता है केवल एक में अंतर है। आ. श्री समंतभद्रजी ने विटत्व अतिचार कहा है और आ. श्री उमास्वामीजी ने इत्वरिकागमन अतिचार के पति सहित और पति रहित दो भेद कर तथा समंतभद्रजी ने इन दोनों को एक मानकर कथन किया है इतना ही अंतर है।

प्र.२७-अन्यविवाहकरण अतिचार किसे कहते हैं?

उत्तर- जिसका कोई दूसरा सहायक है फिर भी उसका विवाह करना या कराना अथवा अपना ही नियम लेने के बाद दूसरा विवाह कर लेना अन्य विवाहाकरण अतिचार है।

प्र.२८-आपके मतानुसार तो जिसका कोई सहायक नहीं है उसका विवाह कराना अतिचार नहीं हुआ क्योंकि आपने लिखा है कि जिसका कोई सहायक है उसका विवाह कराना अन्यविवाहाकरण है?

उत्तर- यह अतिचार ब्रह्मचर्याणुव्रत का है, ब्रह्मचर्य प्रतिमा का या ब्रह्मचर्य महाव्रत का नहीं है क्योंकि गृहस्थावस्था में स्वनिमित्तक नियम लिया जाता है। यदि गृह में रह कर भी जिसका कोई सहायक नहीं है यदि उसका सम्बन्ध नहीं कराया जायेगा तो वह स्वच्छन्द पशुवत् आचरण करेगा जिससे समाज की, धर्म की तथा उस स्वयं की बदनामी होगी और असहाय की सहायता करना व्यवहारिक स्थितिकरण अंग और वात्सल्य अंग है अतः मैंने सहायक का नाम लिया है क्योंकि गृहस्थ अपने पुत्र पुत्रियों का सम्बन्ध कराता ही है। यदि ऐसा नहीं माना जाय तो कोई भी गृहस्थ व्रती नहीं बन पायेगा। गृहस्थ व्रती बनकर के भी अपने पुत्र पुत्रियों के सम्बन्ध नहीं कराये और वे सन्तानें अपने मन को रोकने में, समझाने में असमर्थ हैं तथा विवाह भी नहीं हुआ तो उन संतानों की क्या अवस्था होगी? इस बात को बुद्धिमान लोग स्वयं विचार करेंगे। यदि ब्रह्मचर्यव्रत के सम्बन्ध में ऐसा विचारा जाय कि वह अपने पुत्र पुत्रियों का भी विवाह नहीं कराये तो ऐसा ही परिग्रह परिमाण व्रत के संबंध में विचारना चाहिए अर्थात् व्रती गृहस्थ व्यापार भी नहीं कराये, वस्त्राभूषण, मकान भी न बनवाए क्योंकि उक्त कार्य करेगा तो परिग्रह प्रमाण व्रत में दोष लगेगा परन्तु गृहस्थ ये सब कार्य करेगा और करायेगा क्योंकि अणुव्रत का दूसरा नाम स्थूल व्रत भी है। इसी प्रकार शेष व्रतों के सम्बन्ध में भी विचार करना चाहिए। अन्यथा एक के व्रती बनने पर पूरे परिवार को व्रती बनना पड़ेगा या कोई भी गृहस्थ घर में रहकर त्यागी व्रती नहीं बन सकता है। इसलिए अन्यविवाहाकरण का मतलब है कि धार्मिक परिवार के अन्दर सहायकों का विवाह कराना या अपना स्वयं ही दूसरा विवाह कर लेना वह अन्यविवाहाकरण नामका अतिचार है।

प्र.२९-अनंगक्रीड़ा अतिचार दोष किसे कहते हैं।

उत्तर- देवगति में १६वें स्वर्ग तक के देवों में जो स्पर्श से, रूप देखने से, शब्द सुनकर के, मन में काम सेवन संबंधी कामभोग संबंधी विचार करने से उत्पन्न हुई आकुलता के दूर करने को मैथुन कर्म कहते हैं वही यहाँ मनुष्यों के अनंगक्रीड़ा कहा है। योनि लिंग के बिना शेष अंगों से काम वासना की पूर्ति करना अनंगक्रीड़ा है। जैसे गालों को दबाना, चुंबन करना, स्तनों का दबाना, हस्त आदि से वीर्य का निकालना, गुदा मैथुन, हस्तमैथुन आदि अनेक प्रकार की क्रीड़ायें करना।

प्र.३०-विटत्व अतिचार दोष किसे कहते हैं?

उत्तर- धर्मविरुद्ध, पद विरुद्ध मानमर्यादा को नष्ट करने वाले काम को बढ़ाने वाले किसानों, मजदूरों, ग्वालों की तरह अशिष्ट वचन बोलने को विटत्व कहते हैं।

प्र.३१-विपुलतृषा अतिचार दोष किसे कहते हैं?

उत्तर- अपनी विवाहिता के साथ काम की तीव्र इच्छा करना अथवा संतोष वृत्ति न होने को विपुलतृषा दोष कहते हैं। यह आकांक्षा अनर्गल भोजनपान और कुसंगति के कारण उत्पन्न होती है।

प्र.३२-इत्वरिकागमन अतिचार दोष किसे कहते हैं?

उत्तर- पति सहित व्यभिचारिणी, पति रहित व्यभिचारिणी, त्यक्ताव्यभिचारिणी, विधवाव्यभिचारिणी, अविवाहित व्यभिचारिणी स्त्रियों के पास में काम वासना सहित आना, जाना, भेजना, बैठना आदि कार्य इत्वरिकागमन नामक अतिचार कहलाता है। इनसे संबंध करने पर लोक में निंदा होती है, सबके सामने नीचा देखना पड़ता है, धनहानि भी होती है, वैरविरोध उत्पन्न होता है। ये परिणाम प्रमाद वश एकाद बार उत्पन्न हुए तो व्रत में किंचित् दोष और बुद्धि पूर्वक पुनः पुनः उत्पन्न हुए तो अनाचार दोष समझना चाहिए जो व्रत का समूल रूप से नाश करते हैं।

प्र.३३-वेश्या और व्यभिचारिणी स्त्री में क्या अन्तर है?

उत्तर- इन दोनों में काम सेवन की अपेक्षा कोई अन्तर नहीं है फिर भी वेश्या का कार्य आम जनता के साथ होता है तो व्यभिचारणी स्त्री का संबन्ध गुप्त रूप में होता है यही इन दोनों में अन्तर है।

प्र.३४-आपने ब्रह्मचर्य का कथन प्रारम्भ करते समय प्रतिज्ञा की थी कि हम गृहस्थों की अपेक्षा कथन करेंगे किंतु बीच बीच में मुनियों से संबंध रखनेवाली चर्चायें की हैं सो यह प्रतिज्ञा हानि नाम का दोष है?

उत्तर- यदि पद मुनि का हो और चर्या गृहस्थों जैसी हो या लौकिक हो तब उसे मुनि कैसे कहा जाय? अतः जो बीच बीच में कहीं ऐसे प्रसंग वश मुनियों का वर्णन आया हो तो प्रतिज्ञा के बाहर कथन न समझना। प्रसंगानुसार किंचित् कथन करना दोषदायक नहीं है।

णिग्गंथं पव्वइदो वट्टदि जदि एहिगेहि कम्मेहिं।
सो लोगिगोदि भणिदो संजम तव संपजत्तोवि।।६९।। प्र. चा.

गाथार्थ- जो कोई मुनिदीक्षा धारण कर लौकिक कार्यों में प्रवृत्ति करता है तो वह संयम तप से युक्त होता हुआ भी लौकिक कहा गया है।

अब मुनियों की अपेक्षा ब्रह्मचर्य का कथन करते हैं।

दट्ठूण इच्छिरूवं वांछाभावं णिवत्तदे तासु।
मेहुणसण्ण विवज्जिय परिणामो अहव तुरियवदं।।५९।। नियमसार

गाथार्थ- जो स्त्रियों के रूप को देखकर उनमें वांछा भाव को छोड़ता है अथवा मैथुन संज्ञा से रहित परिणाम है वह चौथा ब्रह्मचर्यव्रत कहलाता है।

सव्वंगं पेच्छंतो इच्छीणं तासु मुयदिदुब्भावं।
सो बंभचेर भावं सक्कदि खलु दुद्धरं धरिदुं ।।८०।। बारसणुवेक्खा

गाथार्थ- जो स्त्रियों के सर्वांग को देखता हुआ दुर्भावों को छोड़ता है वह निश्चय से अत्यंत कठिन ब्रह्मचर्य धर्म को धारण करने में समर्थ होता है।

मादु सुदा भगिणीव य दट्ठूणित्थितयं च पडिरूवं।
इत्थिकहादिणियत्ति तिलोयपुज्जं हवे बंभं।।८। मू.चा.

गाथार्थ- वृद्धा, बाला और युवती इन तीनों को तथा इन्हीं के प्रतिबिंबों को माता पुत्री और बहिन के समान देखकर जो स्त्री आदि विकथाओं से निर्वृत्त होता है वही त्रिलोक पूज्य ब्रह्मचर्य महाव्रत है।

प्र.३५-किसी विवाहित या अविवाहित श्रावक के स्त्रियों का नव कोटि से त्याग है तथा मुनियों के भी नव कोटि से त्याग है तब गृहस्थ और मुनियों का त्याग समान होने पर भी गृहस्थ के त्याग को अणुव्रत और मुनि के त्याग को महाव्रत क्यों कहा?

उत्तर- गृहस्थ और मुनियों के बाह्य में नव कोटियों के त्याग में समानता दिखती है फिर भी अंतरंग में अंतर है। गृहस्थ ने अनन्तानुबन्धी और अप्रत्याख्यानावरण कषायों को दबा दिया है अथवा अप्रत्याख्यानावरण आदि तीन चौकड़ी कषायों का उदय है तथा मुनियों के इनके उदय का अभाव है और संज्वलन कषाय का तीव्रोदय होने से महान अंतर है। गृहस्थों के संयम घातिकर्मों का उदय होने से उनके त्याग को अणुव्रत और मुनियों के संयमघाति कर्मों का उपशम, क्षय या क्षयोपशम हेने से मुनियों के त्याग को महाव्रत कहा है अथवा गृहस्थों के त्याग के साथ साथ संयमघाति प्रकृतियों के उदय का अविनाभावी अंतरंग में विकार और लज्जा को छिपाने के लिए वस्त्रादि का ग्रहण, भय आदि हीनता को छिपाने के लिए आवास भोजनपान आदि होने से गृहस्थ के त्याग को अणुव्रत तथा मुनियों के इन साधनों का त्याग होने से महाव्रत कहा है।

अतः ब्रह्मचर्य की निर्दोषता सदोषता कषायों की क्षय, उपशम, क्षयोपशम और उदयापेक्षा पर निर्भर है। बाह्य के त्याग पर निर्भर नहीं क्योंकि बाह्य त्याग तो अभव्यों के, मिथ्यादृष्टियों के और अन्यमतियों के भी देखा जाता है फिर भी बाह्य त्याग अंतरंग के त्याग के लिए भूमिका स्वरुप है।

प्र.३६-ब्रह्मचर्य की निर्दोषता और सदोषता कषायों और योगों के असद्भाव और सद्भाव पर निर्भर है तो आ. कुंदकुंदजी ने

पंच छ सत्त हत्थे सूरी अज्झावगो य साधू य।
परिहरि उणज्जाओ गवासणेणेव बंदंति।।१९५।। मूलाचार अ.४

इस गाथा में आर्यिकाओं को आचार्य से ५ हाथ, उपाध्ययाय से ६ हाथ और साधु से ७ हाथ दूर बैठकर गवासन से वंदना करना चाहिए ऐसा क्यों कहा है?

उत्तर- मूलाचार में तीन अधिकार हैं १. मूलगुणाधिकार २. समाचार अधिकार ३. पिंड शुद्धि अधिकार। ये तीनों ही स्वतन्त्र अधिकार हैं। इन तीनों को एक दूसरे में या दूसरे को पहले में मिलाना नहीं है किंतु विवक्षा समझ लेना परमावश्यक है, नहीं तो मूलाचार में ही पूर्वापर विरोध आने से अप्रमाण हो जायेगा। मूलाचार अप्रमाण होने से आ. कुंदकुंद भी अप्रमाण ठहरेंगे। यदि समाचार अधिकार को सर्वत्र लगाया जाय या ब्रह्मचर्य के साथ में जोड़ा जाय तो महान आपत्ति आती है जिसका

समाधान करना बड़ा ही कठिन होगा। कोई भी ब्रह्मचारी, त्यागी, मुनि और गृहस्थ जिसने अखंड ब्रह्मचर्य लिया है वह शास्त्रों का, नवीन पुस्तकों का, पत्रिकाओं का पठन पाठन न कर सकता है, न करा सकता हैं क्योंकि प्रत्येक ग्रन्थमाला वाले अपने अधिष्ठाताओं का वे चाहें महिला वर्ग हो या पुरुष वर्ग हो, लिखने वालों का, द्रव्य देने वालों का, क्षेत्र प्रचारकों का, ग्रन्थानुवाद करने वालों का फोटो अवश्य देते हैं और कोई कोई अपने गुरुओं का, आर्यिकाओं का फोटो अवश्य देते हैं तब पढ़ते पढ़ाते समय उन शास्त्रों को भी ५-६-७ हाथ दूर रखना होगा। इसी तरह जब आचार्य माँ बहिनों को दीक्षा देंगे तब पाँच हाथ दूर से व्रतों तथा अन्य संस्कारों का आरोपण करना होगा। आहार भी इसी पद्धति से लेना या देना होगा पर इतने लम्बे हाथ दाता व पात्र के होते नहीं तो क्या फेंक कर देंगे या इतना लम्बा कुछ साधन बनाना होगा या श्राविकायें आर्यिका आदि को तथा श्रावक वर्ग मुनियों को आहार देवें ऐसा नियम बनाना पड़ेगा पर यह नियम आगम विरुद्ध है क्योंकि उत्तर पुराण में आचार्य श्री गुणभद्रजी ने भगवान महावीर का वर्णन करते समय चन्दनबाला ने भगवान महावीर को नवधाभक्ति से आहार दिया उस समय चन्दनबाला बन्धनों से बद्ध, कष्ट से युक्त, बाल कटे हुए, मिट्टी के शकोरे में कांजी से मिला हुआ कोदों का भात दिया था। गाथा ३४३, ३४४, ३४८ को देखना चाहिए। तभी पूर्वोक्त कार्यों के बन्द करने पर ब्रह्मचर्य का निर्दोष पालन और समाचार अधिकार की गाथायों की आज्ञा का पालन हो सकता है यदि उक्त कार्य बन्द नहीं किए तो ब्रह्मचर्य का निर्दोष पालन नहीं हो सकता है क्योंकि अधिकतर शास्त्रों में स्त्री पुरुषों के फोटू मौजूद है और उन शास्त्रों को हाथ में लेकर पढ़ते पढ़ाते हैं। स्त्री पुरुषों के फोटो अचेतन होने से और उन फोटुओं को स्पर्श करने से व्यभिचार का दोष आता है और आगम की आज्ञा का पालन भी नहीं होता है। मूलाचार में कहा है-**पडिरूवं च प्रतिरूपं च चित्रलेप भेदादिषु स्थित प्रतिबिंबं देवमानुषीतिरश्चां च रूपम्।।** मू.गा.८ की टीका।

ब्रह्मचर्य की विराधना के कथन में अचेतन और चेतन स्त्री तथा इनके प्रतिबिंबों को ग्रहण किया है। इनके प्रति विषयवासना हुई तो ब्रह्मचर्यव्रत सदोष होता है अन्यथा निर्दोष पालन होता है। भरत बाहुबली के ऊपर पानी उछालता था पर छींटे स्वयं के ऊपर पड़ते थे। इसी प्रकार दूसरों पर आक्षेप करने के पहले स्वयं के ऊपर आक्षेप आता है या नहीं यह देखना चाहिये। अतः उक्त आपत्ति को कोई भी स्वीकार नहीं करेगा न मानेगा।

प्र.३७-वह कौन सी आपत्ति है?

उत्तर- शास्त्रों के पठन पाठन में, आहार के संबंध में, दीक्षा के संबंध में, समाधि के समय में कोई भी आचार्य ५-६-७ हाथ के नियम का पालन नहीं कर सकता है। अतः समाचार अधिकार को ब्रह्मचर्य के अधिकार में तथा आहारआदि के संबंध में न मिलाकर सिर्फ उसे समाचार के साथ ही लगाना चाहिए। यह समाचारविधि, व्यवहारिक दिनचर्या संघ के साथ में, समाज के सामने, आम जनता के सामने भी की जाती है। यदि उस समय इकदम नजदीक में आकर नमस्कार करेंगे तो आचार विचार से हीनाचरण करने वाले जैनेतर, संस्कारहीन जैन भी, मासिक धर्म को नहीं पालनेवाली महिलाएं भी पास में आकर नमस्कार करेंगीं जिससे दंडस्नान और उपवास का भी प्रायश्चित्त करना पड़ेगा ऐसा प्रायश्चित्त ग्रन्थों में विधान किया है तथा आम जनता के सामने श्रावकों को भी आचार्य गुरु आदि से दूर रहकर ही नमस्कार करना चाहिए। प्रत्यक्ष में देखते हैं कि विहार के समय में जब

श्रावक साधुओं के पैर छू लेते हैं तब जैनेतर जूते चप्पल पहने ही पैर छू लेते हैं। अतः उस समय श्रावकों को मना करना पड़ता है कि पैर मत छुओ अतः आ. श्री ने यह कथन समाचाराधिकार में दिया है तथा यह कथन आहार के प्रकरण में, ब्रह्मचर्य के प्रकरण में, दीक्षाविधि के प्रकरण में समाधि और सम्बोधन में नहीं किया है। कई प्रान्तों में श्राविकाएं अपने गुरुओं के चरण स्पर्श कर नमस्कार करती हैं और गुरुजन उन्हें आशीर्वाद देते हैं। उन्हें व्यभिचारिणी तो नहीं कहा जा सकता है। माता बहिनें अपने गुरुओं को तथा जिन प्रतिमा को पूज्य मानकर चरण स्पर्श करती हैं, अभिषेक करती हैं परमेष्ठी मानती हैं ये कार्य कुपरिणामों से नहीं करती हैं जिनके मन में वासना, भय, लज्जा आदि परिणाम हैं वे यह भक्ति नहीं कर सकती। आहार के सम्बन्ध में लिखा है- भ. आ. गा. १२०० की टीका पृ. ५४६ **अत्यासन्नेन दूरेण लज्जाव्यावृत मुख्या आवृत मुख्या उपानादुपरिन्यस्तपादेन वा जनेनोन्नतदेशावस्थितेन वा दीयमानं न गृह्णीयात्।** अतः अतिनिकटवर्ती, अतिदूरवर्ती दाता के द्वारा, जिसने लज्जा से अपना मुख ढक लिया है या मुख फेर लिया है या मुख पर घूंघट डाला है ऐसी स्त्रियों के द्वारा, जिसका पैर जूते पर रखा है, ऊंचे या नीचे स्थान पर खड़ा है ऐसे दाताओं के द्वारा आहार नहीं लेवें। अतएव मुनियों को नवधाभक्ति पूर्वक आहार लेना चाहिए। नवधाभक्ति में एक पादप्रक्षालन नामकी भक्ति है। यहाँ चन्दनबाला का दृष्टांत देखने योग्य है। आहार दाता यदि पाद प्रक्षालन नहीं करेगा तो नवधाभक्ति नहीं हुई तब आज्ञा भंग नामका दोष आया। अतः प्रसंग को कहीं का कहीं मिलाने पर ही बड़ी विडम्बना उपस्थित हो जाती है तब उसका निवारण करना अति कठिन हो जाता है। त्यागीवर्ग या मुनिवर्ग कहीं पर भी किसी माता बहिनों से नहीं कहता है कि तुम मेरे पैर छूकर नमस्कार करो और न मना करता है इस सम्बन्ध में मौन हैं। जहाँ जैसी प्रथा हो वैसा करो, पैर छूनेवालीं स्वर्ग में चली जायें और न छूनेवालीं नरक में चली जायें ऐसा कोई नियम नहीं है। उत्थान पतन तो अपनी भावना पर निर्भर है किंतु किसी दूसरे के ऊपर छींटे नहीं उछाले जायें, छींटे उछालने वाले के ऊपर ही छींटे पड़ते हैं। यहाँ पर भरत बाहुबली का उदाहरण द्रष्टव्य है। प्रश्नोत्तर ५ में देखो।

प्र.३८-तो क्या आप समाचार अधिकार को नहीं मानते हैं?

उत्तर- हम अवश्य ही मानते हैं पर आप सबके जैसा विश्वास न करेंगे, न वर्तमान में करते हैं। हमें समाचार अधिकार को समाचार के रूप में ही विश्वास करना है किंतु ब्रह्मचर्य के, आहार के, पठनपाठन के और दीक्षा के साथ में नहीं मिलाना है, यदि मिला दिया तो किसीका ब्रह्मचर्य व्रत, पतिव्रत, पत्निव्रत निर्दोष नहीं रह सकता, न व्यवहार धर्म चल सकता है तथा सभी में वेश्यापने और व्यभिचारीपने का प्रसंग आता है।

प्र.३९-आचार्य की ५ हाथ दूर से, उपाध्याय की ६ हाथ दूर से और साधु की ७ हाथ दूर से वंदना करना चाहिए क्योंकि दूर दूर रहने से ब्रह्मचर्य स्थिर रहता है जैसे अग्नि और घी यदि एकसाथ पास में रखे जायें तो घी अग्नि से पिघलकर, अग्नि में गिरकर, अग्नि को नष्ट कर स्वयं नष्ट हो जाता है उसी प्रकार स्त्री पुरुष दूर दूर रहें तो ब्रह्मचर्य का पालन निर्दोष हो सकता है क्या?

उत्तर- यह समाचार अधिकार ब्रह्मचर्य की अपेक्षा नहीं कहा गया है। आर्यिकाओं का आचार्य के साथ अध्ययन, प्रायश्चित्त, प्रतिक्रमण दीक्षा आदि के कारण अधिक समय तक संबंध रहता है, उपाध्याय

उपाध्याय से अध्ययन, शंका समाधान का संबंध रहता है, साधू के साथ केवल वन्दना का संबंध रहता है। अतः ५,६,७ हाथ से दूर होकर वंदना करने को कहा क्योंकि जैसे जैसे संबंध अधिक होता जाता है वैसे वैसे अधिक नजदीकता आती है और संबंध कम होने से नजदीकता नहीं आती यह बात व्यवहार से भी जानी जाती है।

प्र.४०-अभी तक शंकाकार कह रहा था अब समाधान कर्ता शंकाकार से पूछ रहे हैं क्या ये तीनों परमेष्ठी पुरुष नहीं हैं, यदि हैं तो ५-६-७ हाथ दूर रहने के लिए क्यों कहा, क्या आचार्य का मन पक्का होता है उससे कुछ कम उपाध्याय का मन होता है, और सबसे कम मुनि का मन पक्का होता है क्या ऐसा है अथवा गुणस्थान तीनों का अलग अलग होता है या धर्मध्यान में क्या काम वासना हो सकती है?

उत्तर- नहीं, इन तीनों का मन पक्का है, प्रमत्ताप्रमत्त संयत गुणस्थान है किंतु साधना उत्तरोत्तर अधिक अधिक है। प्रमत्त गुणस्थान का काल अन्तर्मुहूर्त है तो अप्रमत्तसंयत गुणस्थान का काल प्रमत्तसंयत गुणस्थान से आधा काल है जो सेकिंडों के बराबर है और लेश्यायें भी तीनों की शुभ होती हैं। अतः धर्मध्यान की और शुभ लेश्याओं की अवस्था में कामवासना की उत्पत्ति ही नहीं हो सकती है क्योंकि अंधकार और प्रकाश के समान एक समय में एकसाथ धर्मध्यान और कामभोग विषयवासना नहीं हो सकती यह आगम का नियम है।

प्र.४१-आजकल तो बहुत विडम्बनाएं देखने सुनने में आ रही हैं अतः दूर दूर रहना ही श्रेष्ठ है?

उत्तर- आपकी शंका अत्युत्तम है। आप तो केवल दूर दूर रहने को कहते हैं किंतु वास्तव में संघ तो अलग अलग ही होना चाहिए पर विडम्बनाओं को देखकर आगम की परिभाषाओं को नहीं बदल देना चाहिए। अतः समाचार अधिकार का नियम, आलोचना, अध्ययन और स्तुति के भेद से क्रम में भेद हैं। अतः जहाँ जैसी जिस संघ की, क्षेत्र की परम्परा हो उसे तथा अपने परिणामों को सम्हालना चाहिए और लोक निंदा से भयभीत होना चाहिए। आगमानुसार अपना आचरण करें इसीमें कल्याण है, दूसरों की निंदा करने में अपना अकल्याण है, स्वयं की आत्मा का पतन होता है अतः विसंवाद न कर धर्म की और अपनी आत्मा की प्रभावना करना चाहिये।

प्र.४२-तो क्या दूर दूर रहने से ही ब्रह्मचर्यव्रत का पालन निर्दोष हो सकता है?

उत्तर- नहीं, ऐसा कोई नियम नहीं है। देखो पवन अंजना २२ वर्ष तक अलग अलग रहे पर जब मन में कामवासना पैदा हुई तो मिलन को प्राप्त हुए इसी तरह रौद्रों का जन्म होता है। जब अनेक सदस्यगण एक साथ रहते हैं तो व्रत खंडन के प्रसंग नहीं बन पाते हैं किंतु अकेले रहने पर ही ये समस्यायें पैदा होती हैं।

प्र.४३-यदि मुनि, आर्यिका आदि सभी अलग अलग हों तो समाचार विधि तथा प्रायश्चित्त आदि धर्म क्रियाओं का पालन कैसे होगा?

उत्तर- जो आचार्य हर प्रकार से समर्थ हैं उनके साथ में मुनि, आर्यिका, श्रावक, श्राविकाओं का रहना

निषिद्ध नहीं है इन्हीं के साथ में इन्हीं की आज्ञा से षडावश्यकों का निर्दोष पालन होता है किंतु जो अलग अलग हो जाते हैं उनका गुरु के बिना प्रायश्चित्त आदि विधि कैसे होगी? अतः आचार्य भगवन्त के साथ में आर्यिकाओं का रहना निर्दोष है। तीर्थंकर भगवन्तों के साथ चतुर्विध संघ विहार करता था तभी तो बारह सभायें हमेशा भरी रहती थी यदि अलग अलग रहें तो धर्मोपदेश का लाभ कैसे होगा? जिन साधुओं का आचार विचार सदोष है उनके साथ आर्यिकाओं का, श्राविकाओं का रहना सदोष ही है और पतन का, बदनामी का कारण है।

ब्रह्मचर्य के भेदों का वर्णन

आत्मलीनता का नाम ब्रह्मचर्य है। आचार्यों ने इसके श्रावक, साधक और साधु की अपेक्षाओं को अलग अलग रखकर इनमें बाधक कारणों से १८००० दोष भेद प्रभेद रूप में उत्पन्न होते हैं और दोषों के त्याग से गुण उत्पन्न होते हैं। इन दोषों से आत्मसात् होने पर बाधा उत्पन्न होती है तथा गुणों से आत्म साधना में सहायता प्राप्त होती है। साधुओं को प्रधान मानकर ब्रह्मचर्य के अलग अलग भंग निम्न प्रकार है-

१. श्रावकों की अपेक्षा १८००० भेदों का स्वरुप

* **३ प्रकार की क्रियाएँ :-** (१) कृत (२) कारित (३) अनुमोदना के द्वारा अशुभ प्रवृत्ति करना।
* **३ प्रकार के योग :-** (१) मनोयोग (२) वचन योग (३) काययोग के द्वारा अशुभ प्रवृत्ति करना।
* **४ प्रकार की स्त्रियाँ :-** (१) देवी (२) मानुषी (३) तिर्यंचनी (४) अचेतनस्त्रियां (काष्ठ पाषाण चित्र)
* **५ प्रकार की इन्द्रियाँ :-** (१) स्पर्शन (२) रसना (३) घ्राण (४) चक्षु (५) कर्णेंद्रिय विषयाधीनता
* **१० प्रकार शरीर के संस्कार :-** (१) शरीर में उबटन आदि लगाना (२) शृंगार करना (३) हँसी मजाक करना (४) संसर्ग की चाह (५) विषय वासना और काम सेवन का संकल्प (६) अपने एवं स्त्रियों के शरीर को ही ताकते रहना (७) शरीर को बालों एवं वस्त्रों आदि से सजाना (८) द्रव्य प्रलोभन आदि देना (९) भोगों का स्मरण करना (१०) भोगों के लिए चिंता करना।
* **१० प्रकार काम विकार की चेष्टाएँ :-** (१) चिंता (२) स्त्रियों के अंगों को देखने की इच्छा (३) आहें भरना (४) शरीर में पीड़ा होना (५) शरीर में जलन होना (६) भोजन में अरुचि होना (७) मूर्छित होना (८) उन्मत्त होना (९) जीवन में सन्देह होना (१०) वीर्यपात होना। यहाँ पर त्यागी, व्रतियों को सम्बोधन करने के लिये स्त्रियों को त्यागने के लिये गिनाया है इसी तरह माँ, बहिनों को ब्रह्मचारिणी, आर्यिकाओं को अपने शील व्रत की रक्षा करने के लिये पुरुषों को त्याज्य समझना चाहिए।

इन छहों का परस्पर में गुणा करने से अथवा इन छहों को अलग अलग एक एक के साथ लिखने से श्रावक सम्बन्धी १८००० भंग होते हैं। इनमें प्रवृत्ति करना दोष है और त्याग करना गुण है।
जैसे :- ३ X ३ X ४ X ५ X १० X १० = १८०००

डेरी का दूध, घी, दही, मक्खन आदि खानेपीने वाले मोक्षमार्गी साधु और श्रावक नहीं हैं।

२. साधकों की अपेक्षा १८००० भंगों का स्वरुप

दो प्रकार की स्त्रियाँ (१) चेतन (२) अचेतन

चेतन स्त्रियों के संसर्ग से १७२८० दोष उत्पन्न होते हैं।

अचेतन स्त्रियों के संसर्ग से ७२० दोष उत्पन्न होते हैं।

चेतन स्त्री की अपेक्षा

२ प्रकार के भाव (१) द्रव्य भाव (२) भाव भाव अथवा अशुभ भाव और शुभ भाव

३ प्रकार की चेतन स्त्रियाँ (१) देवी (२) मानुषी (३) तिर्यंचनी

३ प्रकार के क्रियाकरण (१) कृत (२) कारित (३) अनुमोदना

३ प्रकार के योग (१) मनोयोग (२) वचन योग (३) काययोग

४ प्रकार की संज्ञाएं (१) आहार (२) भय (३) मैथुन (४) परिग्रह

५ प्रकार की इन्द्रियाँ (१) स्पर्शन (२) रसना (३) घ्राण (४) चक्षु (५) कर्ण

१६ प्रकार की कषायें अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ। अप्रत्याख्यानावरणीय क्रोध, मान, माया, लोभ। प्रत्याख्यानावरणीय क्रोध, मान, माया, लोभ। संज्वलन क्रोध, मान, माय, लोभ।

२ X ३ X ३ X ३ X ४ X ५ X १६ = १७२८० भंग हुए

अचेतन स्त्री की अपेक्षा

२ प्रकार के भाव (१) द्रव्य से (२) भावों से

३ प्रकार की अचेतन स्त्रियाँ (१) काष्ठ (२) पाषाण (३) चित्ररंगकृत

४ प्रकार के कषाय (१) क्रोध (२) मान (३) माया (४) लोभ

५ प्रकार की इन्द्रियों से (१) स्पर्शन (२) रसना (३) घ्राण (४) चक्षु (५) कर्ण

६ प्रकार के (१) कृत (२) कारित (३) अनुमोदना से (४) मन (५) वचन (६) काय से

इस प्रकार अचेतन स्त्री के-

२ X ३ X ४ X ५ X ६ = ७२० भंग हुए

चेतन स्त्री के + अचेतन स्त्री के कुल १७२८० + ७२० = १८०००

३. अयोगीमुनियों की अपेक्षा १४वें गुणस्थान में ब्रह्मचर्य के १८००० भेद पूर्ण होते हैं।

३ योगः- (१) मनोयोग (२) वचन योग (३) काय योग इनका त्याग करना।

३ शुभकरणः- (१) शुभमन करण (२) शुभवचन करण (३) शुभकाय करण इनका त्याग करना।

४ संज्ञाः- (१) आहार (२) भय (३) मैथुन (४) परिग्रह इनका त्याग करना।

५ इन्द्रियविषय (१) स्पर्श (२) रस (३) गंध (४) वर्ण (५) शब्द इन रूप से परिणत नहीं होना।

६ प्रकार के (१) कृत (२) कारित (३) अनुमोदना (४) मन (५) वचन (६) काय को वश में करना।

ब्रह्मचर्य एवं ८४ लाख उत्तरगुण मंत्र विधान

१० कायः- (१) पृथ्वीकाय (२) जलकाय (३) अग्निकाय (४) वायुकाय (५) प्रत्येक वनस्पतिकाय (६) साधारण वनस्पतिकाय (७) दोइन्द्रियजीव (८) त्रींद्रियजीव (९) चौइंद्रियजीव (१०) पंचेंद्रिय जीवों की रक्षा करना।

१० धर्मः- (१) उत्तम क्षमाधर्म (२) मार्दवधर्म (३) आर्जवधर्म (४) शौचधर्म (५) सत्यधर्म (६) संयम धर्म (७) तपधर्म (८) त्यागधर्म (९) आकिंचन्यधर्म (१०) ब्रह्मचर्य धर्म।

इन सभी का परस्पर में गुणा करने से या इनके प्रत्येक भंगों को अलग अलग रखकर लिखने से १८००० शील के भंग होते हैं।

अतः ३ X ३ X ४ X ५ X ६ X १० X १० = १८००० भंग

संकेत		संकेत का पूरा नाम
म. यो. या म. त्या., म.	-	मन योग का त्याग
व. यो. या व. त्या., व.	-	वचन योग का त्याग
का. यो. या का. त्या., का.	-	काययोग का त्याग
म. करण या म. क., म.	-	मन करण का त्याग
व. करण या व. क., व.	-	वचन करण का त्याग
का. करण या का., का	-	काय करण का त्याग
आ. संज्ञा या आ. सं., आ.	-	आहार की अभिलाषा का त्याग
भ. संज्ञा या भ. सं., भ.	-	भय (भीरू) संज्ञा का त्याग
मै. संज्ञा या मै. सं, मै.,	-	मैथुन संज्ञा का त्याग
प. संज्ञा या प. सं., प.	-	परिग्रह संज्ञा का त्याग
स्प. इ. जी. या स्प.	-	स्पर्शन इन्द्रिय का जीतना
र. इ. जी. या र.	-	रसना इन्द्रिय का जीतना
घ्रा. इ. जी. या घ्रा.	-	घ्राण इन्द्रिय का जीतना
च. इ. जी. या च.	-	चक्षु इन्द्रिय का जीतना
क. इ. जी. या क	-	कर्ण इन्द्रिय का जीतना
पृ. जी. र. या पृ.	-	पृथ्वीकाय जीव की रक्षा करने का भाव।
ज. जी. र. या ज.	-	जलकाय जीव की रक्षा करने का भाव।
अ. जी. र. या अ.	-	अग्निकाय जीव की रक्षा करने का भाव।
वा. जी. या वा.	-	वायुकाय जीव की रक्षा करने का भाव।
प्र. जी. या प्र.	-	प्रत्येक वनस्पतिकाय जीव की रक्षा करने का भाव।
सा. जी. या सा.	-	साधारण वनस्पति काय जीव की रक्षा करने का भाव।
द्वी. जी. या द्वी.	-	द्वीन्द्रिय जीव की रक्षा करने का भाव।
त्री. जी. या त्री.	-	त्रीन्द्रिय जीव की रक्षा करने का भाव।
च. जी. या च.	-	चौइन्द्रिय जीव की रक्षा करने का भाव।
पं. जी. या पं.	-	पंचेन्द्रिय जीव की रक्षा करने का भाव।

ब्रह्मचर्य एवं ८४ लाख उत्तरगुण मंत्र विधान

क्ष. ध. या क्ष.	-	क्षमा धर्म
मा. ध. या मा.	-	मार्दव धर्म
आ. ध. या आ.	-	आर्जव धर्म
शौ. ध. या शौ.	-	शौच धर्म
स. ध. या स.	-	सत्य धर्म
सं. ध. या सं.	-	संयम धर्म
तप धर्म	-	तप धर्म
त्याग धर्म	-	त्याग धर्म
आ. धर्म	-	आकिंचन्य धर्म
ब्र. धर्म	-	ब्रह्मचर्य धर्म

१८० भंग निकालने का गूढ़यंत्र

मनोगुप्ति	वचनगुप्ति	कायगुप्ति
१	२	३
कृत	कारित	अनुमोदना
०	३	६

मनुष्य स्त्री	देव स्त्री	तिर्यंच स्त्री	चित्रणी स्त्री
०	९	१८	२७

स्पर्शनेन्द्रिय जय	रसनेन्द्रिय जय	घ्राणेन्द्रिय जय	चक्षुइंद्रिय जय	कर्णेंद्रिय जय
०	३६	७२	१०८	१४४

इस गूढ़ यंत्र में ब्रह्मचर्य के १८० भंग बताये गये हैं। वर्तमान में छठवें गुणस्थानवर्ती प्रमत्तसंयत मुनि जो चारित्र शुद्धि व्रत करते हैं उनको १८० उपवास करने होते हैं अर्थात् ब्रह्मचर्य के १८००० भंग होने पर भी प्रमत्तसंयत गुणस्थान में सिर्फ १८० गुण उत्पन्न होते हैं। अतः वर्तमान में मुनियों को अपने ब्रह्मचर्य व्रत को निर्दोष पालने के लिए इन भंगों को समझना और प्रयोग में लाना चाहिये। जो शक्यानुष्ठान है, अशक्यानुष्ठान नहीं इसमें काल और संहनन का सहारा लेकर आत्मवंचना नहीं करें ऐसी मेरी अर्न्तध्वनि है।

म. गु.		कृत		मनुष्य स्त्री		स्पर्श. ज.		भंग संख्या
१	+	०	+	०	+	०	=	१
व. गु.		कृत		म. स्त्री		स्प. ज.		
२	+	०	+	०	+	०	=	२
का. गु.		कृत		म. स्त्री		स्प. ज.		
३	+	०	+	०	+	०	=	३

ब्रह्मचर्य एवं ८४ लाख उत्तरगुण मंत्र विधान

म. गु.		कारित		म. स्त्री		स्प. ज.		
१	+	३	+	०	+	०	=	४
व. गु.		कारित		म. स्त्री		स्प. ज.		
२	+	३	+	०	+	०	=	५
का. गु.		कारित		म. स्त्री		स्प. ज.		
३	+	३	+	०	+	०	=	६
म. गु.		अनुमोदना		म. स्त्री		स्पर्श. ज.		
१	+	६	+	०	+	०	=	७
व. गु.		अनुमोदना		म. स्त्री		स्प. ज.		
२	+	६	+	०	+	०	=	८
का. गु.		अनुमोदना		म. स्त्री		स्प. ज.		
३	+	६	+	०	+	०	=	९
म. गु.		कृत		देव स्त्री		स्पर्श. ज.		
१	+	०	+	९	+	०	=	१०
व. गु.		कृत		देव स्त्री		स्प. ज.		
२	+	०	+	९	+	०	=	११
का. गु.		कृत		देव स्त्री		स्प. ज.		
३	+	०	+	९	+	०	=	१२
म. गु.		कारित		देव स्त्री		स्प. ज.		
१	+	३	+	९	+	०	=	१३
व. गु.		कारित		देव स्त्री		स्प. ज.		
२	+	३	+	९	+	०	=	१४
का. गु.		कारित		देव स्त्री		स्प. ज.		
३	+	३	+	९	+	०	=	१५
म. गु.		अनुमोदना		देव स्त्री		स्प. ज.		
१	+	६	+	९	+	०	=	१६
व. गु.		अनुमोदना		देव स्त्री		स्प. ज.		
२	+	६	+	९	+	०	=	१७
का. गु.		अनुमोदना		देव स्त्री		स्प. ज.		
३	+	६	+	९	+	०	=	१८
म. गु.		कृत		तिर्यंच स्त्री		स्प. ज.		
१	+	०	+	१८	+	०	=	१९
व. गु.		कृत		तिर्यंच स्त्री		स्प. ज.		
२	+	०	+	१८	+	०	=	२०
का. गु.		कृत		तिर्यंच स्त्री		स्प. ज.		
३	+	०	+	१८	+	०	=	२१

ब्रह्मचर्य एवं ८४ लाख उत्तरगुण मंत्र विधान

म. गु.		कारित		तिर्यंच स्त्री		स्प. ज.		
१	+	३	+	१८	+	०	=	२२
व. गु.		कारित		तिर्यंच स्त्री		स्प. ज.		
२	+	३	+	१८	+	०	=	२३
का. गु.		कारित		तिर्यंच स्त्री		स्प. ज.		
३	+	३	+	१८	+	०	=	२४
म. गु.		अनुमोदना		तिर्यंच स्त्री		स्प. ज.		
१	+	६	+	१८	+	०	=	२५
व. गु.		अनुमोदना		तिर्यंच स्त्री		स्प. ज.		
२	+	६	+	१८	+	०	=	२६
का. गु.		अनुमोदना		तिर्यंच स्त्री		स्प. ज.		
३	+	६	+	१८	+	०	=	२७
म. गु.		कृत		चित्रणी स्त्री		स्प. ज.		
१	+	०	+	२७	+	०	=	२८
व. गु.		कृत		चित्रणी स्त्री		स्प. ज.		
२	+	०	+	२७	+	०	=	२९
का. गु.		कृत		चित्रणी स्त्री		स्प. ज.		
३	+	०	+	२७	+	०	=	३०
म. गु.		कारित		चित्रणी स्त्री		स्प. ज.		
१	+	३	+	२७	+	०	=	३१
व. गु.		कारित		चित्रणी स्त्री		स्प. ज.		
२	+	३	+	२७	+	०	=	३२
का. गु.		कारित		चित्रणी स्त्री		स्प. ज.		
३	+	३	+	२७	+	०	=	३३
म. गु.		अनुमोदना		चित्रणी स्त्री		स्प. ज.		
१	+	६	+	२७	+	०	=	३४
व. गु.		अनुमोदना		चित्रणी स्त्री		स्प. ज.		
२	+	६	+	२७	+	०	=	३५
का. गु.		अनुमोदना		चित्रणी स्त्री		स्प. ज.		
३	+	६	+	२७	+	०	=	३६
म. गु.		कृत		नर स्त्री		रसना ज.		
१	+	०	+	०	+	३६	=	३७
व. गु.		कृत		नर स्त्री		रसना ज.		
२	+	०	+	०	+	३६	=	३८
का. गु.		कृत		नर स्त्री		रसना ज.		
३	+	०	+	०	+	३६	=	३९

ब्रह्मचर्य एवं ८४ लाख उत्तरगुण मंत्र विधान

म. गु.		कारित		नर स्त्री		रसना. ज.		
१	+	३	+	०	+	३६	=	४०
व. गु.		कारित		नर स्त्री		रसना ज.		
२	+	३	+	०	+	३६	=	४१
का. गु.		कारित		नर स्त्री		रसना. ज.		
३	+	३	+	०	+	३६	=	४२
म. गु.		अनुमोदना		नर स्त्री		रसना. ज.		
१	+	६	+	०	+	३६	=	४३
व. गु.		अनुमोदना		नर स्त्री		रसना. ज.		
२	+	६	+	०	+	३६	=	४४
का. गु.		अनुमोदना		नर स्त्री		रसना. ज.		
३	+	६	+	०	+	३६	=	४५
म. गु.		कृत		देव स्त्री		रसना ज.		
१	+	०	+	९	+	३६	=	४६
व. गु.		कृत		देव स्त्री		रसना ज.		
२	+	०	+	९	+	३६	=	४७
का. गु.		कृत		देव स्त्री		रसना ज.		
३	+	०	+	९	+	३६	=	४८
म. गु.		कारित		देव स्त्री		रसना. ज.		
१	+	३	+	९	+	३६	=	४९
व. गु.		कारित		देव स्त्री		रसना ज.		
२	+	३	+	९	+	३६	=	५०
का. गु.		कारित		देव स्त्री		रसना. ज.		
३	+	३	+	९	+	३६	=	५१
म. गु.		अनुमोदना		देव स्त्री		रसना. ज.		
१	+	६	+	९	+	३६	=	५२
व. गु.		अनुमोदना		देव स्त्री		रसना. ज.		
२	+	६	+	९	+	३६	=	५३
का. गु.		अनुमोदना		देव स्त्री		रसना. ज.		
३	+	६	+	९	+	३६	=	५४
म. गु.		कृत		तिर्यंच स्त्री		रसना ज.		
१	+	०	+	१८	+	३६	=	५५
व. गु.		कृत		तिर्यंच स्त्री		रसना ज.		
२	+	०	+	१८	+	३६	=	५६
का. गु.		कृत		तिर्यंच स्त्री		रसना ज.		
३	+	०	+	१८	+	३६	=	५७

ब्रह्मचर्य एवं ८४ लाख उत्तरगुण मंत्र विधान

म. गु.		कारित		तिर्यंच स्त्री		रसना. ज.			
१	+	३	+	१८	+	३६	=	५८	
व. गु.		कारित		तिर्यंच स्त्री		रसना ज.			
२	+	३	+	१८	+	३६	=	५९	
का. गु.		कारित		तिर्यंच स्त्री		रसना. ज.			
३	+	३	+	१८	+	३६	=	६०	
म. गु.		अनुमोदना		तिर्यंच स्त्री		रसना. ज.			
१	+	६	+	१८	+	३६	=	६१	
व. गु.		अनुमोदना		तिर्यंच स्त्री		रसना. ज.			
२	+	६	+	१८	+	३६	=	६२	
का. गु.		अनुमोदना		तिर्यंच स्त्री		रसना. ज.			
३	+	६	+	१८	+	३६	=	६३	
म. गु.		कृत		चित्रणी स्त्री		रसना ज.			
१	+	०	+	२७	+	३६	=	६४	
व. गु.		कृत		चित्रणी स्त्री		रसना ज.			
२	+	०	+	२७	+	३६	=	६५	
का. गु.		कृत		चित्रणी स्त्री		रसना ज.			
३	+	०	+	२७	+	३६	=	६६	
म. गु.		कारित		चित्रणी स्त्री		रसना. ज.			
१	+	३	+	२७	+	३६	=	६७	
व. गु.		कारित		चित्रणी स्त्री		रसना ज.			
२	+	३	+	२७	+	३६	=	६८	
का. गु.		कारित		चित्रणी स्त्री		रसना. ज.			
३	+	३	+	२७	+	३६	=	६९	
म. गु.		अनुमोदना		चित्रणी स्त्री		रसना. ज.			
१	+	६	+	२७	+	३६	=	७०	
व. गु.		अनुमोदना		चित्रणी स्त्री		रसना. ज.			
२	+	६	+	२७	+	३६	=	७१	
का. गु.		अनुमोदना		चित्रणी स्त्री		रसना. ज.			
३	+	६	+	२७	+	३६	=	७२	
म. गु.		कृत		नर स्त्री		घ्राणेन्द्रिय जय			
१	+	०	+	०	+	७२	=	७३	
व. गु.		कृत		नर स्त्री		घ्राणेन्द्रिय ज.			
२	+	०	+	०	+	७२	=	७४	
का. गु.		कृत		नर स्त्री		घ्राणेन्द्रिय जय			
३	+	०	+	०	+	७२	=	७५	

ब्रह्मचर्य एवं ८४ लाख उत्तरगुण मंत्र विधान

म. गु.		कारित		नर स्त्री		घ्राणेन्द्रिय जय		
१	+	३	+	०	+	७२	=	७६
व. गु.		कारित		नर स्त्री		घ्राणेन्द्रिय जय		
२	+	३	+	०	+	७२	=	७७
का. गु.		कारित		नर स्त्री		घ्राणेन्द्रिय जय		
३	+	३	+	०	+	७२	=	७८
म. गु.		अनुमोदना		नर स्त्री		घ्राणेन्द्रिय जय		
१	+	६	+	०	+	७२	=	७९
व. गु.		अनुमोदना		नर स्त्री		घ्राणेन्द्रिय जय		
२	+	६	+	०	+	७२	=	८०
का. गु.		अनुमोदना		नर स्त्री		घ्राणेन्द्रिय जय		
३	+	६	+	०	+	७२	=	८१
म. गु.		कृत		देव स्त्री		घ्राणेन्द्रिय जय		
१	+	०	+	९	+	७२	=	८२
व. गु.		कृत		देव स्त्री		घ्राणेन्द्रिय ज.		
२	+	०	+	९	+	७२	=	८३
का. गु.		कृत		देव स्त्री		घ्राणेन्द्रिय जय		
३	+	०	+	९	+	७२	=	८४
म. गु.		कारित		देव स्त्री		घ्राणेन्द्रिय जय		
१	+	३	+	९	+	७२	=	८५
व. गु.		कारित		देव स्त्री		घ्राणेन्द्रिय जय		
२	+	३	+	९	+	७२	=	८६
का. गु.		कारित		देव स्त्री		घ्राणेन्द्रिय जय		
३	+	३	+	९	+	७२	=	८७
म. गु.		अनुमोदना		देव स्त्री		घ्राणेन्द्रिय जय		
१	+	६	+	९	+	७२	=	८८
व. गु.		अनुमोदना		देव स्त्री		घ्राणेन्द्रिय जय		
२	+	६	+	९	+	७२	=	८९
का. गु.		अनुमोदना		देव स्त्री		घ्राणेन्द्रिय जय		
३	+	६	+	९	+	७२	=	९०
म. गु.		कृत		तिर्यंच स्त्री		घ्राणेन्द्रिय जय		
१	+	०	+	१८	+	७२	=	९१
व. गु.		कृत		तिर्यंच स्त्री		घ्राणेन्द्रिय ज.		
२	+	०	+	१८	+	७२	=	९२
का. गु.		कृत		तिर्यंच स्त्री		घ्राणेन्द्रिय जय		
३	+	०	+	१८	+	७२	=	९३

ब्रह्मचर्य एवं ८४ लाख उत्तरगुण मंत्र विधान

म. गु.		कारित		तिर्यंच स्त्री		घ्राणेन्द्रिय जय		
१	+	३	+	१८	+	७२	=	९४
व. गु.		कारित		तिर्यंच स्त्री		घ्राणेन्द्रिय जय		
२	+	३	+	१८	+	७२	=	९५
का. गु.		कारित		तिर्यंच स्त्री		घ्राणेन्द्रिय जय		
३	+	३	+	१८	+	७२	=	९६
म. गु.		अनुमोदना		तिर्यंच स्त्री		घ्राणेन्द्रिय जय		
१	+	६	+	१८	+	७२	=	९७
व. गु.		अनुमोदना		तिर्यंच स्त्री		घ्राणेन्द्रिय जय		
२	+	६	+	१८	+	७२	=	९८
का. गु.		अनुमोदना		तिर्यंच स्त्री		घ्राणेन्द्रिय जय		
३	+	६	+	१८	+	७२	=	९९
म. गु.		कृत		चित्रणी स्त्री		घ्राणेन्द्रिय जय		
१	+	०	+	२७	+	७२	=	१००
व. गु.		कृत		चित्रणी स्त्री		घ्राणेन्द्रिय जय		
२	+	०	+	२७	+	७२	=	१०१
का. गु.		कृत		चित्रणी स्त्री		घ्राणेन्द्रिय जय		
३	+	०	+	२७	+	७२	=	१०२
म. गु.		कारित		चित्रणी स्त्री		घ्राणेन्द्रिय जय		
१	+	३	+	२७	+	७२	=	१०३
व. गु.		कारित		चित्रणी स्त्री		घ्राणेन्द्रिय जय		
२	+	३	+	२७	+	७२	=	१०४
का. गु.		कारित		चित्रणी स्त्री		घ्राणेन्द्रिय जय		
३	+	३	+	२७	+	७२	=	१०५
म. गु.		अनुमोदना		चित्रणी स्त्री		घ्राणेन्द्रिय जय		
१	+	६	+	२७	+	७२	=	१०६
व. गु.		अनुमोदना		चित्रणी स्त्री		घ्राणेन्द्रिय जय		
२	+	६	+	२७	+	७२	=	१०७
का. गु.		अनुमोदना		चित्रणी स्त्री		घ्राणेन्द्रिय जय		
३	+	६	+	२७	+	७२	=	१०८
म. गु.		कृत		नर स्त्री		चक्षुइंद्रियजय		
१	+	०	+	०	+	१०८	=	१०९
व. गु.		कृत		नर स्त्री		चक्षुइंद्रियजय		
२	+	०	+	०	+	१०८	=	११०
का. गु.		कृत		नर स्त्री		चक्षुइंद्रियजय		
३	+	०	+	०	+	१०८	=	१११

ब्रह्मचर्य एवं ८४ लाख उत्तरगुण मंत्र विधान

म. गु.		कारित		नर स्त्री		चक्षुइंद्रियजय		
१	+	३	+	०	+	१०८	=	११२
व. गु.		कारित		नर स्त्री		चक्षुइंद्रियजय		
२	+	३	+	०	+	१०८	=	११३
का. गु.		कारित		नर स्त्री		चक्षुइंद्रियजय		
३	+	३	+	०	+	१०८	=	११४
म. गु.		अनुमोदना		नर स्त्री		चक्षुइंद्रियजय		
१	+	६	+	०	+	१०८	=	११५
व. गु.		अनुमोदना		नर स्त्री		चक्षुइंद्रियजय		
२	+	६	+	०	+	१०८	=	११६
का. गु.		अनुमोदना		नर स्त्री		चक्षुइंद्रियजय		
३	+	६	+	०	+	१०८	=	११७
म. गु.		कृत		देव स्त्री		चक्षुइंद्रियजय		
१	+	०	+	९	+	१०८	=	११८
व. गु.		कृत		देव स्त्री		चक्षुइंद्रियजय		
२	+	०	+	९	+	१०८	=	११९
का. गु.		कृत		देव स्त्री		चक्षुइंद्रियजय		
३	+	०	+	९	+	१०८	=	१२०
म. गु.		कारित		देव स्त्री		चक्षुइंद्रियजय		
१	+	३	+	९	+	१०८	=	१२१
व. गु.		कारित		देव स्त्री		चक्षुइंद्रियजय		
२	+	३	+	९	+	१०८	=	१२२
का. गु.		कारित		देव स्त्री		चक्षुइंद्रियजय		
३	+	३	+	९	+	१०८	=	१२३
म. गु.		अनुमोदना		देव स्त्री		चक्षुइंद्रियजय		
१	+	६	+	९	+	१०८	=	१२४
व. गु.		अनुमोदना		देव स्त्री		चक्षुइंद्रियजय		
२	+	६	+	९	+	१०८	=	१२५
का. गु.		अनुमोदना		देव स्त्री		चक्षुइंद्रियजय		
३	+	६	+	९	+	१०८	=	१२६
म. गु.		कृत		तिर्यंच स्त्री		चक्षुइंद्रियजय		
१	+	०	+	१८	+	१०८	=	१२७
व. गु.		कृत		तिर्यंच स्त्री		चक्षुइंद्रियजय		
२	+	०	+	१८	+	१०८	=	१२८
का. गु.		कृत		तिर्यंच स्त्री		चक्षुइंद्रियजय		
३	+	०	+	१८	+	१०८	=	१२९

ब्रह्मचर्य एवं ८४ लाख उत्तरगुण मंत्र विधान

म. गु.		कारित		तिर्यंच स्त्री		चक्षुइंद्रियजय			
१	+	३	+	१८	+	१०८	=	१३०	
व. गु.		कारित		तिर्यंच स्त्री		चक्षुइंद्रियजय			
२	+	३	+	१८	+	१०८	=	१३१	
का. गु.		कारित		तिर्यंच स्त्री		चक्षुइंद्रियजय			
३	+	३	+	१८	+	१०८	=	१३२	
म. गु.		अनुमोदना		तिर्यंच स्त्री		चक्षुइंद्रियजय			
१	+	६	+	१८	+	१०८	=	१३३	
व. गु.		अनुमोदना		तिर्यंच स्त्री		चक्षुइंद्रियजय			
२	+	६	+	१८	+	१०८	=	१३४	
का. गु.		अनुमोदना		तिर्यंच स्त्री		चक्षुइंद्रियजय			
३	+	६	+	१८	+	१०८	=	१३५	
म. गु.		कृत		चित्रणी स्त्री		चक्षुइंद्रियजय			
१	+	०	+	२७	+	१०८	=	१३६	
व. गु.		कृत		चित्रणी स्त्री		चक्षुइंद्रियजय			
२	+	०	+	२७	+	१०८	=	१३७	
का. गु.		कृत		चित्रणी स्त्री		चक्षुइंद्रियजय			
३	+	०	+	२७	+	१०८	=	१३८	
म. गु.		कारित		चित्रणी स्त्री		चक्षुइंद्रियजय			
१	+	३	+	२७	+	१०८	=	१३९	
व. गु.		कारित		चित्रणी स्त्री		चक्षुइंद्रियजय			
२	+	३	+	२७	+	१०८	=	१४०	
का. गु.		कारित		चित्रणी स्त्री		चक्षुइंद्रियजय			
३	+	३	+	२७	+	१०८	=	१४१	
म. गु.		अनुमोदना		चित्रणी स्त्री		चक्षुइंद्रियजय			
१	+	६	+	२७	+	१०८	=	१४२	
व. गु.		अनुमोदना		चित्रणी स्त्री		चक्षुइंद्रियजय			
२	+	६	+	२७	+	१०८	=	१४३	
का. गु.		अनुमोदना		चित्रणी स्त्री		चक्षुइंद्रियजय			
३	+	६	+	२७	+	१०८	=	१४४	
म. गु.		कृत		नर स्त्री		कर्णेंद्रियजय			
१	+	०	+	०	+	१४४	=	१४५	
व. गु.		कृत		नर स्त्री		कर्णेंद्रियजय			
२	+	०	+	०	+	१४४	=	१४६	
का. गु.		कृत		नर स्त्री		कर्णेंद्रियजय			
३	+	०	+	०	+	१४४	=	१४७	

ब्रह्मचर्य एवं ८४ लाख उत्तरगुण मंत्र विधान

म. गु.		कारित		नर स्त्री		कर्णेंद्रियजय		
१	+	३	+	०	+	१४४	=	१४८
व. गु.		कारित		नर स्त्री		कर्णेंद्रियजय		
२	+	३	+	०	+	१४४	=	१४९
का. गु.		कारित		नर स्त्री		कर्णेंद्रियजय		
३	+	३	+	०	+	१४४	=	१५०
म. गु.		अनुमोदना		नर स्त्री		कर्णेंद्रियजय		
१	+	६	+	०	+	१४४	=	१५१
व. गु.		अनुमोदना		नर स्त्री		कर्णेंद्रियजय		
२	+	६	+	०	+	१४४	=	१५२
का. गु.		अनुमोदना		नर स्त्री		कर्णेंद्रियजय		
३	+	६	+	०	+	१४४	=	१५३
म. गु.		कृत		देव स्त्री		कर्णेंद्रियजय		
१	+	०	+	९	+	१४४	=	१५४
व. गु.		कृत		देव स्त्री,		कर्णेंद्रियजय		
२	+	०	+	९	+	१४४	=	१५५
का. गु.		कृत		देव स्त्री		कर्णेंद्रियजय		
३	+	०	+	९	+	१४४	=	१५६
म. गु.		कारित		देव स्त्री		कर्णेंद्रियजय		
१	+	३	+	९	+	१४४	=	१५७
व. गु.		कारित		देव स्त्री		कर्णेंद्रियजय		
२	+	३	+	९	+	१४४	=	१५८
का. गु.		कारित		देव स्त्री		कर्णेंद्रियजय		
३	+	३	+	९	+	१४४	=	१५९
म. गु.		अनुमोदना		देव स्त्री		कर्णेंद्रियजय		
१	+	६	+	९	+	१४४	=	१६०
व. गु.		अनुमोदना		देव स्त्री		कर्णेंद्रियजय		
२	+	६	+	९	+	१४४	=	१६१
का. गु.		अनुमोदना		देव स्त्री		कर्णेंद्रियजय		
३	+	६	+	९	+	१४४	=	१६२
म. गु.		कृत		तिर्यंच स्त्री		कर्णेंद्रियजय		
१	+	०	+	१८	+	१४४	=	१६३
व. गु.		कृत		तिर्यंच स्त्री		कर्णेंद्रियजय		
२	+	०	+	१८	+	१४४	=	१६४
का. गु.		कृत		तिर्यंच स्त्री		कर्णेंद्रियजय		
३	+	०	+	१८	+	१४४	=	१६५

ब्रह्मचर्य एवं ८४ लाख उत्तरगुण मंत्र विधान

म. गु.		कारित		तिर्यंच स्त्री		कर्णेंद्रियजय		
१	+	३	+	१८	+	१४४	=	१६६
व. गु.		कारित		तिर्यंच स्त्री		कर्णेंद्रियजय		
२	+	३	+	१८	+	१४४	=	१६७
का. गु.		कारित		तिर्यंच स्त्री		कर्णेंद्रियजय		
३	+	३	+	१८	+	१४४	=	१६८
म. गु.		अनुमोदना		तिर्यंच स्त्री		कर्णेंद्रियजय		
१	+	६	+	१८	+	१४४	=	१६९
व. गु.		अनुमोदना		तिर्यंच स्त्री		कर्णेंद्रियजय		
२	+	६	+	१८	+	१४४	=	१७०
का. गु.		अनुमोदना		तिर्यंच स्त्री		कर्णेंद्रियजय		
३	+	६	+	१८	+	१४४	=	१७१
म. गु.		कृत		चित्रणी स्त्री		कर्णेंद्रियजय		
१	+	०	+	२७	+	१४४	=	१७२
व. गु.		कृत		चित्रणी स्त्री		कर्णेंद्रियजय		
२	+	०	+	२७	+	१४४	=	१७३
का. गु.		कृत		चित्रणी स्त्री		कर्णेंद्रियजय		
३	+	०	+	२७	+	१४४	=	१७४
म. गु.		कारित		चित्रणी स्त्री		कर्णेंद्रियजय		
१	+	३	+	२७	+	१४४	=	१७५
व. गु.		कारित		चित्रणी स्त्री		कर्णेंद्रियजय		
२	+	३	+	२७	+	१४४	=	१७६
का. गु.		कारित		चित्रणी स्त्री		कर्णेंद्रियजय		
३	+	३	+	२७	+	१४४	=	१७७
म. गु.		अनुमोदना		चित्रणी स्त्री		कर्णेंद्रियजय		
१	+	६	+	२७	+	१४४	=	१७८
व. गु.		अनुमोदना		चित्रणी स्त्री		कर्णेंद्रियजय		
२	+	६	+	२७	+	१४४	=	१७९
का. गु.		अनुमोदना		चित्रणी स्त्री		कर्णेंद्रियजय		
३	+	६	+	२७	+	१४४	=	१८०

ईति ६ प्रकार की होती है- अतिवृष्टि, अनावृष्टि, मूषक, शलभ, शुक और निकटवर्ती राजाओं का उत्पात।

सम प्रस्तार की अपेक्षा यंत्र

ब्रह्मचर्य के १८००० मंत्र और भंग निकालने का यह प्रथम तरीका है-

क्षमा. १	मार्दव. २	आर्जव. ३	शौच. ४	सत्य. ५	संयम. ६	तप. ७	त्याग. ८	आकिं. ९	ब्रह्मचर्य. १०
पृ. ०	ज. १०	अ. २०	वा. ३०	प्र.व. ४०	सा.व. ५०	द्वी. ६०	त्री. ७०	च. ८०	पं. ९०
स्पर्शन. ०	रसना. १००	घ्राण. २००	चक्षु. ३००	कर्णे. ४००					
आ.सं. ०	भ.सं ५००	मै.सं १०००	प.सं १५००						
म.क. ०	व.क. २०००	का.क. ४०००							
म.गु. ०	व.गु. ६०००	का.गु. १२०००							

विषम प्रस्तार की अपेक्षा

म.गु. १	व.गु. २	का.गु. ३							
म.क. ०	व.क. ३	का.क. ६							
आ.सं. ०	भ.सं ९	मै.सं १८	प.सं २७						
स्पर्शन. ०	रसना. ३६	घ्राण. ७२	चक्षु. १०८	कर्णे. १४४					
पृ. ०	ज. १८०	अ. ३६०	वा. ५४०	प्र.व. ७२०	सा.व. ९००	द्वी. १०८०	त्री. १२६०	च. १४४०	पं. १६२०
क्षमा. ०	मार्दव. १८००	आर्जव. ३६००	शौच. ५४००	सत्य. ७२००	संयम. ९०००	तप. १०८००	त्याग. १२६००	आकिंचन्य. १४४००	ब्रह्मचर्य. १६२००

ब्रह्मचर्य के १८००० मंत्र अथवा भंग निकालने का यह दूसरा तरीका है।

* देवांगना १	नर स्त्री २	तिर्यंचनी ३							
* म. ०	व. ३	का. ६							
* कृत ०	का. ९	अनु. १८							
* आ.सं ०	भ.सं २७	मै.सं ५४	प.सं ८१						
* द्र. स्प. ०	भा. स्प. १०८	द्र. र. २१६	भा. र. ३२४	द्र. घ्रा. ४३२	भा. घ्रा. ५४०	द्र. च. ६४८	भा. च. ७५६	द्र. क. ८६४	भा. क. ९७२
*अ.क्रो. ०	मान १०८०	माया २१६०	लोभ ३२४०	अप्र.को. ४३२०	मान ५४००	माया ६४८०	लोभ ७५६०	प्र.क्रो. ८६४०	मान ९७२०
*माया १०८००	लोभ ११८८०	सं. क्रो. १२९६०	मान १४०४०	माया १५१२०	लोभ १६२००				

चेतन स्त्रियों की अपेक्षा १७२८० भंग

म. यो. १	का. यो. २								
काष्ठ स्त्री ०	पाषाणस्त्री २	चित्रस्त्री ४							
कृत ०	कारित ६	अनुमोदना १२							
क्रोध ०	मान १८	माया ३६	लोभ ५४						
द्र. स्प. ०	भा. स्प. ७२	द्र.र. १४४	भा.र. २१६	द्र.घ्रा. २८८	भा.घ्रा. ३६०	द्र.च. ४३२	भा.च. ५०४	द्र.क. ५७६	भा.क. ६४८

अचेतन स्त्रियों की अपेक्षा ७२० भंग

ब्रह्मचर्य के १८००० मंत्र अथवा भंग निकालने का यह तीसरा तरीका है।

* अ.क्रो.	मान	माया	लोभ	अप्र.को.	मान	माया	लोभ		
१	२	३	४	५	६	७	८		
प्र.क्रो.	मान	माया	लोभ	सं. क्रो.	मान	माया	लोभ		
९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६		
* द्र.स्प.	भा.स्प.	द्र.र.	भा.र.	द्र.घ्रा.	भा. घ्रा.	द्र.च.	भा.च.	द्र.क.	भा. क.
०	१६	३२	४८	६४	८०	९६	११२	१२८	१४४
* आ.सं	भय.सं	मै.सं	प.सं						
०	१६०	३२०	४८०						
* कृत	कारित	अनु.							
०	६४०	१२८०							
* मन	वचन	काय							
०	१९२०	३८४०							
* देवी	नर स्त्री	ति.स्त्री							
०	५७६०	११५२०							

चेतन स्त्रियों की अपेक्षा १७२८० भंग

द्रव्य स्प.	भाव स्प.	द्र.र.	भा.र.	द्र.घ्रा.	भा.घ्रा.	द्रव्यच.	भावच.	द्र.कर्ण.	भावकर्ण.
१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०
क्रोध	मान	माया	लोभ						
०	१०	२०	३०						
कृत	कारित	अनु.							
०	४०	८०							
का.स्त्री	पा.स्त्री	चि.स्त्री							
०	१२०	२४०							
म.यो.	का.								
०	३६०								

अचेतन स्त्रियों की अपेक्षा ७२० भंग

प्र.१- सामान्य गुण किसे कहते हैं और विशेष गुण किसे कहते हैं?

उत्तर- जो सभी द्रव्यों में सर्वकाल सर्वत्र पाये जायें उन्हें सामान्यगुण कहते हैं और जो किसी किसी खास द्रव्यों में पाये जायें उन्हें विशेषगुण कहते हैं।

प्र.२- अनंतचतुष्टय आत्मा के सामान्य गुण हैं या विशेष?

उत्तर- अनंतचतुष्टय आत्मा के सामान्य और विशेष दोनों प्रकार के गुण हैं। जैसे सभी अरिहंत और सिद्धों में पाये जाते हैं इसलिए सामान्यगुण है और छद्मस्थों के नहीं पाये जाते हैं इसलिए विशेष गुण हैं अथवा गुण और गुणी या पर्याय और पर्यायी में अभेद विवक्षा करने पर सामान्यगुण कहे जाते हैं। निमित्त नैमित्तिक संबंध की अपेक्षा या पर्याय पर्यायी में भेद विवक्षा से विचार करने पर विशेष गुण कहलाते हैं। जैसे ये अनंतचतुष्टय पारिणामिक भाव की अपेक्षा समस्त जीवों में पाये जाने से सामान्य गुण हैं और क्षायिकभाव स्वरूप अनंतचतुष्टय विशेषगुण हैं क्योंकि ये घातियाकर्मों के समूल क्षय से उत्पन्न होते हैं।

गतियों का वर्णन विस्तार से समझने योग्य

गति के भेदः- दो हैं १. पर्याप्तापर्याप्तावस्था की गति २. अपर्याप्तावस्था की गति।

१. पर्याप्तापर्याप्तावस्था की गति के ४ भेदः- १. नरकगति २. तिर्यंचगति ३. मनुष्यगति ४. देवगति।

क्योंकि इन गतियों का उदय वर्तमान शरीर को छोड़ते ही अंत पर्यंत रहता है।

२. अपर्याप्तावस्था की गति के ४ भेदः- १. इषुगति २. पाणिमुक्तागति ३. लांगलिकागति ४. गोमूत्रिकागति। ये गति के चारों भेद विग्रहगति में जब जीव जाता है तब एक दो तीन समय के लिए होते हैं। ये चारों गतियां पर्याप्तावस्था में नहीं होती हैं।

जैनी कौन नहीं है

अन्याय और अभक्ष्य का सेवन करने वाला जैनी नहीं हो सकता। बिना मर्यादा के भोजन को अभक्ष्य कहते हैं अथवा संख्यात असंख्यात और अनंत जीवों से सहित भोज्य पदार्थों को अभक्ष्य कहते हैं जो मांसपिंड के समान है। इनका सेवन करने वाला मलेच्छ कहलाता है वह कषाई /मांसाहारी ही है, शुद्ध शाकाहारी नहीं।

पाखंडीलिंगाणि य गिहिलिंगाणि व बहुप्पयाराणि।
घित्तुं वदंति मूढा लिंगमिणं मोक्खमग्गोत्ति।।४०८।। स.सा.

अर्थः- अज्ञानी प्राणी अनेक प्रकार के गृहस्थलिंग और अनेक प्रकार के मुनिलिंगों को धारण कर इन्हीं शरीर के लिंगों को मोक्षमार्ग मानता है।

तम्हा जहित्तु लिंगे सागारणगारएहिं वा गहिए।
दंसणणाण चरित्ते अप्पाणं जुंज मोक्खप्पहे।।४११।। स.सा.

अर्थः- इस कारण ग्रहण किये हुए गृहस्थलिंग और मुनिलिंग को छोड़कर आत्मा को सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्र रूप मोक्षमार्ग में लगाओ। यहाँ गृहस्थ और मुनिलिंग को छोड़ने का मतलब है अहंकार ममकार को छोड़ना है।

पाखंडी लिंगेसु य गिहिलिंगेसु व बहुप्पयारेसु।
कुव्वंति जे ममत्तं तेहिं ण णायं समयसारं।। ४१३।। स.सा.

अर्थः- जो अनेक प्रकार के पाखंडी लिंगों में और गृहस्थ लिंगों में ममत्व करते हैं वे शुद्धात्म स्वरूप समयसार को नहीं जानते हैं।

ववहारिओ पुण णओ दोण्णिवि लिंगाणि भणइ मोक्खपहे।
णिच्छयणओ ण इच्छइ मोक्खपहे सव्वलिंगाणि।।४१४।। स.सा.

अर्थः- व्यवहारनय गृहस्थ और मुनिलिंग इन दोनों को मोक्षमार्ग कहता है किंतु निश्चयनय दोनों लिंगों को मोक्षमार्ग नहीं मानता है। इस गाथा में ऊपर की गाथाओं के रहस्य को बतला दिया है कि किस नय का कौन सा विषय है।

अठारह हजार शीलगुण पूजा

आ. चंद्रमति माताजी विरचित

गीता छन्द

स्थापना

भवि मानसिक संताप शांति हेतु में आशा करें।
जो आपका स्तवन करें वे धर्म सुख सम्पति वरें।।
सुब्रह्मव्रत जो पालते वे सर्व का मंगल करें।
मैं पूजहूं आह्वान कर मेरे अमंगल सब हरैं।।

ॐ ह्रीं अष्टादश सहस्त्र शीलगुण प्राप्ताय श्री अयोगिकेवलि अरिहंत परमेष्ठिन् अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननम्। अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनम्। अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणम्। परिपुष्पांजलिं क्षिपेत।

सखी छन्द

शुचि शीतल नीर मंगाऊं कंचन कलशा भरवाऊं।
त्रय धारा चरण चढ़ाऊं भव भव का पाप नशाऊं।।
अष्टादश दोष हजारा इनसे ही पाप विचारा।
इन पाप नशावन काजा मैं व्रत धारूं जिनराजा।।

ॐ ह्रीं १८००० शीलगुण युक्त श्रीअयोगिने जन्मजरामृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

केशर करपूर मिलाया चरनन में भेंट चढ़ाया।
संसार का ताप नशाऊं पद वन्दन कर सुख पाऊं।।
अष्टादश दोष हजारा इनसे ही पाप विचारा।
इन पाप नशावन काजा मैं व्रत धारूं जिनराजा।।

ॐ ह्रीं १८००० शीलगुण युक्त श्रीअयोगिने भवाताप विनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

तन्दुल सित सोम समाना रत्नों का थाल भराना।
जिन अग्र सुपुंज चढ़ाना तातें अक्षय पद पाना।।
अष्टादश दोष हजारा इनसे ही पाप विचारा।
इन पाप नशावन काजा मैं व्रत धारूं जिनराजा।।

ॐ ह्रीं १८००० शीलगुण युक्त श्रीअयोगिने अक्षय पद प्राप्ताय अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

मचकुंद चमेली गुलाबे बकुलादिक लाऊं सजाके।
कामादिक दूर भगाके निज सुख पाऊं यश पाके।।
अष्टादश दोष हजारा इनसे ही पाप विचारा।
इन पाप नशावन काजा मैं व्रत धारूं जिनराजा।।

ब्रह्मचर्य एवं ८४ लाख उत्तरगुण मंत्र विधान

ॐ ह्रीं १८००० शीलगुण युक्त श्रीअयोगिने कामबाण विनाशनाय पुष्पं निर्व. स्वाहा।

पूरण कीनि जलेबी मोतीचूर इमरति भरेली।
जिनवर के आगे चढ़ाऊं क्षुत् बाधा तुरत नशाऊं।।
अष्टादश दोष हजारा इनसे ही पाप विचारा।
इन पाप नशावन काजा मैं व्रत धारूं जिनराजा।।

ॐ ह्रीं १८००० शीलगुण युक्त श्रीअयोगिने क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्व. स्वाहा।

मणि रत्नमयी शुभदीपा तम मोह हरण उद्दीशा।
गुरु पंच परम सुख दाई मम ज्ञान की ज्योति जगाई।।
अष्टादश दोष हजारा इनसे ही पाप विचारा।
इन पाप नशावन काजा मैं व्रत धारूं जिनराजा।।

ॐ ह्रीं १८००० शीलगुण युक्त श्रीअयोगिने मोहांधकार विनाशनाय दीपं निर्व. स्वाहा।

शुभगंधित धूप चढ़ाऊं कर्मों के वंश जलाऊं।
निज आतम रस प्रकटाऊं तातें सुख सम्पति पाऊं।।
अष्टादश दोष हजारा इनसे ही पाप विचारा।
इन पाप नशावन काजा मैं व्रत धारूं जिनराजा।।

ॐ ह्रीं १८००० शीलगुण युक्त श्रीअयोगिने अष्टकर्म विनाशनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

पिस्ता बादाम मंगाया श्रीफल जिन भेंट चढ़ाया।
पूजत तन मन हरषाऊं मैं मोक्ष महाफल पाऊं।।
अष्टादश दोष हजारा इनसे ही पाप विचारा।
इन पाप नशावन काजा मैं व्रत धारूं जिनराजा।।

ॐ ह्रीं १८००० शीलगुण युक्त श्रीअयोगिने मोक्षफल प्राप्ताय फलं निर्वपामीति स्वाहा।

शुचि आठों द्रव्य मिलाये कंचन के थाल भराये।
यह अर्घ समर्पण करता फिर मुक्ति पद को वरता।।
अष्टादश दोष हजारा इनसे ही पाप विचारा।
इन पाप नशावन काजा मैं व्रत धारूं जिनराजा।।

ॐ ह्रीं १८००० शीलगुण युक्त श्रीअयोगिने अनर्घ पद प्राप्ताय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

प्रत्येक अर्घ

पांचों इंद्रिय दुःखकारी इनको भोगे संसारी,
जब तक ब्रह्मचर्य न भावे श्रावक संज्ञा नहि पावे।

इससे भवताप सतावे मुक्ति वधु नहीं पावे,
उत्तम मुनिव्रत अपनावे उनकी हम पूज रचावें।।

ॐ ह्रीं पंचेंद्रियाधीनता रहिताय शीलगुण प्राप्ताय जलाद्यर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

जो तीन करण को नशावे वो ही करुणा मन लावे,
तब ही परमाद निवारे जीवन का शोक विदारे।।
इससे भवताप सतावे मुक्ति वधु नहीं पावे,
उत्तम मुनिव्रत अपनावे उनकी हम पूज रचावें।।

ॐ ह्रीं करण त्रय दोष रहिताय शीलगुण प्राप्ताय जलाद्यर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

दश धर्म की भावना करिये सपने में दोष न धरिये।
उत्तम संतोष धरावे उनको हम शीश झुकावें।।
इससे भवताप सतावे मुक्ति वधु नहीं पावे,
उत्तम मुनिव्रत अपनावे उनकी हम पूज रचावें।।

ॐ ह्रीं धर्म गुण सहिताय शीलगुण प्राप्ताय जलाद्यर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

जो काम भावना भावे वरणन कैसे कर पावे।
सो ब्रह्मचर्य व्रत पाले सुर नर पूजा फल पावे।।
इससे भवताप सतावे मुक्ति वधु नहीं पावे,
उत्तम मुनिव्रत अपनावे उनकी हम पूज रचावें।।

ॐ ह्रीं कामवेग दोष रहिताय शीलगुण प्राप्ताय जलाद्यर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

मन वच तन से जो कीना वह पाप महा दुःख दीना,
मृदुभाव मुनिन के आवे दुर्गति से वह बच जावे।
इससे भवताप सतावे मुक्ति वधु नहीं पावे,
उत्तम मुनिव्रत अपनावे उनकी हम पूज रचावें।।

ॐ ह्रीं त्रय दण्ड दोष रहिताय शीलगुण प्राप्ताय जलाद्यर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

योगों की क्रिया रोके भव भव का कीचड़ धोवे,
मुनिवर यह भाव रचावे मद दर्प को दूर भगावे।।
इससे भवताप सतावे मुक्ति वधु नहीं पावे,
उत्तम मुनिव्रत अपनावे उनकी हम पूज रचावें।।

ॐ ह्रीं त्रय योग दोष रहिताय शीलगुण प्राप्ताय जलाद्यर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

स्त्री है चार प्रकारी त्रय जीव अजीव है न्यारी।
परिहार इन्हीं का करिये त्रीवेद संयोग न धरिये।।

इससे भवताप सतावे मुक्ति वधु नहीं पावे,
उत्तम मुनिव्रत अपनावे उनकी हम पूज रचावें।।

ॐ ह्रीं स्त्र्याकर्षण दोष रहिताय शीलगुण प्राप्ताय जलाद्यर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

दोहाः- मुनिवर की यह भावना करै सुरक्षा जान।
पाप विनाशक जानकर यह गुणमाल बखान।

समुच्चय मंत्रः- ॐ ह्रीं अष्टादशसहस्त्र शीलगुणेभ्यो नमः।

केसरी छन्द

शील धर्म को जो नर पाले।
कर्मकाट कर शिव सुख पाले।
इस भव विभव चाह नहिं माने।
पर भव की इच्छा न बखाने।
पांचों इन्द्रिय मन वश राखे, तीन करण के भाव न भाखे।
दश धर्मों का पालन करते, दश काम के वेगों को हरते।।
तीन दण्ड को मन में न लावे, तीन योग से समता भावे।
तीनों तिरिया दुःखमय जानो और अचेतन तिरिया मानो।।
जिन जिन ने व्रत पालन कीना, उन उन ने फल मोक्ष को लीना।
सेठ सुदर्शन शील को पाला, शूली का सिंहासन झाला।
सीता सति ने शील को ध्याया अग्नि का वह नीर बनाया।
मनोरमा ने शील को भाया दरवाजा पैरों से खुलवाया।
सोमा सति ने शील विचारा नाग हुआ फूलों की माला।
ब्रह्मचर्य व्रत जो नर पाले वह ही कर्म शत्रु को टाले।।
चन्द्रमती यह भावना भावे मम यह शील पूर्ण हो जावे।
निर्मल से निर्मल हो जावे जब ही शीघ्र मुक्ति को पावे।।

ॐ ह्रीं अष्टादश सहस्त्र शीलगुण प्राप्ताय जयमाला पूर्णार्घं निर्वपामीति स्वाहा।

आ० चन्द्रमतीजी कृत

अप्रमत्त भाव पूजा

स्थापना

हेयोपादेय विवेक जगाने तप धारण का शोध करुं।
दोषप्रमाद मिटाने को मैं चतुष्कषाय का दमन करुं।
प्रमाद रहित हो जाने को मैं ऋषि मुनियों को नमन करुं।
पंचम चारित्र प्राप्त करन को उन्हीं का आह्वान करुं।

ॐ ह्रीं श्री ऋषि मुनि यति अनगाराः अप्रमत्तगुण अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननम्। अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनम्। अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणम्। परिपुष्पांजलिं क्षिपेत।

चौबीसी पूजा चाल

ऋषि मुनि यति अनगार आपके चरण जजूं,
मेरा जनम मरन मिट जाय यातें धार करुं।
साड़े सेंतीस हजार प्रमाद के भेद कहे,
अप्रमत्त बनन के काज ऐंसी शक्ति गहे।।

ॐ ह्रीं श्री ऋषिमुनि यति अनगारः अप्रमत्त गुण प्राप्ताय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

चन्दन केशर करपूर घिसकर ले आयो।
तव चरणन देत चढ़ाय मन अति हर्षायो।।
साड़े सेंतीस हजार प्रमाद के भेद कहे,
अप्रमत्त बनन के काज ऐंसी शक्ति गहे।।

ॐ ह्रीं श्री ऋषिमुनि यति अनगारः अप्रमत्त गुण प्राप्ताय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

मुक्ताफल के जु समान अक्षत लाय भरे।
अक्षय फल पावनकाज, पुण्य भंडार भरे।।
साड़े सेंतीस हजार प्रमाद के भेद कहे,
अप्रमत्त बनन के काज ऐसी शक्ति गहे।।

ॐ ह्रीं श्री ऋषिमुनि यति अनगारः अप्रमत्त गुण प्राप्ताय अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

सुन्दर सु गुलाब मनोज्ञ फूल अनेक कहे।
गुरुवर के चरण चढ़ाय कामव्यथा जु हने।।
साड़े सेंतीस हजार प्रमाद के भेद कहे,
अप्रमत्त बनन के काज ऐसी शक्ति गहे।।

ॐ ह्रीं श्री ऋषिमुनि यति अनगारः अप्रमत्त गुण प्राप्ताय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

घेवर फैनी पकवान मोदक थाल भरी।
नैवेद्य चढ़ाऊं आज मैटूं भूख अरि।।
साड़े सेंतीस हजार प्रमाद के भेद कहे,
अप्रमत्त बनन के काज ऐसी शक्ति गहे।।

ॐ ह्रीँ श्री ऋषिमुनि यति अनगारः अप्रमत्त गुण प्राप्ताय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

करपूर की ज्योति जगाय दीप सजावत हों।
आरति तुम सन्मुख गाय भ्रम तम खोवत हों।।
साड़े सेंतीस हजार प्रमाद के भेद कहे,
अप्रमत्त बनन के काज ऐसी शक्ति गहे।।

ॐ ह्रीँ श्री ऋषिमुनि यति अनगारः अप्रमत्त गुण प्राप्ताय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

यह धूप दशांग बनाय दश दिश गंध भरे।
वसु कर्म जलावन काज मानो नृत्य करें।।
साड़े सेंतीस हजार प्रमाद के भेद कहे,
अप्रमत्त बनन के काज ऐसी शक्ति गहे।।

ॐ ह्रीँ श्री ऋषिमुनि यति अनगारः अप्रमत्त गुण प्राप्ताय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

ले आम्र अनार अंगूर सुन्दर पात्र भरूं।
मम मोक्ष महाफल काज चरनन भेंट धरूं।।
साड़े सेंतीस हजार प्रमाद के भेद कहे,
अप्रमत्त बनन के काज ऐसी शक्ति गहे।।

ॐ ह्रीँ श्री ऋषिमुनि यति अनगारः अप्रमत्त गुण प्राप्ताय फलं निर्वपामीति स्वाहा।

भवि आठों द्रव्य सजाय कंचन थाल भरा।
मम अष्ट कर्म जरजांय पाऊं श्रेष्ठ धरा।।
साड़े सेंतीस हजार प्रमाद के भेद कहे,
अप्रमत्त बनन के काज ऐसी शक्ति गहे।।

ॐ ह्रीँ श्री ऋषिमुनि यति अनगारः अप्रमत्त गुण प्राप्ताय जलाद्यर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

अप्रमत्त पूजा के प्रत्येक समुच्चयों का अर्घ

क्रोध कषाय मिटावे समता का भाव जगावे।
मान कषाय नशावे मार्दव गुणधर्म उपजावे।
माया से दुर्गुण आवे ऋजुता के भाव न आवे।
यह लोभ महादुःखदाई शुचिता का भाव बनाई।।

ॐ ह्रीँ श्री कषाय दोष रहिताय अप्रमत्तगुण प्राप्ताय जलाद्यर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

स्त्री अरु राज कथाऐं निज भाव में दोष लगाये,
चोरी की कथा जो करते मुनि पद में नाहीं रमते।
हुई भोजन कथा जो भारी वह पापक्रिया कर डारी,
जो बहु विकथायें मिटावे मुनि रत्नत्रय प्रगटावे।।

ॐ ह्रीं श्री बहु विकथाऐं रहिताय अप्रमत्तगुण प्राप्ताय जलाद्यर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

पंचेंद्रिय मन वश करना इंद्रिय संयम चित्त में धरना,
इनकी रक्षा जो करता प्राणी संयम उर धरता।
चैतन्य ज्योति प्रकटाता वह मोह करम को ले जाता,
ऐसे गुरु की भक्ति करुं हर्षित होकर अर्घ धरुं।

ॐ ह्रीं श्री पंचेंद्रिय दोष रहिताय अप्रमत्तगुण प्राप्ताय जलाद्यर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

दर्शनावरणी कर्म सतावे निद्रा का भाव बनावे,
दिन में जो निद्रा लेवे अपयश की पोट भरावें
पांचों निद्रा जो त्यागे केवल रवि को प्रगटावे,
वे स्वातम रस प्रगटावे हर्षित हो पूज रचावे।।

ॐ ह्रीं श्री निद्रा दोष रहिताय अप्रमत्तगुण प्राप्ताय जलाद्यर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

प्रीति से स्नेह बढ़ावे मन ज्ञान में नाहि रमावे,
जो भक्ति प्रशस्त बनावे वह कर्म कलंक नशावे।
जो ध्यानामृत को पीवे वह मृत्युंजय बन जावे,
जो शुद्धात्म को ध्यावे हर्षित हो अर्घ चढ़ावें।।

ॐ ह्रीं श्री स्नेह दोष रहिताय अप्रमत्तगुण प्राप्ताय जलाद्यर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

समुच्चय मंत्रः- ॐ ह्रीं श्री अप्रमत्तादि गुण प्राप्तेभ्यो नमः।

दोहाः- श्री मुनिवर का ध्यान कर अद्भुत परम विशाल।
तिन गुण अगम अपार हैं सरस कहूं जयमाल।।

जयमाला (हे दीनबन्धु)

जय जय श्री शिरोमणि गुरुदेव हमारे। संसार विषम क्षार से हमें पार उतारे।।
प्रमाद तो संसार का ही मूल हेतु है। अप्रमाद ही संसार से उत्तीर्ण सेतु है।।
पच्चीस विकथाऐं तो संसार घुमातीं। चार सुकथाऐं ही मोक्षमार्ग दिखातीं।।
संवेदनी निर्वेदनी तो मोह नशातीं। आक्षेपणी विक्षेपणी वह ज्ञान बढ़ातीं।।
पनवीस कषायों की तो सेना बनी भारी। जो मोह जाल में फंसा इस देह का धारी।।
इंद्रियां पांचों ही सम अधिकार जमाती। निद्रा अरु स्नेह से वे बच नहीं पाती।।
गुरुवर के चरणों में है अरदास हमारी। इन्हीं प्रमाद से बचुं यह अर्ज है म्हारी।।
आर्त रौद्रध्यान से वचना मैं चाहता। धर्मध्यान में रमूं यह नित्य चाहता।।
इस ध्यान के प्रभाव से प्रमाद नशाता। गुणथान सात प्राप्त कर अप्रमत्त हो जाता।।

सप्त कर्म नष्ट कर सम्यक्त्व क्षायिक हो जाता। क्षपक श्रेणि मांडकर स्वस्थान बन जाता।।
अपूर्व भाव प्राप्त कर अनिवृत्ति में आता। छत्तीस प्रकृति नष्ट करुं यह भाव जगाता।।
सूक्ष्म लोभ नाश कर सूक्ष्म स्थान को पाया। क्षीण मोही बन के सोलह कर्म हटाया।।
एकत्वध्यान से है केवलज्ञान को पाया। समुद्घात करके बाद सूक्ष्म योग को पाया।।
व्युपरतक्रिया ध्यान से पचासी को भगाया। अप्रमत्त भाव प्राप्त कर मैं सिद्ध बन पाया।।
यह चन्द्रमती सूर्य सम प्रकाश कर पाये। अरु दक्षता को प्राप्त कर वह सिद्ध हो जावै।।
दोहाः- विकथा व कषाय सब इंद्रिय निद्रा स्नेह। इस प्रमाद को त्याग कर पहुंचूं मुक्ति गेह।।

ॐ ह्रीं श्री ऋषि मुनि यति अनगारः अप्रमत्त गुण पूर्णार्घं निर्वपामीति स्वाहा।

इत्याशीर्वादः

प्रमत्तयोगात् प्राण व्यपरोपणं हिंसा।।१३।। अर्थः- प्रमाद के योग से स्व पर और उभय के प्राणों का वियोग करना हिंसापाप है। **प्रमत्तयोगात् असदभिधानमनृतम्।।१४।।** अर्थः- प्रमाद के योग से स्व पर और उभय के प्राणघातक वचन बोलना झूंठ पाप है। **प्रमत्तयोगात्अदत्तादानं स्तेयम्।।१५।।** अर्थः- प्रमाद के योग से पर की स्वेच्छा के बिना चेतनाचेतन मिश्र सामग्री ग्रहण करना चोरी पाप है। **प्रमत्तयोगात् मैथुनमब्रह्म।।१६।।** अर्थः- प्रमाद के योग से स्व पर और दोनों के साथ मनस्ताप को शांत करने के लिए कामोत्तेजक अंगों का आलिंगन करना मैथुन पाप है। **प्रमत्तयोगात् मूर्छा परिग्रहः।।१७।।** अर्थः- प्रमाद के योग से विषयभोगों में साधनभूत बाह्य चेतन अचेतन मिश्र सामग्री ग्रहण करना परिग्रह पाप है अर्थात् प्रमाद के योग से ही समस्त कार्य पाप रूप होते हैं।

२५ विकथाओं के नाम निम्न प्रकार हैं:-

१. स्त्रीकथाः- विषयवासना पूर्वक राग में फंसानेवाली स्त्रियों के सौंदर्य एवं कला आदि का वर्णन करना अथवा कामवासना पूर्वक पुरुषों की, नपुंसकों की कथा करना।

२. अर्थकथाः- विषय भोगों में काम आने वाली चेतन, अचेतन और मिश्र, चल, अचल संपत्ति के गुणदोषों की प्रशंसा करना।

३. भोजनकथाः- भोजन की लालसा से नाना प्रकार के खाद्य स्वाद्य लेह्य और पेय आहार संबंधी गुणदोषों का वर्णन करना अथवा अभक्ष्य भोज्य पदार्थों के भोजन की आकांक्षा उत्पन्न करने कराने के लिए गुणदोषों का वर्णन करना।

४. राजकथाः- लौकिक नेताओं के प्रति आकर्षण पैदा करने के लिए विकार पूर्वक गुणदोषों का कथन करना।

५. चोरकथाः- कषाय पूर्वक दूसरों के धन का अपहरण करने वाले प्रमादी चोरों की कलाओं का चोरी में लगाने के लिए कथन करना।

६. वैरकथाः- रागद्वेष पूर्वक परस्पर में फूट डालने की कथा करना।

७. परपाखंड कथाः- मिथ्यात्व में फंसाने के लिए मिथ्यामती साधुओं की तपस्या आदि का मोह पूर्वक गुणदोषों का कथन करना।

८. देशकथाः- धर्मभाव को छोड़कर धर्मक्षेत्र के बिना केवल आकर्षण के लिए कर्मक्षेत्रों के गुणदोषों का वर्णन करना।

९. भाषाकथाः- लोकव्यवहार के लिए धर्मबुद्धि के बिना अनेक प्रकार की भाषाओं की निंदा प्रशंसा करना अथवा किन्हीं दूसरों को अपना रहस्य मालुम न हो जाये या आश्चर्य में डालने के लिए अनेक भाषाओं के कथन करने को, उच्चारण करने को भाषा कथा कहते हैं।

१०. गुणबंधकथाः- विषयकषायों के उद्रेक पूर्वक प्राणियों को संसार में फंसाने के लिए लौकिक गुणदोषों का कथन करना।

११. देवीकथाः- चार प्रकार की देवांगनाओं के रूप अलंकार आदि का मोह पैदा करने के लिए कला आदि गुणों का वर्णन करना अथवा महान स्त्रीवेदियों का राग पूर्वक शारीरिक सौंदर्य का कथन करना।

१२. निष्ठुरकथाः- विषय कषाय पूर्वक हृदय विदारक नीरस कठोर वचन उच्चारण करना।

१३. परपैशुन्यकथाः- दूसरों को नीचा दिखाने के लिए, बदनामी के लिए यहाँ की वहाँ और वहाँ की यहाँ नारदों के समान चुगलखोरी करना।

१४. कन्दर्प कथाः- कामवासना उत्पन्न करने के लिए मैथुन संबंधी कथन करना।

१५. देशकालानुचितकथाः- अज्ञानता पूर्वक देश और काल के अनुसार मनोनुकूल कथन करना।

१६. भंडकथाः- परस्पर में झगड़ा पैदा करने के लिए कषायपूर्वक दोषवादन करना, अशिष्टवचन बोलना।

१७. मूर्खकथाः- अविवेकता पूर्वक कथन करना।

१८. आत्मप्रशंसाकथाः- ख्याति पूजा लाभ की भावना सहित अपना गुणानुवाद करना।

१९. परपरिवादकथाः- आलस्य पूर्वक दूसरों को अपमानित करने के लिए दोषवादन करना।

२०. परजुगुप्साकथाः- कषाय सहित दूसरों में घृणा पैदा करने वाली कथा करना।

२१. परपीड़ाकथाः- विषयकषाय पूर्वक मर्मच्छेदी शब्द बोलना।
२२. कलहकथाः- परस्पर में वैरविरोध, झगड़ा पैदा करने वाली कथा करना।
२३. परिग्रहकथाः- सांसारिक विषय भोगों की सामग्री में मोह पैदा करने वाली कथा करना।
२४. कृष्यादिआरंभकथाः- धर्मभाव के बिना कूटना पीसना, खेती आदि आरंभ पैदा करने वाली कथा करना।
२५. संगीतवाद्यकथाः- राग विकार पैदा करने के लिए गाने बजाने नाचने वाली कथा करना।

२५कषायें:-

१. अनंतानुबंधी क्रोधः- कमजोरी के कारण असहनशीलता को क्रोध कहते हैं तथा संस्कार कम से कम एक समय या अंतर्मुहूर्त तथा अधिक से अधिक अनंत भवों तक साथ में चला जाये।
२. अनंतानुबंधी मानः- अहंकार को या दूसरों को नीचा दिखाने को मान कहते हैं। इसका संस्कार कम से कम एक समय या अंतर्मुहूर्त तथा अधिक से अधिक अनंत भवों तक साथ में चला जाये।
३. अनंतानुबंधी मायाः- छलकपट करने को माया कहते हैं। इसका संस्कार कम से कम एक समय या अंतर्मुहूर्त तथा अधिक से अधिक अनंत भवों तक साथ में चला जाये।
४. अनंतानुबंधी लोभः- इन्द्रिय भोग संबंधी परपदार्थों के प्रति आकर्षण भावों को लोभ कहते हैं। इसका संस्कार कम से कम एक समय या अंतर्मुहूर्त तथा अधिक से अधिक अनंत भवों तक साथ में चला जाये।
५. अप्रत्याख्यानावरण क्रोधः- असहनशीलता का संस्कार कम से कम एक समय या अंतर्मुहूर्त तथा अधिक से अधिक ६ महिने तक या दूसरे भव तक साथ में चला जाये जैसे किसी जीव ने अनंतानुबंधी कषाय से परिणत हो नवीन आयु को बांध कर अप्रत्याख्यानावरणीय क्रोध से परिणमन कर अंतर्मुहूर्त में या जीवन के किसी भी क्षण में मरण कर वैमानिक देवों में या चारों गतियों में जन्म धारण किया तब उसके अप्रत्याख्यानावरण क्रोध का संस्कार भवांतर तक बन जाता है।
६. अप्रत्याख्यानावरण मानः- अहंकार का या दूसरों को नीचा दिखाने का संस्कार कम से कम एक समय या अंतर्मुहूर्त तथा अधिक से अधिक ६ महिने तक या दूसरे भव तक साथ में चला जाये जैसे किसी जीव ने अनंतानुबंधी कषाय से परिणत हो नवीन आयु को बांधकर अप्रत्याख्यानावरणीय मान से परिणमन कर अंतर्मुहूर्त में या जीवन के किसी भी क्षण में मरण कर वैमानिकदेवों में या चारों गतियों में जन्म धारण किया तब उसके अप्रत्याख्यानावरण मान का संस्कार भवांतर तक बन जाता है।
७. अप्रत्याख्यानावरण मायाः- छलकपट धोकेबाजी का संस्कार कम से कम एक समय या अंतर्मुहूर्त तथा अधिक से अधिक ६ महिने तक या दूसरे भव तक साथ में चला जाये जैसे किसी जीव ने अनंतानुबंधी कषाय से परिणत हो नवीन आयु को बांधकर अप्रत्याख्यानावरणीय माया से परिणमन कर अंतर्मुहूर्त में या जीवन के किसी भी क्षण में मरण कर वैमानिक देवों में या चारों गतियों में जन्म धारण किया तब उसके अप्रत्याख्यानावरण माया का संस्कार भवांतर तक बन जाता है।
८. अप्रत्याख्यानावरण लोभः- भोग संबंधी पदार्थों के प्रति ममत्व का संस्कार कम से कम एक समय या अंतर्मुहूर्त तथा अधिक से अधिक ६ महिने तक या दूसरे भव तक साथ में चला जाये जैसे किसी जीव ने अनंतानुबंधी कषाय से परिणत हो नवीन आयु को बांधकर अप्रत्याख्यानावरणीय लोभ से परिणमन कर अंतर्मुहूर्त में या जीवन के किसी भी क्षण में मरकर वैमानिकदेवों में या चारों गतियों में जन्म धारण किया तब उसके अप्रत्याख्यानावरण लोभ का संस्कार भवांतर तक बन जाता है।

९. प्रत्याख्यानावरण क्रोधः- असहनशीलता का संस्कार कम से कम एक समय या अंतर्मुहूर्त तथा अधिक से अधिक १५ दिन तक या दूसरे भव तक साथ में चला जाये उसे प्रत्याख्यानावरण क्रोध कहते हैं। जैसे किसी अणुव्रती जीव ने प्रत्याख्यानावरणीय क्रोध से परिणमन कर आयु बांधकर अंतर्मुहूर्त में या जीवन के किसी भी क्षण में मरकर वैमानिकदेवों में जन्म धारण किया तब उसके प्रत्याख्यानावरण क्रोध का संस्कार भवांतर तक बन जाता है।

१०. प्रत्याख्यानावरण मानः- अहंकार या नीचा दिखाने का संस्कार कम से कम एक समय या अंतर्मुहूर्त तथा अधिक से अधिक १५ दिन तक या दूसरे भव तक साथ में चला जाये उसे प्रत्याख्यानावरण मान कहते हैं। जैसे किसी पंचम गुणस्थानवर्ती जीव ने प्रत्याख्यानावरणीय मान से परिणमन कर आयु बांधकर अंतर्मुहूर्त में या जीवन के किसी भी क्षण में मरण कर वैमानिक देवों में जन्म धारण किया तब उसके प्रत्याख्यानावरण मान का संस्कार भवांतर तक बन जाता है।

११. प्रत्याख्यानावरण मायाः- छलकपट या धोकेबाजी का संस्कार कम से कम एक समय या अंतर्मुहूर्त तथा अधिक से अधिक १५ दिन तक या दूसरे भव तक साथ में चला जाये उसे प्रत्याख्यानावरण माया कहते हैं। जैसे किसी अणुव्रती ने प्रत्याख्यानावरणीय माया से परिणमन कर आयु बांधकर अंतर्मुहूर्त में या जीवन के किसी भी क्षण में मरण कर वैमानिक देवों में जन्म धारण किया तब उसके प्रत्याख्यानावरण माया का संस्कार भवांतर तक बन जाता है।

१२. प्रत्याख्यानावरण लोभः- भोग संबंधी परपदार्थों में ममत्व का संस्कार कम से कम एक समय या अंतर्मुहूर्त तथा अधिक से अधिक १५ दिन तक या दूसरे भव तक साथ में चला जाये उसे प्रत्याख्यानावरण लोभ कहते हैं। जैसे किसी अणुव्रती ने प्रत्याख्यानावरणीयलोभ से परिणत हो आयु बांधकर अंतर्मुहूर्त में या जीवन के किसी भी क्षण में मरकर वैमानिकदेवों में जन्म धारण किया तब उसके प्रत्याख्यानावरणलोभ का संस्कार भवांतर तक बन जाता है।

१३. संज्वलन क्रोधः- असहनशीलता का संस्कार कम से कम एक समय या अधिक से अधिक अंतर्मुहूर्त या दूसरे भव तक साथ में चला जाये उसे संज्वलन क्रोध कहते हैं। जैसे किसी मुनि ने संज्वलन क्रोध से परिणमन कर आयु बांधकर अंतर्मुहूर्त में या जीवन के किसी भी क्षण में मरकर वैमानिक देवों में जन्म लिया तब उसके संज्वलन क्रोध का संस्कार भवांतर तक बन जाता है।

१४. संज्वलन मानः- अहंकार या नीचा दिखाने का संस्कार कम से कम एक समय या अधिक से अधिक अंतर्मुहूर्त या दूसरे भव तक साथ में चला जाये उसे संज्वलन मान कहते हैं। जैसे किसी मुनि ने संज्वलन मान से परिणमन कर आयु बांधकर अंतर्मुहूर्त में या जीवन के किसी भी क्षण में मरण कर वैमानिक देवों में जन्म लिया तब उसके संज्वलन मान का संस्कार भवांतर तक बन जाता है।

१५. संज्वलन मायाः- छलकपट या धोकेबाजी का संस्कार कम से कम एक समय या अधिक से अधिक अंतर्मुहूर्त तक या दूसरे भव तक साथ में चला जाये उसे संज्वलन माया कहते हैं। जैसे किसी मुनि ने संज्वलन माया से परिणमन कर आयु बांधकर अंतर्मुहूर्त में या जीवन के किसी भी क्षण में मरण कर वैमानिक देवों में जन्म लिया तब संज्वलन माया का संस्कार भवांतर तक बन जाता है।

१६. संज्वलन लोभः- भोग संबंधी पदार्थों में ममत्व का संस्कार कम से कम एक समय या अधिक से अधिक अंतर्मुहूर्त या भवांतर तक साथ में चला जाये उसे संज्वलन लोभ कहते हैं। जैसे किसी मुनि ने संज्वलन लोभ से परिणमन कर आयु बांधकर अंतर्मुहूर्त में या जीवन के किसी भी क्षण में मरकर वैमानिकों में जन्म धारण किया तब संज्वलन लोभ का संस्कार भवांतर तक बन जाता है।

१७. हास्यः- जिस कर्म के उदय से हँसी आये या व्यंगात्मक भावों को हास्य कर्म कहते हैं।
१८. रतिः- जिस कर्म के उदय से इन्द्रिय विषयों में प्रीति उत्पन्न हो उसे रतिकर्म कहते हैं।
१९. अरतिः- जिस कर्म के उदय से विषयों में अप्रीति उत्पन्न हो उसे अरतिकर्म कहते हैं।
२०. शोकः- जिस कर्म के उदय से अपमान होने पर पश्चात्ताप हो उसे शोक कहते हैं।
२१. भयः- जिस कर्म के उदय से मन में कंपन भाव उत्पन्न हो उसे भय कहते हैं।
२२. जुगुप्साः- जिस कर्म के उदय से परपदार्थों के प्रति ग्लानि उत्पन्न हो उसे जुगुप्सा कहते हैं।
२३. स्त्री वेदः- जिस कर्म के उदय से पुरुष के साथ रमण के भाव हो, भीरु स्वभाव हो, मन में कंपन हो या मैं स्त्री हूं, अबला हूं ऐसे भावों को स्त्रीवेद कहते हैं।
२४. पुरुष वेदः- जिस कर्म के उदय से स्त्रियों के साथ रमण के भाव हो, उत्तम भोगों का, गुणों का स्वामी हो, प्रतिज्ञा पालने में कर्मठ हो या मैं पुरुष हूं ऐसे भाव को पुरुषवेद कहते हैं।
२५. नपुंसक वेदः- जिस कर्मोदय से दोनों के साथ रमण के भाव हो, जिसमें स्त्री और पुरुष दोनों के भाव पायें जायें या चेष्टायें पाई जायें उसे नपुंसकवेद कहते हैं।

५ इन्द्रियांः-

१. स्पर्शनेन्द्रियाधीनताः- जिस कर्म के उदय से स्पर्श संबंधी ८ विषयों के आधीन हो।
२. रसनेन्द्रियाधीनताः- जिस कर्म के उदय से रसना संबंधी ५ विषयों के आधीन हो।
३. घ्राणेन्द्रियाधीनताः- जिस कर्म के उदय से घ्राण संबंधी २ विषयों के आधीन हो।
४. चक्षु इन्द्रियाधीनताः- जिस कर्म के उदय से नेत्र संबंधी ५ विषयों के आधीन हो।
५. कर्ण इन्द्रियाधीनताः- जिस कर्म के उदय से कर्ण संबंधी ७ विषयों के आधीन हो।
६. मन की आधीनता :- जिस कर्म के उदय से विषयों के बिना मन बैचेन हो, दुखी हो।

५ निद्राः-

निद्राः- खेद, श्रमादि को दूर करने के लिये विश्रांति जिस कर्मोदय से हो वह निद्रा दर्शनावरणकर्म है।
निद्रानिद्राः- नींद के बाद पुनः पुनः नींद आने को निद्रानिद्राकर्म कहते हैं। निद्रानिद्रा के वशीभूत होकर जीव अपनी आँखों को नहीं खोल सकता।
प्रचलाः- बैठे बैठे नेत्र शरीर आदि में विकार करने वाली शोक तथा थकावट आदि से उत्पन्न हुई नींद को प्रचला कर्म कहते हैं। प्रचला के वशीभूत हुआ जीव सोता हुआ भी जागता रहता है।
प्रचलाप्रचलाः- प्रचला के ऊपर प्रचला के आने को प्रचलाप्रचलाकर्म प्रकृति कहते हैं। प्रचलाप्रचला के द्वारा शयन अवस्था में मुँह से लार बहने लगती है तथा अंगोपांग चलने लगते हैं।
स्त्यानगृद्धिः- जिस निद्रा के द्वारा सुप्तावस्था में नाना तरह के भयंकर कार्य कर डाले और जागने पर कुछ मालुम ही न हो कि मैंने क्या किया है उसे स्त्यानगृद्धिकर्म कहते हैं।

प्रणेय दो प्रकार काः-

१. द्रव्य प्रणेयः- वचन और काय के द्वारा विषय भोगों में प्रीति प्रदर्शित करने को।
२. भाव प्रणेयः- मन से विषय भोगों में प्रीति प्रदर्शित करने को। अथवा
१. शुभ प्रणेयः- मोक्षमार्ग के कार्यों में मन वचन काय पूर्वक विकल्प सहित प्रवृत्ति करने को।
२ अशुभ प्रणेयः- विषय कषायों में मन वचन काय से युक्त प्रवृत्ति करने को।

प्र.१- अगुरुलघु गुण क्या सर्वथा सभी के द्वारा आगम से ही जाना जाता है?

उत्तर- नहीं, सर्वथा सभी के द्वारा अगुरुलघु गुण आगम के द्वारा नहीं जाना जाता है किंतु सर्वज्ञ केवली भगवंतों के द्वारा केवलज्ञान के द्वारा ही जाना जाता है, शेष छद्मस्थों के द्वारा केवली भगवान के उपदेश से जाना जाता है। इसी तरह सभी गुण अमूर्तिक अरूपी होने से केवलीभगवान के द्वारा प्रदेश प्रत्यक्ष और छद्मस्थों के द्वारा परोक्ष रूप से जाने जाते हैं और यह परोक्षपना आगम से, गुरु उपदेश से, केवली के उपदेश से या अनुमान ज्ञानादि की अपेक्षा समझना चाहिये। अथवा केवलज्ञान प्रत्यक्ष है तथा शेष क्षायोपशमिक होने से अमूर्तिक, अरूपी पदार्थों को जानने के लिए परोक्ष हैं। अवधिज्ञान और मनःपर्यय ज्ञान रूपी पदार्थों को जानने के लिए प्रत्यक्ष हैं तथा आत्मा को और धर्मादि चार अमूर्तिक अरूपी द्रव्यों को जानने के लिए परोक्ष हैं। अतः ये दोनों ज्ञान सर्वथा न प्रत्यक्ष हैं, न परोक्ष किंतु इन दोनों में अपेक्षा लगाने से ही प्रत्यक्ष और परोक्षपना है।

प्र.१- ये दोनों ज्ञान परोक्ष कैसे हैं?

उत्तर- 'रूपिष्ववधेः'।।२७।। त.सू. प्र. अ. इस सूत्र में रूपी पदार्थों को जानने के लिए प्रत्यक्ष कहा है, न कि अरूपी पदार्थों को जानने के लिए प्रत्यक्ष कहा है। यदि अरूपी, अमूर्तिक द्रव्यों को जानने के लिए प्रत्यक्ष होते तो सूत्रकार या भाष्यकार प्रतिपादन करते कि ये दोनों ज्ञान आत्मा को भी बिना किसीकी सहायता लिए प्रत्यक्ष जान लेते हैं और कहीं भी आचार्य कोई एकाद उदाहरण रूप में प्रतिपादन करते कि इन्होंने इस आत्मा में रत्नत्रय धर्म है या नहीं ऐसा सीधा जान लिया हो। हाँ, इतना अवश्य है कि सर्व प्रथम ये दोनों ज्ञानी द्रव्यकर्म को जानेंगे कि इस आत्मा में यदि इन द्रव्यकर्मों का उदय है तो रत्नत्रय धर्म नहीं है और यदि द्रव्य कर्मों का उदय नहीं है तो रत्नत्रय धर्म मौजूद है इस कारण ये दोनों ज्ञान अपेक्षा कृत होने से परोक्ष और प्रत्यक्ष हैं। अथवा अरूपी अमूर्तिक पदार्थों को सीधा बिना कर्मों को देखे जान लेते तो **रूपिष्ववधेः** ऐसा न कहकर **रूपिष्वरूपिष्ववधेः** ऐसा सूत्र बना देते इसका अर्थ होता है कि अवधिज्ञान रूपी और अरूपी पदार्थों को जानता है और **तदनंतभागे मनःपर्ययस्य** सर्वावधि ज्ञान के द्वारा जाने गये विषय के अनंतवें भाग को मनःपर्ययज्ञान जानता है पर ऐसा सूत्र नहीं बनाया।

चौरासी लाख उत्तरगुण मंत्र विधान

विधान रचयित्री आ. चन्द्रमती माताजी

स्थापना

लख चौरासी उत्तर गुण को, जो मुनिवर धारण करते।
चौदहवें थानक को पाकर, मुक्तिरमा को वो वरते।।
सभी सुरासुर पूजन आते, गाते मंगल गान सुजान।
हम पूजन आह्वानन करके, अपने मन में आनन्द मान।।

ॐ ह्रीं चतुरशीतिलक्षोत्तरगुण प्राप्ताय श्री अरिहंत सिद्ध परमेष्ठिन् अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननम्। अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनम्। अत्र मम सन्निहितो भव[२] वषट् सन्निधिकरणं। पुष्पांजलिं क्षिपामि।

नरेन्द्रछन्द

पयो राशि के अमृत जल से, कलसों को भरवाये हैं।
गुरुवों के चरनन में लाकर, धारा तीन कराये हैं।।
लख चौरासी उत्तर गुण को, जो मुनिवर धारण करते।
ऋद्धि सिद्धि यश सम्पत्ति पा, भव वारिधि से वो तिरते।।१।।

ॐ ह्रीं चतुरशीतिलक्षोत्तरगुण प्राप्ताय श्री अरिहंत सिद्ध परमेष्ठिभ्यो जलं निर्व. स्वाहा।

संसार ताप से दुःखी हुआ मैं, गुरु चरणन में चल आया।
क्षयोपशान्ति पाने के हेतु, चन्दन घिसकर ले आया।।
लख चौरासी उत्तर गुण को, जो मुनिवर धारण करते।
ऋद्धि सिद्धि यश सम्पत्ति पा, भव वारिधि से वो तिरते।।२।।

ॐ ह्रीं चतुरशीतिलक्षोत्तरगुण प्राप्ताय श्री अरिहंत सिद्ध परमेष्ठिभ्यो चंदनं निर्व. स्वाहा।

अक्षत हैं मोती सम प्यारे, अर्पण करने आया हूं।
अक्षय पद की प्राप्ति हेतु मैं पुंज चढ़ाने आया हूं।।
लख चौरासी उत्तर गुण को, जो मुनिवर धारण करते।
ऋद्धि सिद्धि यश सम्पत्ति पा, भव वारिधि से वो तिरते।।३।।

ॐ ह्रीं चतुरशीतिलक्षोत्तरगुण प्राप्ताय श्री अरिहंत सिद्ध परमेष्ठिभ्यो अक्षतं निर्व. स्वाहा।

बेला अरु मचकुंद चमेली, पारिजात चुन-चुन लाऊं।
अर्चूं गुरुवर के चरणाम्बुज, निज सुख का मैं यश पाऊं।।
लख चौरासी उत्तर गुण को, मुनिवर जो धारण करते।
ऋद्धि सिद्धि यश सम्पत्ति पा, भव वारिधि से वो तिरते।।४।।

ॐ ह्रीं चतुरशीतिलक्षोत्तरगुण प्राप्ताय श्री अरिहंत सिद्ध परमेष्ठिभ्यो पुष्पं निर्व. स्वाहा।

लाडू पेडा बरफी इमरती, मोतीचूर का थाल भरा।
क्षुधा वेदनी का क्षय करके, पाऊं शीघ्र ही मोक्षधरा।।

लख चौरासी उत्तर गुण को, जो मुनिवर धारण करते।
ऋद्धि सिद्धि यश सम्पत्ति पा, भव वारिधि से वो तिरते।।५।।

ॐ ह्रीं चतुरशीतिलक्षोत्तरगुण प्राप्ताय श्री अरिहंत सिद्ध परमेष्ठिभ्यो नैवेद्यं निर्व. स्वाहा।

घृतमय दीपक की ज्योति जो, घोर तिमिर को दूर करै।
केवल ज्ञान प्रकट होवे तो, आत्मज्योति उद्योत करै।।
लख चौरासी उत्तर गुण को, जो मुनिवर धारण करते।
ऋद्धि सिद्धि यश सम्पत्ति पा, भव वारिधि से वो तिरते।।६।।

ॐ ह्रीं चतुरशीतिलक्षोत्तरगुण प्राप्ताय श्री अरिहंत सिद्ध परमेष्ठिभ्यो दीपं निर्व. स्वाहा।

धूपदशांग सुगन्धित लाकर, अग्नि में अर्पण करता।
उड़तीधूप दिशा विदिशा में, पापकर्म का क्षय करता।।
लखचौरासी उत्तर गुण को, जो मुनिवर धारण करते।
ऋद्धि सिद्धि यश सम्पत्ति पा, भव वारिधि से वो तिरते।।७।।

ॐ ह्रीं चतुरशीतिलक्षोत्तरगुणप्राप्ताय श्रीअरिहंत सिद्ध परमेष्ठिभ्यो धूपं निर्व. स्वाहा।

अनन्नास अंगूर संतरा, श्रीफल पात्र भराता हूँ।
मोक्ष महाफल पावन कारण, यतियों के गुण गाता हूँ।।
लख चौरासी उत्तर गुण को, जो मुनिवर धारण करते।
ऋद्धि सिद्धि यश सम्पत्ति पा, भव वारिधि से वो तिरते।।८।।

ॐ ह्रीं चतुरशीतिलक्षोत्तरगुण प्राप्ताय श्री अरिहंत सिद्ध परमेष्ठिभ्यो फलं निर्व. स्वाहा।

जल फलादिक अर्घ बनाकर, उसमें रतन मिलाया है।
सुरनर किन्नर पूजन करते, भक्ति से अर्घ चढ़ाया है।।
लख चौरासी उत्तर गुण को, जो मुनिवर धारण करते।
ऋद्धि सिद्धि यश सम्पत्ति पा, भव वारिधि से वो तिरते।।९।।

ॐ ह्रीं चतुरशीतिलक्षोत्तरगुण प्राप्ताय श्री अरिहंत सिद्ध परमेष्ठिभ्यो अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

प्रत्येक अर्घ

दोहा-

प्रथम अहिंसा नाम का, कहा महाव्रत सार।
चारित्र का यह मूल है, सब व्रत का आधार।।

ॐ ह्रीं चतुरशीतिलक्षोत्तरगुण प्राप्ताय श्री अहिंसा महाव्रताय जलाद्यर्घं निर्व. स्वाहा (१)

सत्य महाव्रत धारकर, मन धर सुधि सुजान।
धर्म सुनत सुख ऊपजे, पावे सुख अधिकान।

ॐ ह्रीं चतुरशीतिलक्षोत्तरगुण प्राप्ताय श्री सत्य महाव्रताय जलाद्यर्घं निर्व. स्वाहा (२)

निज गुण विमल विशाल हैं, धर अचौर्य उर मांहि।
विघन हरण मंगल करण, ऋद्धि सिद्ध हो जांहि ।।

ॐ ह्रीं चतुरशीतिलक्षोत्तरगुण प्राप्ताय श्री अचौर्य महाव्रताय जलाद्यर्घं निर्व. स्वाहा (३)

धरैं परम उत्तमव्रती , ब्रह्मचर्यव्रत सार ।
मनवचतन अर्चन करूं होय भवोदधि पार।।

ॐ ह्रीं चतुरशीतिलक्षोत्तरगुण प्राप्ताय श्री ब्रह्मचर्य महाव्रताय जलाद्यर्घं निर्व. स्वाहा (४)

सकल संग परिहार कर, धारे समता भाव।
आकिंचन उर धारकर, तिन प्रति तजो विभाव।।

ॐ ह्रीं चतुरशीतिलक्षोत्तरगुण प्राप्ताय श्री अपरिग्रह महाव्रताय जलाद्यर्घं निर्वपामीति स्वाहा (५)

अड्डिल छन्द

क्रोध कषाय जगत में दुःख कर जानिये,
व्रत घातक तुम जान तांहि तुम हानिये।
क्षमाभाव तुम धरो हरो सब खेद को,
ध्यावो समता भाव धरो मनमोद को।।

ॐ ह्रीं चतुरशीतिलक्षोत्तरगुण प्राप्ताय श्री क्रोधकषाय रहिताय जलाद्यर्घं निर्व. स्वाहा (६)

मान कषाय के कारण दोष उत्पन्न करै,
धर्म छोड़ विकराल बुद्धि सब परिहरै।
मार्दव धर्म को पाय सर्व हितमित करै,
धरै सदा वैराग्य वही शिवपुर गहै।।

ॐ ह्रीं चतुरशीतिलक्षोत्तरगुण प्राप्ताय श्री मानकषाय रहिताय जलाद्यर्घं निर्व. स्वाहा (७)

मन वच में कछु और जो यह माया गहै,
तिनका रूप विचार दोष सबजन कहै।
इनका दोष विचार भाव आर्जव कीजिये,
ले सुन्दर वसु द्रव्य जिनेश्वर पूजिये।।

ॐ ह्रीं चतुरशीतिलक्षोत्तरगुण प्राप्ताय श्री माया कषाय रहिताय जलाद्यर्घं निर्व. स्वाहा (८)

लोभ भेद कषाय तने जिनवर कहै,
ये सब अघ के मूल व्रतीजन परिहरै।
धारे परम निसंग शुद्ध सम्यक धरै,
इन दोषों को नाश सुगुन सब हिये धरै।।

ॐ ह्रीं चतुरशीतिलक्षोत्तरगुण प्राप्ताय श्री लोभ कषाय रहिताय जलाद्यर्घं निर्व. स्वाहा (९)

हे दीनबन्धु

सप्त भय जिनराज ने मिथ्यात्व में कहे,
सम्यक्त्व में होते नहीं ये सिद्ध हो रहे।
जो भावना यह भावते जिन धर्म की सदा,
वो स्वर्ग सुक्ख भोग के शिव पावें शर्मदा।।

ॐ ह्रीं चतुरशीतिलक्षोत्तरगुण प्राप्ताय भयनोकषाय रहिताय जलाद्यर्घं निर्व. स्वाहा (१०)

कर्म का उदय अरति जिस जीव के होता,
वह कर नहीं सकता स्वयं गुणगान प्रभु का।
जो भावना यह भावते जिन धर्म की सदा,
वो स्वर्ग सुक्ख भोग के शिव पावें शर्मदा।।

ॐ ह्रीं चतुरशीतिलक्षोत्तरगुण प्राप्ताय अरति कषाय रहिताय जलाद्यर्घं निर्व. स्वाहा (११)

धन जन सुख परिवार रति राग से बढ़ता,
मुनिराज की भक्ति से मुक्तिद्वार भी खुलता।
जो भावना यह भावते जिन धर्म की सदा,
वो स्वर्ग सुक्ख भोग के शिव पावें शर्मदा।।

ॐ ह्रीं चतुरशीतिलक्षोत्तरगुण प्राप्ताय रति कषाय रहिताय जलाद्यर्घं निर्वपा. स्वाहा (१२)

सम्यक्त्व दृष्टि देख विकृत भावना भाया,
संसार से वो मुक्त कभी हो नहीं पाया।
जो भावना यह भावते जिन धर्म की सदा,
वो स्वर्ग सुक्ख भोग के शिव पावें शर्मदा।।

ॐ ह्रीं चतुरशीतिलक्षोत्तरगुण प्राप्ताय जुगुप्साकषाय रहिताय जलाद्यर्घं निर्वपा. स्वाहा (१३)

चिंतामणि सम भक्ति चिंतित दानफल देवे,
मन के विकार शुद्ध हो सब कुछ तो पा जावे।
जो भावना यह भावते जिन धर्म की सदा,
वो स्वर्ग सुक्ख भोग के शिव पावें शर्मदा।।

ॐ ह्रीं चतुरशीतिलक्षोत्तरगुण प्राप्ताय श्री मनोमंगुल रहिताय जलाद्यर्घं निर्वपा. स्वाहा (१४)

मिले राज सन्मान जन में मान्यता लावे,
वच से करे गुणगान जिनवर भक्ति बढ़ावे।
जो भावना यह भावते जिन धर्म की सदा,
वो स्वर्ग सुक्ख भोग के शिव पावें शर्मदा।।

ॐ ह्रीं चतुरशीतिलक्षोत्तरगुण प्राप्ताय श्री वचनमंगुल रहिताय जलाद्यर्घं निर्व. स्वाहा (१५)

जो पूजे तन की शक्ति से वह भक्ति प्रगटाता,
वह कल्पवृक्ष के समान मुक्ति पा जाता।
जो भावना यह भावते जिन धर्म की सदा,
वो स्वर्ग सुक्ख भोग के शिव पावें शर्मदा।।

ॐ ह्रीं चतुरशीतिलक्षोत्तरगुण प्राप्ताय श्री कायमंगुल रहिताय जलाद्यर्घं निर्व. स्वाहा (१६)

मिथ्यात्व के उदय से जो जिन बिंब को ध्याता,
मिथ्यात्व का वह नाशकर सम्यक्त्व पा जाता।
जो भावना यह भावते जिन धर्म की सदा,
वो स्वर्ग सुक्ख भोग के शिव पावें शर्मदा।।

ॐ ह्रीं चतुरशीतिलक्षोत्तरगुण प्राप्ताय मिथ्यात्वकर्म रहिताय जलाद्यर्घं निर्व. स्वाहा (१७)

कषाय विषय और विकथा प्रमाद कहलाते,
भगवान की भक्ति से जीव अप्रमत्त हो जाते।
जो भावना यह भावते जिन धर्म की सदा,
वो स्वर्ग सुक्ख भोग के शिव पावें शर्मदा।।

ॐ ह्रीं चतुरशीतिलक्षोत्तरगुण प्राप्ताय प्रमाद दोष रहिताय जलाद्यर्घं निर्व. स्वाहा (१८)

पैशुन्य अपर नाम चुगलखोर कहलाता,
निंदा का त्याग कर कल्पवृक्ष पास में आता।
जो भावना यह भावते जिन धर्म की सदा,
वो स्वर्ग सुक्ख भोग के शिव पावें शर्मदा।।

ॐ ह्रीं चतुरशीतिलक्षोत्तरगुण प्राप्ताय श्री पैशुन्यदोष रहिताय जलाद्यर्घं निर्व. स्वाहा (१९)

निज साम्य सुधारस के स्वादी मुनि जहाँ
अज्ञानता को दूर कर हम पूजते यहाँ।
जो भावना यह भावते जिन धर्म की सदा,
वो स्वर्ग सुक्ख भोग के शिव पावें शर्मदा।।

ॐ ह्रीं चतुरशीतिलक्षोत्तरगुण प्राप्ताय श्री अज्ञान रहिताय जलाद्यर्घं निर्व. स्वाहा (२०)

इंद्रियों के विषयों पर जो अनुग्रह कर पाते,
पांचों पर विजय प्राप्त कर सब सिद्ध हो जाते।
जो भावना यह भावते जिन धर्म की सदा,
वो स्वर्ग सुक्ख भोग के शिव पावें शर्मदा।।

ॐ ह्रीं चतुरशीतिलक्षोत्तरगुण प्राप्ताय इंद्रियविजय प्राप्ताय जलाद्यर्घं निर्व. स्वाहा (२१)

समुच्चय अर्घ

पंच महाव्रत धारण करके चार कषाय परिहार करो।
भय अरति रति और जुगुप्सा मन वच तन का रोध करो।।
मिथ्यादर्शन दुःख का कारण प्रमाद पैशुन्य का त्याग करो।
इंद्रियविषयाज्ञान भाव को त्याग में न मत देर करो।।

ॐ ह्रीं चतुरशीतिलक्षोत्तरगुण प्राप्ताय एकविंशतिगुण सहिताय पूर्णार्घं निर्व. स्वाहा। (२२)

द्वितीय वलय प्रारम्भ

भोग वा उपभोग में वांछा भई, त्याग के भाव में मलिनता हुई।
मैं नमुं मैं नमुं मैं नमुं देव को, अतिक्रम त्याग की परिणति भई।।१।।

ॐ ह्रीं चतुरशीतिलक्षोत्तरगुण प्राप्ताय अतिक्रमदोष रहिताय जलाद्यर्घं निर्व. स्वाहा। (२३)

भावना उल्लंघ कर और आगे बढ़े, वस्तु प्राप्तकर व्यतिक्रम कर गये।
मैं नमुं मैं नमुं मैं नमुं देव को, व्यतिक्रम त्याग को कटिबद्ध हो गये।।२।।

ॐ ह्रीं चतुरशीतिलक्षोत्तरगुण प्राप्ताय व्यतिक्रमदोष रहिताय जलाद्यर्घं निर्व. स्वाहा। (२४)

भोग वा उपभोग को इक वार भोगिया, अतिचार दोष जिनवर ने कह दिया।
मैं नमुं मैं नमुं मैं नमुं देव को, अतिचार दोष त्याग को मन बना लिया।।३।।

ॐ ह्रीं चतुरशीतिलक्षोत्तरगुण प्राप्ताय श्रीअतिचारदोष रहिताय जलाद्यर्घं निर्व. स्वाहा।(२५)

भोग वासना में जब लवलीन हो गया, अनाचार यह परिणाम दोष हो गया।
मैं नमुं मैं नमुं मैं नमुं देव को, मार्दव भाव से अनाचार यह सदाचार बन गया।।४।।

ॐ ह्रीं चतुरशीतिलक्षोत्तरगुण प्राप्ताय अनाचार दोष रहिताय जलाद्यर्घं निर्व. स्वाहा। (२६)

समुच्चय अर्घ

अति व्यतिक्रम दोष है, अतिचार जो नाम।
अनाचार का त्याग कर पहुंचूं शिवपुर धाम।।

ॐ ह्रीं चतुरशीतिलक्षोत्तरगुण प्राप्ताय श्री चतुर्गुण पूर्णार्घं निर्वपामीति स्वाहा। (२७)

तृतीय वलय चौपाई छन्द

सोना चांदी हीरा खान, खोदत पाप लगे तुम मान।
इनको छोड़े कर्म नशाय, तिन पद पूजों मन हर्षाय।।१।।

ॐ ह्रीं चतुरशीतिलक्षोत्तरगुण प्राप्तये पृथ्वीकायिकजीव रक्षणाय जलाद्यर्घं निर्व. स्वाहा। (२८)

ओला बर्फ ओस सब जान, अपकायिक की दया प्रधान।
इनको छोड़े कर्म नशाय, तिन पद पूजों मन हर्षाय।।२।।

ॐ ह्रीं चतुरशीतिलक्षोत्तरगुण प्राप्तये अपकायिकजीव रक्षणाय जलाद्यर्घं निर्व. स्वाहा। (२९)

अग्नि सताई अति दुःखकार, तजो भाव मन सोच विचार।
इनको छोड़े कर्म नशाय, तिन पद पूजों मन हर्षाय।।३।।

ॐ ह्रीं चतुरशीतिलक्षोत्तरगुण प्राप्तये अग्निकायिकजीव रक्षणाय जलाद्यर्घं निर्व. स्वाहा। (३०)

पंखा ढोरे देह विचार, याको लख अघ मन परिहार।
इनको छोड़े कर्म नशाय, तिन पद पूजों मन हर्षाय।।४।।

ॐ ह्रीं चतुरशीतिलक्षोत्तरगुण प्राप्तये श्रीवायुकायिकजीव रक्षणाय जलाद्यर्घं निर्व. स्वाहा (३१)

वट अरु वृक्ष वनस्पति मान, इनकी रक्षा करो सुजान।
इनको छोड़े कर्म नशाय, तिन पद पूजों मन हर्षाय।।५।।

ॐ ह्रीं चतुरशीतिलक्षोत्तरगुण प्राप्तये प्रत्येकवनस्पतिकायिक. रक्षणाय जला. स्वाहा (३२)

कंदमूल साधारण जान, पाप मूल है अघ की खान।
इनको छोड़े कर्म नशाय, तिन पद पूजों मन हर्षाय।।६।।

ॐ ह्रीं चतुरशीतिलक्षोत्तरगुण प्राप्तये साधारणवनस्पतिकायिकजीव रक्षणाय जलाद्यर्घं.. स्वाहा। (३३)

पद्धरि छन्द

दो इंद्रिय हैं वो सब जो जीव, करिये करुणा तिनकी सदीव।
इनकी रक्षा कर मन विचार, रखिये सद्दृष्टि कर सुविचार।।७।।

ॐ ह्रीं चतुरशीतिलक्षोत्तरगुण प्राप्तये श्री द्वींद्रिय जीव रक्षणाय जलाद्यर्घं निर्व. स्वाहा। (३४)

त्री इंद्रिय जीव सुजान मान, प्राणी विचरे भुविजग प्रधान।
चारित्र धरो धर हृदयप्रीत, काया वच दोष हरो पुनीत।।८।।

ॐ ह्रीं चतुरशीतिलक्षोत्तरगुण प्राप्तये त्रींद्रिय जीव रक्षणाय जलाद्यर्घं निर्वपामीति स्वाहा। (३५)

जन्तु चौइंद्रिय धारि जान, करिये सुदया धर हृदय मान।
करुणा धारो तुम चित्त उदार, यह व्रत धर होवे सिंधु पार।।९।।

ॐ ह्रीं चतुरशीतिलक्षोत्तरगुण प्राप्तये चौइंद्रियजीव रक्षणाय जलाद्यर्घं निर्वपामीति स्वाहा। (३६)

पंचेंद्रिय का तजिए सुदोष, मन मांहि धरो किंचित् न रोष।
तिनको समझो मनकर सुजान, इन पर सुदया धारो महान।।१०।।

ॐ ह्रीं चतुरशीतिलक्षोत्तरगुण प्राप्तये पंचेंद्रिय जीव रक्षणाय जलाद्यर्घं निर्वपामीति स्वाहा। (३७)

चौपाई

पृथ्वी जल अग्नि अरु वायु, बीज हरित व त्रस पर्याय।
याको त्याग भावना भाव, समता धर लेवे मुनिराय।।११।।

ॐ ह्रीं चतुरशीतिलक्षोत्तरगुण प्राप्तये दशधा जीव रक्षणाय जलाद्यर्घं निर्वपामीति स्वाहा। (३८)

चौथा वलय चामर छन्द

क्षमादि सू मित्रसार साथ नहीं त्यागता,
क्रोध रूप अग्नि को सुमेघ सम बुझावता।
सर्वधर्म पान हेतु भावना सुभाइये,
मुक्तिधाम पाय के सुनिर्विकल्प हूजिये।।१।।

ॐ ह्रीं चतुरशीतिलक्षोत्तरगुण प्राप्तये उत्तमक्षमा धर्मांगाय नमः जलाद्यर्घं निर्व. स्वाहा। (३९)

धार मान भाव को ज्ञान को नशावता,
धार साम्य भाव सू मार्दव प्रगटावता।
सर्व धर्म पान हेतु भावना सुभाइये,
मुक्तिधाम पाय के सुनिर्विकल्प हूजिये।।२।।

ॐ ह्रीं चतुरशीतिलक्षोत्तरगुण प्राप्तये उत्तममार्दव धर्मांगाय नमः जलाद्यर्घं नि.स्वाहा। (४०)

मायाचार पालकर आत्म गुण न पावते,
धार निष्कपट भाव धर्म को विचारते।
सर्वधर्म पान हेतु भावना सुभाइये,
मुक्तिधाम पाय के सुनिर्विकल्प हूजिये।।३।।

ॐ ह्रीं चतुरशीतिलक्षोत्तरगुण प्राप्तये उत्तमार्जव धर्मांगाय नमः जलाद्यर्घं निर्व. स्वाहा। (४१)

मिले भोग पुन्य से उसी में तुष्टि धारते,
लोभ भाव को सुजीत राग द्वेष टारते।
सर्वधर्म पान हेतु भावना सुभाइये,
मुक्तिधाम पाय के सुनिर्विकल्प हूजिये।।४।।

ॐ ह्रीं चतुरशीतिलक्षोत्तरगुण प्राप्तये उत्तमशौच धर्मांगाय नमः जलाद्यर्घं निर्व. स्वाहा। (४२)

धर्म सत्य शरण यही जीव को सम्हारता,
भक्ति धर्म जो करै अनन्त ज्ञान पावता।
सर्वधर्म पान हेतु भावना सुभाइये,
मुक्तिधाम पाय के सुनिर्विकल्प हूजिये।।५।।

ॐ ह्रीं चतुरशीतिलक्षोत्तरगुण प्राप्तये उत्तमसत्य धर्मांगाय नमः जलाद्यर्घं निर्व.स्वाहा। (४३)

नाथ संयम धरूं वर्तमान काल में,
ज्ञान उत्सव वरूं इंद्रिय भोग टाल के।
सर्वधर्म पान हेतु भावना सुभाइये।
मुक्तिधाम पाय के सुनिर्विकल्प हूजिये।।६।।

ॐ ह्रीं चतुरशीतिलक्षोत्तरगुण प्राप्तये उत्तम संयम धर्मांगाय जलाद्यर्घं निर्व. स्वाहा। (४४)

भाव तप है महान आत्म का सुख मिले
अनशनादि भाव से सर्व दुःख भी टले।।७।। सर्वधर्म....

ॐ ह्रीं चतुरशीतिलक्षोत्तरगुण प्राप्तये उत्तम तप धर्मांगाय जलाद्यर्घं निर्व. स्वाहा। (४५)

त्याग धर्म है महान आप नित्य कीजिये,
न जीव घात होन देत पाय ध्यान कीजिये।
सर्वधर्म पान हेतु भावना सुभाइये,
मुक्तिधाम पाय के सुनिर्विकल्प हूजिये।।८।।

ॐ ह्रीं चतुरशीतिलक्षोत्तरगुण प्राप्तये उत्तम त्याग धर्मांगाय जलाद्यर्घं निर्व. स्वाहा। (४६)

त्याग अंतरंग संग साम्यरस पीजिये,
अंतरंग शुद्ध भाव पूर्ण लाभ लीजिये।
सर्वधर्म पान हेतु भावना सुभाइये,
मुक्तिधाम पाय के सुनिर्विकल्प हूजिये।।९।।

ॐ ह्रीं चतुरशीतिलक्षोत्तरगुण प्राप्तये उत्तमाकिंचन्य धर्मांगाय जलाद्यर्घं निर्व. स्वाहा। (४७)

ब्रह्मचर्य है महान धार शील पालिए,
काष्ठ नर देवतिर्यग् न भामिनी विचारिये।
सर्वधर्म पान हेतु भावना सुभाइये।
मुक्तिधाम पाय के सुनिर्विकल्प हूजिये।।१०।।

ॐ ह्रीं चतुरशीतिलक्षोत्तरगुण प्राप्तये उत्तम ब्रह्मचर्य धर्मांगाय जलाद्यर्घं निर्व. स्वाहा। (४८)

समुच्चय अर्घ

धत्ता

भव भ्रमण मिटावे शरण दिलावे, धर्म वही है सुखकारी।
देवे सुख साता पाप मिटाता, मोक्ष दिखाता अविकारी।।११।।

ॐ ह्रीं चतुरशीतिलक्षोत्तरगुण प्राप्तये श्री उत्तमक्षमादि धर्मांगाय नमः जला. निर्व.स्वाहा (४९)

पंचम वलय रोला छन्द

प्रिय नारी मधुवैन सुनत मन आनन्द पावे,
तथा उन्हीं में राग धार व्रत ब्रह्म गमावे।
यति इसे अघ जान तुरत त्यागो मन वच से,
परम शुद्ध व्रत शील जानि समज्योति जगा के।।१।।

ॐ ह्रीं चतुरशीतिलक्षोत्तरगुण प्राप्तये स्त्री संसर्ग दोष रहिताय जलाद्यर्घं निर्व. स्वाहा। (५०)

वृष्येष्ट भोजन करै उसे यह काम सतावे,
कामाविष को त्याग राग की आग बुझावे।

यति इसे अघ जान तुरत त्यागो मन वच से,
परम शुद्ध व्रत शील जानि समज्योति जगा के।।२।।

ॐ ह्रीं चतुरशीतिलक्षोत्तरगुण प्राप्तये प्रणीतरसभोजन त्यागाय जलाद्यर्घं निर्व. स्वाहा (५१)

गंधमालादिक से नारी तन को खूब सजावे,
धरे हृदय अनुराग वही दोषी कहलावे।
यति इसे अघ जान तुरत त्यागो मन वच से,
परम शुद्ध व्रत शील जानि समज्योति जगा के।।३।।

ॐ ह्रीं चतुरशीतिलक्षोत्तरगुण प्राप्तये गंधादिक दोष रहिताय जलाद्यर्घं निर्व. स्वाहा। (५२)

नारी की कोमल शैय्या पर आ आसन पर जो बैठे,
धारै विषय कषाय पाप जो विकृति से वह न छूटै।
यति इसे अघ जान तुरत त्यागो मन वच से,
परम शुद्ध व्रत शील जानि समज्योति जगा के।।४।।

ॐ ह्रीं चतुरशीतिलक्षोत्तरगुण प्राप्तये शयनासन दोष रहिताय जलाद्यर्घं निर्व. स्वाहा। (५३)

सुन्दर रूप शृंगार नैन मन हर्ष न धरिये,
नेत्रेन्द्रिय यह विषय उसे विकृत नहिं करिये।
यति इसे अघ जान तुरत त्यागो मन वच से,
परम शुद्ध व्रत शील जानि समज्योति जगा के।।५।।

ॐ ह्रीं चतुरशीतिलक्षोत्तरगुण प्राप्तये शरीरशृंगार दोष रहिताय जलाद्यर्घं निर्व. स्वाहा। (५४)

गीत नृत्य नारी तन देखत मत न राग धराओ,
यह तो कर्ण विषय इसे मत विषम बनाओ।
यति इसे अघ जान तुरत त्यागो मन वच से,
परम शुद्ध व्रत शील जानि समज्योति जगा के।।६।।

ॐ ह्रीं चतुरशीतिलक्षोत्तरगुण प्राप्तये गीतनृत्यादिदोष रहिताय जलाद्यर्घं निर्व. स्वाहा। (५५)

सोना चांदी हीरा पहिने देख नारी मन हरिये,
ये सब अघ के मूल जान जन इन्हें न करिये।
यति इसे अघ जान तुरत त्यागो मन वच से,
परम शुद्ध व्रत शील जानि समज्योति जगा के।।७।।

ॐ ह्रीं चतुरशीतिलक्षोत्तरगुण प्राप्तये सुवर्णादिकसंगदोष रहिताय जलाद्यर्घं निर्व.स्वाहा (५६)

वेश्या अरु पर नारी के संग गुह्य अंग से रमना,
यह सब कुत्सित भाव त्याग व्रत निर्मल करना।

यति इसे अघ जान, तुरत त्यागो मन वच से,
परम शुद्ध व्रत शील जानि समज्योति जगा के।।८।।

ॐ ह्रीँ चतुरशीतिलक्षोत्तरगुण प्राप्तये कुशीलसंसर्गदोष रहिताय जला. निर्व. स्वाहा। (५७)

इंद्रिय के भोगों के कारण राजा की सेवा करता,
भोग दोष अरु राग त्याग कर शील भाव शुद्ध करता।
यति इसे अघ जान तुरत त्यागो मन वच से,
परम शुद्ध व्रत शील जानि समज्योति जगा के।।९।।

ॐ ह्रीँ चतुरशीतिलक्षोत्तरगुण प्राप्तये श्री राजसेवादोष रहिताय जलाद्यर्घं निर्व. स्वाहा। (५८)

स्त्री राग के कारण तुम तो रात्रि विचरण मत करियो,
उसके प्रति तुम राग धार को अपने धरम को मत हरियो।
यति इसे अघ जान तुरत त्यागो मन वच से,
परम शुद्ध व्रत शील जान समज्योति जगा के।।१०।।

ॐ ह्रीँ चतुरशीतिलक्षोत्तरगुण प्राप्तये रात्रिविचरणदोष रहिताय जलाद्यर्घं निर्व. स्वाहा। (५९)

स्त्री संसर्ग प्रणीत रस भोजन, गंधमालादिक शयनासन,
भूषण रात्री गीत अर्थ संग, राज सेवा और कुत्सित अंग।
दोहा- यह सब दोष निवारिये नरतिय राग धराय,
देव नारी सुन्दर निरख तजो वृथा अनुराग।।११।।

ॐ ह्रीँ चतुरशीतिलक्षोत्तरगुण प्राप्तये स्त्रीसंसर्गादिदशदोष रहिताय जला. निर्व.स्वाहा। (६०)

छठवां वलय

आलोचना के दशभेद पद्धरिछंद

मोहक कारक धन गुरु को दे, संतुष्ट उन्हें मैं कर दूंगा,
इन भावों से प्रायश्चित्त ले, आकंपित दोष अनिष्ट भरा।
गुरुवर तो हरते जगत ताप, सब जग का करते नाश पाप,
इस धर्म से होते जग सनाथ, सब जन नित नमते नमां माथ।।१।।

ॐ ह्रीँ चतुरशीतिलक्षोत्तरगुण प्राप्तये श्री आकंपितदोष रहिताय जला. निर्व. स्वाहा। (६१)

है वात पित्त का रोग मुझे, उपवास अधिक नहीं कर सकता,
थोड़ा प्रायश्चित्त मिल जावे, अनुमानित इसे दोष कहता।
गुरुवर तो हरते जगत ताप, सब जग का करते नाश पाप,
इस धर्म से होते जग सनाथ, सब जन नित नमते नमां माथ।।२।।

ॐ ह्रीँ चतुरशीतिलक्षोत्तरगुण प्राप्तये श्री अनुमानितदोष रहिताय जला. निर्व. स्वाहा। (६२)

वह देखे दोषों को कहता विन देखे दोष छिपा लेता,
उस दोष को दृष्ट दोष कहा, जो मन में दोष दबा लेता।

गुरुवर तो हरते जगत ताप, सब जग का करते नाश पाप,
इस धर्म से होते जग सनाथ, सब जन नित नमते नमां माथ।।३।।

ॐ ह्रीं चतुरशीतिलक्षोत्तरगुण प्राप्तये श्री दृष्ट दोष रहिताय जलाद्यर्घं निर्व. स्वाहा। (६३)

जो तुच्छ दोष को छिपा लिया, अरु बादर दोष को बता दिया,
इस अशुभ भाव से किया पाप, इससे बढ़ता संसार ताप।
गुरुवर तो हरते जगत ताप, सब जग का करते नाश पाप,
इस धर्म से होते जग सनाथ, सब जन नित नमते नमां माथ।।४।।

ॐ ह्रीं चतुरशीतिलक्षोत्तरगुण प्राप्तये श्री बादरदोष रहिताय जलाद्यर्घं निर्व. स्वाहा। (६४)

अरे अयस्कीर्ति से डर करके, फिर बादर दोष को छिपा लिया,
सूक्ष्म दोष को प्रकट किया, तो मायाचार से पाप किया।
गुरुवर तो हरते जगत ताप, सब जग का करते नाश पाप,
इस धर्म से होते जग सनाथ, सब जन नित नमते नमां माथ।।५।।

ॐ ह्रीं चतुरशीतिलक्षोत्तरगुण प्राप्तये श्री सूक्ष्म दोष त्यागाय जलाद्यर्घं निर्व. स्वाहा। (६५)

अपनी अयस्कीर्ति से डर करके, अतिचारों को पूंछा करता,
अपने से प्रायश्चित्त ले लेता, वह छन्न दोष को वर लेता।
गुरुवर तो हरते जगत ताप, सब जग का करते नाश पाप,
इस धर्म से होते जग सनाथ, सब जन नित नमते नमां माथ।।६।।

ॐ ह्रीं चतुरशीतिलक्षोत्तरगुण प्राप्तये श्री छन्न दोष त्यागाय जलाद्यर्घं निर्व. स्वाहा। (६६)

समुदाय गुरु का जहाँ रहा, प्रायश्चित्त वहाँ ही कर रहा,
गुरु के कानों तक शब्द नहीं, वह शब्दाकुलित है दोष यही।
गुरुवर तो हरते जगत ताप, सब जग का करते नाश पाप,
इस धर्म से होते जग सनाथ, सब जन नित नमते नमां माथ।।७।।

ॐ ह्रीं चतुरशीतिलक्षोत्तरगुण प्राप्तये श्रीशब्दाकुलितदोष त्यागाय जला. निर्व. स्वाहा। (६७)

जो गुरु ने प्रायश्चित्त दिया, शिष्यों ने निर्णय नहीं लिया,
फिर अन्य गुरु से तो पूंछा, उस दोष को बहुजन दोष कहा।
गुरुवर तो हरते जगत ताप, सब जग का करते नाश पाप,
इस धर्म से होते जग सनाथ, सब जन नित नमते नमां माथ।।८।।

ॐ ह्रीं चतुरशीतिलक्षोत्तरगुण प्राप्तये श्री बहुजनदोष त्यागाय जलाद्यर्घं निर्व.स्वाहा। (६८)

जो मुनि आगम को न जाने उससे अपने सब दोष कहे,
आचार्यों से वह छिपा लिया, अव्यक्त दोष वह बना लिया।

गुरुवर तो हरते जगत ताप, सब जग का करते नाश पाप,
इस धर्म से होते जग सनाथ, सब जन नित नमते नमां माथ।।९।।

ॐ ह्रीं चतुरशीतिलक्षोत्तरगुण प्राप्तये श्री अव्यक्त दोष त्यागाय जलाद्यर्घं निर्व. स्वाहा। (६९)

पर मुनियों के अतिचारों को, अपने अतिचारों के सम हो,
प्रायश्चित्त अपने आप किया, तत्सेवी दोष को प्राप्त किया।
गुरुवर तो हरते जगत ताप, सब जग का करते नाश पाप,
इस धर्म से होते जग सनाथ, सब जन नित नमते नमां माथ।।

ॐ ह्रीं चतुरशीतिलक्षोत्तरगुण प्राप्तये श्री तत्सेवीदोष त्यागाय जलाद्यर्घं निर्व. स्वाहा। (७०)

दोहा

आकंपित अनुमानित, दृष्ट बादर सूक्ष्म।
छन्न शब्दाकुल बहुजन अव्यक्त तत्सेवी दोष।।

ॐ ह्रीं चतुरशीतिलक्षोत्तरगुण प्राप्तये श्रीआकंपितादिदोष त्यागाय जला. निर्व. स्वाहा (७१)

सातवां वलय

<u>प्रायश्चित्त के दशभेद चालशेष</u>

पंच महाव्रत में यदि दोष लग रहा,
आलोचना विना न संवर और निर्जरा।
गुरुदेव आप ज्ञानदाता धन्य जगत में,
हम अर्घ दें पूजें उन्हें भव भव में ना भ्रमें।।१।।

ॐ ह्रीं चतुरशीतिलक्षोत्तरगुण प्राप्तये श्रीआलोचनादोष रहिताय जला. निर्व. स्वाहा। (७२)

दिनरात के व्रतों में अतिचार लग रहा,
निन्दा ओ गर्हा करके प्रतिक्रमण कर रहा।
गुरुदेव आप ज्ञानदाता धन्य जगत में,
हम अर्घ दें पूजें उन्हें भव भव में ना भ्रमें।।२।।

ॐ ह्रीं चतुरशीतिलक्षोत्तरगुण प्राप्तये श्रीप्रतिक्रमणप्रायश्चित्ताय जला. निर्व. स्वाहा। (७३)

आलोचना प्रतिक्रमण से जो दोष नश रहा,
निर्दोषता प्रकट करै उभय रूप कह रहा।
गुरुदेव आप ज्ञानदाता धन्य जगत में,
हम अर्घ दें पूजें उन्हें भव भव में ना भ्रमें।।३।।

ॐ ह्रीं चतुरशीतिलक्षोत्तरगुण प्राप्तये श्री उभय प्रायश्चित्ताय जलाद्यर्घं निर्व. स्वाहा। (७४)

द्रव्यक्षेत्र अन्न पान यम नियम ले लिया,
विवेक से उसे न कभी प्राप्त मैं किया।

गुरुदेव आप ज्ञानदाता धन्य जगत में,
हम अर्घ दें पूजे उन्हें भव भव में ना भ्रमें।।४।।

ॐ ह्रीं चतुरशीतिलक्षोत्तरगुण प्राप्तये श्री विवेक प्रायश्चित्ताय जलाद्यर्घं निर्व. स्वाहा। (७५)

दुर्ध्यान नदी पार अरु मार्ग में चलना,
उस दोष से बचने को व्युत्सर्ग भी करना।
गुरुदेव आप ज्ञानदाता धन्य जगत में,
हम अर्घ दें पूजें उन्हें भव भव में ना भ्रमें।।५।।

ॐ ह्रीं चतुरशीतिलक्षोत्तरगुण प्राप्तये श्री व्युत्सर्गप्रायश्चित्ताय जलाद्यर्घं निर्व. स्वाहा। (७६)

निर्दोषव्रत पालने गुरु ने तप बता दिया,
उपवास या रस त्याग ऊनोदर करा लिया।
गुरुदेव आप ज्ञानदाता धन्य जगत में,
हम अर्घ दें पूजें उन्हें भव भव में ना भ्रमें।।६।।

ॐ ह्रीं चतुरशीतिलक्षोत्तरगुण प्राप्तये श्री तप प्रायश्चित्ताय जलाद्यर्घं निर्वण स्वाहा। (७७)

मुनि शूरवीर मान से व्रत दोष लगाया,
मासादि वा वर्षादि का व छेद कराया।
गुरुदेव आप ज्ञानदाता धन्य जगत में,
हम अर्घ दें पूजें उन्हें भव भव में ना भ्रमें।।७।।

ॐ ह्रीं चतुरशीतिलक्षोत्तरगुण प्राप्तये श्रीएकदेश छेदप्रायश्चित्ताय जला. निर्व.स्वाहा। (७८)

कुशीलादि मुनि ब्रह्मचर्य घात कर दिया,
सम्पूर्ण दीक्षा छेद मूल नाम दे दिया।
गुरुदेव आप ज्ञानदाता धन्य जगत में,
हम अर्घ दें पूजें उन्हें भव भव में ना भ्रमें।।८।।

ॐ ह्रीं चतुरशीतिलक्षोत्तरगुण प्राप्तये श्री मूलछेदप्रायश्चित्ताय जलाद्यर्घं निर्व. स्वाहा। (७९)

पंच महाव्रतों में महादोष लगाया,
निर्दोष बनने को परिहार बताया।
गुरुदेव आप ज्ञानदाता धन्य जगत में,
हम अर्घ दें पूजें उन्हें भव भव में ना भ्रमें।।९।।

ॐ ह्रीं चतुरशीतिलक्षोत्तरगुण प्राप्तये श्री परिहार प्रायश्चित्ताय जलाद्यर्घं निर्व. स्वाहा। (८०)

कुसंग के संसर्ग से मिथ्यात्व धर लिया,
आज्ञाविचय सम्यक्त्व का श्रद्धान कर लिया।

गुरुदेव आप ज्ञानदाता धन्य जगत में,
हम अर्घ दें पूजें उन्हें भव भव में ना भ्रमें।।१०।।

ॐ ह्रीं चतुरशीतिलक्षोत्तरगुण प्राप्तये श्री श्रद्धान प्रायश्चित्ताय जलाद्यर्घं निर्व. स्वाहा। (८१)

दोहा- आलोचन प्रतिक्रमण उभय विवेक और व्युत्सर्ग।
तप छेदो मूला प्रभु परिहारो श्रद्धा वर्ग।।११।।

ॐ ह्रीं चतुरशीतिलक्षोत्तरगुण प्राप्तये श्रीआलोचनादि प्रायश्चित्ताय जला. निर्व. स्वाहा (८२)

लख चौरासी उत्तर गुण की करी प्रतिज्ञा मनमांहि।
तदनुकूल तप ध्यान साधना करके पाऊं चेतन में।।
घातिकर्म विनाश किया तब थी वस्था श्रुतज्ञानी की।
अघाति कर्म विध्वंस किया प्रभु अयोगी केवलज्ञानीजी।।१२।।

ॐ ह्रीं चतुरशीतिलक्षोत्तरगुण प्राप्तये श्री अयोगिकेवलिने नमः जलाद्यर्घं निर्व. स्वाहा। (८३)

सब कर्मों को नष्ट कर हुए सिद्ध भगवान।
मन वच तन से मैं नमूं पाऊं सिद्ध महान।।१३।।

ॐ ह्रीं चतुरशीतिलक्षोत्तरगुण प्राप्तये श्री सिद्ध परमेष्ठिने नमः जलाद्यर्घं निर्व. स्वाहा। (८४)

सब दोषों को दूरकर पूजें सब प्रतिपाल।
भाव सहित पूजन करी आगे रचूं जयमाल।।

जयमाला (भुजंग प्रयातं) छन्द

गुरु अर्चना ही सदा सौख्यवृन्दा, निवारे भलीभांति सब कर्म फन्दा।
त्रयोदश प्रकार सुचारित्र व्रतपाला, अहिंसा, महासत्य अस्तेय व्रत प्यारा।।
परम ब्रह्मचर्य परिग्रह त्याग बताया, क्रोधादि आश्रित दोष को दूर भगाया।
अरति दोष प्रीति सदा भय को भगाऊं, मनोवचकाया जुगुप्सा को नशाऊं।।
मिथ्यात्व वा कषाय प्रमाद को जीता, पैशुन्य वा अज्ञान इंद्रिय विजेता।
अतिक्रम व व्यतिक्रम को मूल नशाऊं, अतिचार अनाचार मन से भगाऊं।।
सभी जीव रक्षा जगत में जो नर पाले, क्षमाधर्म वस्तु से मल को निकाले।
शील के दश दोषों को भी टाले, आकंपितादि दोष दश को सम्हाले।
आलोचना के सभी दोष विनाशे, धर्मध्यान से अपनी आत्मा भाषे।
धरे साम्यभाव रहे लीन निज में, सुचारित्र निश्चय धरे शुद्ध मन में।
शुक्लध्यान आतम पाप मोह नाशा, जजे हम यतन से स्व आत्मप्रकाशा।
हमेशा हि ज्योति जो चन्द्र प्रकाशे, रहे दक्षता अपने आत्म विकाशे।

दोहा- लोकालोक प्रकाश कर, केवल ज्ञान विशाल।
चन्द्रमति गुण साधकर, पावे मुक्ति रशाल।।

ॐ ह्रीं चतुरशीतिलक्षोत्तरगुण प्राप्तये श्री जयमाला पूर्णार्घं निर्वपामीति स्वाहा।

धत्ता- जय परम रसाला गुण मणिमाला, आतमध्यान विशुद्ध करुं।
पाऊं सुख संपति सब गुण मंडित, देव शास्त्र गुरु नमन करूं।।

इत्याशीर्वाद पुष्पांजलिं क्षिपेत्।

उत्तरगुण आरती

ॐ जय उत्तरगुण देवा, ॐ जय उत्तरगुण देवा।टेक।।
नाम तुम्हारा गुण है शुद्ध बुद्ध देवा स्वामी शुद्ध बुद्ध देवा
नित प्रति करते चिंतन, सुर नर मुनि सेवा। ? जय
गणना तुम्हारी नंता आगम बतलावे.....स्वामी आगम बतलावे।
रूप तुम्हारा जैसा ध्याता मन लावे। ॐ जय....
ध्याता के चिंतन से, मोहरि भग जावे..... स्वामी मोहरि भाग जावे।
ध्याता परिणत होकर, शाश्वत सुख पावे। ॐ जय.....
गुण हैं शाश्वत रूपा, अनादि नाम पावे.....स्वामी अनादि नाम पावे।
नैमित्तिक गुण जो हैं, सादि नाम पावे। ॐ जय .....
लख चौरासी गुण हैं, नैमित्तिक भाई- हैं नैमित्तिक भाई।
नाना भंग जो बनते, चिंतन से भाई। ॐ जय.....
विमल सिंधु के अंते, वासी हैं पारस- स्वामी वासी हैं पारस।
उनका प्रिय है वासु, जयगुरु हे पारस। ॐ जय.....

समाप्त

ईंधन में भेद होने पर भी अग्नि में अंतर नहीं होता है ऐसे ही दिगंबर मुनियों के क्षेत्र की, आयु की शिक्षा दीक्षा की, शरीर के आकार आदि में भेद होने पर भी दिनचर्या में, प्रतिज्ञा पालन में अंतर नहीं होना चाहिये।

दिगम्बर जैनों में जितने भी पंथ भेद हैं नाना प्रकार की परंपरायें हैं ये सभी सर्वज्ञ प्रणीत न होने से श्रद्धान, ज्ञान और आचरण करने योग्य नहीं हैं क्योंकि जिनेन्द्र प्रणीत मार्ग में ही गमन करने से मोक्षमार्ग और मोक्ष की प्राप्ति होती है अन्यथा नहीं।

संकेतार्थ सूची

१. अहिंसाव्रत :- सावधानी से स्व पर और उभय के प्राणों की रक्षा करने को अहिंसाव्रत कहते हैं।
२. सत्यव्रत- सम्यक्रत्नत्रय पूर्वक वस्तु के यथानुरूप वचन को सत्यव्रत कहते हैं।
३. अचौर्यव्रतः- सम्यक्रत्नत्रय पूर्वक परवस्तु के ग्रहण के त्याग को अचौर्यव्रत कहते हैं।
४. ब्रह्मचर्यव्रतः- सम्यक्रत्नत्रय पूर्वक शुद्धात्म स्वभाव में स्थिर होने को ब्रह्मचर्य व्रत कहते हैं।
५. अपरिग्रहव्रतः- सम्यक्रत्नत्रय पूर्वक परपदार्थों में ममकार के त्याग को अपरिग्रहव्रत कहते हैं।
६. क्रोध त्यागः- असहनशीलता के त्याग को क्रोधत्याग कहते हैं।
७. मान त्यागः- अहंकार के त्याग को मानत्याग कहते हैं।
८. माया त्यागः- कुटिलता के त्याग को माया त्याग कहते हैं।
९. लोभ त्यागः- पर पदार्थों में आकर्षणभाव के त्याग को लोभत्याग कहते हैं।
१०. भय त्यागः- अपने आपको कमजोर समझकर कम्पन भाव के त्याग को भयत्याग कहते हैं।
११. अरतित्यागः- परपदार्थों में अप्रीति के त्याग को अरतित्याग कहते हैं।
१२. रति त्यागः- परपदार्थों में प्रीति के त्याग को रतित्याग कहते हैं।
१३. जुगुप्सात्यागः- परपदार्थों के प्रति ग्लानि के त्याग को जुगुप्सात्याग कहते हैं।
१४. मनोमंगुलत्यागः- मोक्षमार्ग के विरोधी पाप रूप भावों के त्याग को मनोमंगुलत्याग कहते हैं।
१५. वचनमंगुलत्यागः- मोक्षमार्ग विरोधी वचन संबंधी पापों के त्याग को वचनमंगुल त्याग कहते हैं।
१६. कायमंगुलत्यागः- पापवर्धक शरीर की क्रियाओं के त्याग को कायमंगुलत्याग कहते हैं।
१७. मिथ्यादर्शनत्यागः- मोक्षमार्ग और देवशास्त्रगुरु के अश्रद्धानत्याग को मिथ्यादर्शनत्याग कहते हैं।
१८. प्रमादत्यागः- संयम में अनुत्साह के त्याग को प्रमादत्याग कहते हैं।
१९. पिशुनतात्यागः- चुगलखोरी के त्याग को पिशुनतात्याग कहते हैं।
२०. अज्ञानत्यागः- अविवेकता के, अजानकारी के त्याग को अज्ञानत्याग कहते हैं।
२१. इंद्रिय जयः-विषयाभिलाषा और विषयाभिलाषा की आधीनता के त्याग को इंद्रियजय कहते हैं।
२२. अतिक्रमत्यागः- संयत का विषयों के प्रति आकांक्षा के त्याग को अतिक्रमत्याग कहते हैं।
२३. व्यतिक्रमत्यागः- विषयों की आकांक्षा के साथ सामग्री के त्याग को व्यतिक्रमत्याग कहते हैं।
२४. अतिचारत्यागः- व्रतों में शिथिलता के, किंचित् विषयसेवन के त्याग को अतिचारत्याग कहते हैं।
२५. अनाचार त्यागः- स्वच्छन्द आचार विचार के संपूर्ण त्याग को अनाचार त्याग कहते हैं।
२६. भूमिरक्षाः- पूर्ण रूप से पृथ्वीकायिक जीवों की रक्षा करने को भूमिरक्षा कहते हैं।
२७. जलरक्षाः- पूर्ण रूप से जलकायिक जीवों की रक्षा करने को जलकायिक रक्षा कहते हैं।
२८. अग्निरक्षाः- पूर्ण रूप से अग्निकायिक जीवों की रक्षा करने को अग्निकायिक रक्षा कहते हैं।
२९. वायुरक्षाः- पूर्ण रूप से वायुकायिक जीवों पर दया करने को वायुकायिक रक्षा कहते हैं।
३०. प्रत्येक वनस्पतिकायिक जीव की रक्षाः- एक जीव के स्वामी स्वरूप वनस्पति की रक्षा करने को प्रत्येक वनस्पतिकायिक जीव रक्षा कहते हैं।
३१. साधारण वनस्पतिकायिक जीव की रक्षाः- अनन्त जीवों के पिंड स्वरूप वनस्पति की रक्षा करने को साधारण वनस्पतिकायिक जीव रक्षा कहते हैं।
३२. द्वींद्रियजीव की रक्षा :- स्पर्शन और रसनेंद्रिय वालों की रक्षा करने को द्वींद्रियजीव रक्षा कहते हैं।
३३. त्रींद्रिय जीव की रक्षा :- त्रींद्रिय जीव की विराधना नहीं करने को त्रींद्रिय जीव रक्षा कहते हैं।

३४. चौ इंद्रिय जीव की रक्षा - चौइंद्रिय जीव की रक्षा करने को चौइंद्रिय जीव रक्षा कहते हैं।
३५.पंचेंद्रियजीव की रक्षा - पंचेंद्रिय जीव की विराधना नहीं करने को पंचेंद्रिय जीव रक्षा कहते हैं।
३६. क्षमा धर्म- क्रोध नहीं करने को या क्रोधाभाव को क्षमाधर्म कहते हैं।
३७. मार्दव धर्म- अहंकार नहीं करने को या मानाभाव को मार्दव धर्म कहते हैं।
३८. आर्जव धर्म- छल कपट नहीं करने को या माया के अभाव को आर्जव धर्म कहते हैं।
३९. शौचधर्म- ममकार के त्याग को या पूर्ण पवित्रता को शौचधर्म कहते हैं।
४०. सत्यधर्म-यथार्थ वचन को अथवा वस्तु रूप से परिणत होने को सत्यधर्म कहते हैं।
४१. संयमधर्म- कछुवे के समान इंद्रिय और मन को बाह्यसंचार से रोकने को संयम धर्म कहते हैं।
४२. तपधर्म- कर्मों के क्षय के कारणभूत परिणामों को तप धर्म कहते हैं।
४३. त्यागधर्मः- विषय कषायों के और सामग्री के त्याग को त्याग धर्म कहते हैं।
४४. आकिंचन्य धर्म-: परपदार्थ मेरे किंचित् मात्र भी नहीं हैं ऐसे भावों को आकिंचन्यधर्म कहते हैं।
४५. ब्रह्मचर्य धर्म-: आत्मा के प्रदेश परिस्पंदन के अभाव को ब्रह्मचर्य कहते हैं।
४६. स्त्रीसंसर्ग त्यागः- कामी होकर स्त्रियों की संगति के त्याग को स्त्रीसंसर्ग त्याग कहते हैं।
४७. प्रणीतरसत्यागः- पंचेंद्रियों को उत्तेजित करने वाले आहार त्याग को प्रणीत रसत्याग कहते हैं।
४८. गंधमालादि त्यागः- सुगंधित तेल, पुष्पमालादि के त्याग को गंधमालादि ग्रहण त्याग कहते हैं।
४९. शैय्यासन त्यागः- मोहक शैय्या और आसन के त्याग को शैय्यासन त्याग कहते हैं।
५०. आभूषण त्यागः- शरीर को सजाने वाले अलंकार के त्याग को आभूषण त्याग कहते हैं।
५१. गीतवादित्र त्यागः- रागी हो नृत्यगानादि के देखने आदि के त्याग को गीतवादित्रत्याग कहते हैं।
५२. धन त्यागः- सोना, चाँदी, रुपया आदि के त्याग को धन त्याग कहते हैं।
५३. कुशीलसंसर्ग त्यागः - कामीभोगी जनों की संगति के त्याग को कुशीलसंसर्ग त्याग कहते हैं।
५४. राजसेवा त्यागः- धनाकांक्षा पूर्वक राजादि की सेवा के त्याग को राजसेवा त्याग कहते हैं।
५५. रात्रिभ्रमण त्यागः- कामी हो अंधकार में गमनागमनादि के त्याग को रात्रिभ्रमण त्याग कहते हैं।
५६. आकंपित दोष और त्यागः- आचार्यादि में राग उत्पन्न कराकर बाद में अपने दोष बतलाने को आकंपित दोष और इसके त्याग को आकंपित दोष त्याग कहते हैं।
५७. अनुमानित दोष त्यागः- अपनी दिनचर्या के द्वारा आचार्य आदि में मोह उत्पन्न कराकर बाद में स्वदोष बतलाने के त्याग को अनुमानित दोष त्याग कहते हैं।
५८. दृष्टदोष त्यागः- दूसरों के द्वारा देखे गये दोष को आचार्य के समक्ष कथन के त्याग को दृष्ट दोष त्याग कहते हैं।
५९. बादरदोष त्यागः- आचार्य के समक्ष स्थूलदोष वादन के त्याग को बादरदोष त्याग कहते हैं।
६०. सूक्ष्मदोष त्यागः- आचार्य समक्ष सूक्ष्म कथन रूपी दोष के त्याग को सूक्ष्मदोष त्याग कहते हैं।
६१. छन्न दोष त्यागः- अपने दोषों को छिपाकर और दूसरों के दोष को बोलकर प्रायश्चित्त करने के त्याग को छन्नदोष त्याग कहते हैं।
६२. शब्दाकुलित दोष त्यागः- कोलाहल में आचार्य के समक्ष दोष वादन के त्याग को शब्दाकुलित दोष त्याग कहते हैं।
६३. बहुजनदोष त्यागः- दोषों के प्रायश्चित्त को अन्यत्र लेने के त्याग को बहुजनदोष त्याग कहते हैं।
६४. अव्यक्तदोष त्यागः- अकुशल आचार्य से प्रायश्चित्त लेने के त्याग को अव्यक्तदोष त्याग कहते हैं।

६५. तत्सेवीदोष त्यागः- अपने समान दोषी से प्रायश्चित्त लेने के त्याग को तत्सेवीदोष त्याग कहते हैं।
६६. आलोचना प्रायश्चित्तः- आचार्य से निर्विकारी हो दोषवादन करना आलोचना प्रायश्चित्त है।
६७. प्रतिक्रमण प्रायश्चित्तः- किये हुए अपराध को यह मेरा अपराध मिथ्या हो ऐसा आचार्य के सामने उच्चारण करने को प्रतिक्रमण प्रायश्चित्त कहते हैं।
६८. उभयप्रायश्चित्तः- आलोचना और प्रतिक्रमण के द्वारा दोष कहने को उभयप्रायश्चित्त कहते हैं।
६९. विवेक प्रायश्चित्तः- करपात्र में त्यागे हुए भक्ष्यपदार्थ के मिल जाने पर या करपात्र में स्वतंत्र रूप से दिये जाने पर उनका कुछ समय के लिए त्याग या अंतराय करने को विवेकप्रायश्चित्त कहते हैं।
७०. व्युत्सर्गप्रायश्चित्तः- कायोत्सर्ग के द्वारा दोषों के दूर करने को कायोत्सर्ग प्रायश्चित्त कहते हैं।
७१. तप प्रायश्चित्तः- अनशनादि के द्वारा दोषों के शोधन करने को तपप्रायश्चित्त कहते हैं।
७२. छेद प्रायश्चित्तः- दोष लगने पर दीक्षा में से कुछ दिन कम करने को छेद प्रायश्चित्त कहते हैं।
७३. मूल प्रायश्चित्तः- पुनः नवीन दीक्षा देने को मूल प्रायश्चित्त कहते हैं।
७४. परिहार प्रायश्चित्तः- बार बार समझाने पर भी पुनः पुनः वही तीव्र गल्ती करता चला जाये तब कुछ समय के लिए दोषी मुनि को संघ से अलग या त्याग कर देने को परिहार प्रायश्चित्त कहते हैं।
७५. श्रद्धान प्रायश्चित्तः- मोक्षमार्ग में पुनः श्रद्धान कराने को श्रद्धान प्रायश्चित्त कहते हैं।
२१ X ४ X १० X १० X १० X १० X १० = ८४००००० उत्तरगुण

छद्मस्थों, अल्पज्ञों, मोहियों के द्वारा किये गये प्रतिपादन से मोक्षमार्ग प्राप्त नहीं होता है क्योंकि जो स्वयं भूला हुआ है वह पथिकों को सही रास्ता नहीं दिखला सकता।

ब्रह्मचर्य एवं ८४ लाख उत्तरगुण मंत्र विधान

इस विधान में ७ वलय हैं जिसमें ७५ अर्घ भंगों के हैं तथा ९ अर्घ समुच्चय के हैं सब मिलाकर ८४ अर्घ हैं।

उत्तर गुणों की कथा

असंख्यात द्वीप समुद्रों के मध्य में एक जम्बूद्वीप है। इसमें ६पर्वतों के द्वारा ७ क्षेत्र हो गये हैं। विदेहक्षेत्र में हमेशा २० तीर्थंकर विद्यमान है। विदेहक्षेत्र से दक्षिण में भरतक्षेत्र है। भरतक्षेत्र के ५ मलेच्छखंड और एक आर्यखंड है। भरतक्षेत्र के आर्यखण्ड में प्रत्येक अवसर्पिणी और उत्सर्पिणीकाल के ९कोड़ाकोड़ी सागर और ४२०००वर्ष कम दसवें कोड़ाकोड़ी सागर काल में २४ तीर्थंकर होंगे अर्थात् ४कोड़ाकोड़ी सागर काल में उत्तम भोगभूमि, ३कोड़ाकोड़ी सागर काल में मध्यम भोगभूमि और २कोड़ाकोड़ी सागर काल में जघन्य भोगभूमि इस प्रकार ९कोड़ाकोड़ी सागर उत्सर्पिणीकाल के तथा ९कोड़ाकोड़ी सागर अवसर्पिणीकाल में भोगभूमि होने से तीर्थंकर जैसे महापुरुषार्थी संयम पूर्वक मोक्षमार्ग चलाने वाले जन्म नहीं लेते २१०००वर्ष पंचमकाल में, २१००० वर्ष छठवेंकाल में पुनः उत्सर्पिणी काल के ४२००० वर्षों में धर्मक्षेत्र होने पर भी द्रव्य काल और भाव का यथार्थ संयोग न होने से महापुरुष जन्म नहीं लेते हैं जिससे पूर्ण रूप से सकल संयम पूर्वक न मोक्षमार्ग चलता है और न राजसत्ता चलती है। केवल ८४००० वर्ष कम दो कोड़ाकोड़ीसागर काल में ४८ तीर्थंकर जैसे महापुरुष, १२६ शलाकापुरुष, ३३८ पुण्यपुरुष उत्पन्न होते हैं अर्थात् प्रत्येक उत्सर्पिणी काल में २४ तीर्थंकर ६३ श्लाकापुरुष १६९ पुण्यपुरुष होते हैं और इतने ही अवसर्पिणी काल में होते हैं। ८४००० वर्षों में कुकर्मभूमि होने के कारण उत्तम भावों का अभाव होने से तीर्थंकर नहीं होते हैं । इस समय में मनुष्य अधिकतर मलेच्छ आचरण से युक्त हो जाते हैं। अभी इस दुःखमा पंचमकाल में अंतिम तीर्थंकर श्री भ. महावीर का तीर्थकाल चल रहा है। इस समय नदियों के मोड़ की तरह व्यवहार आचरण रूपी धर्म तथा धर्मायतनों में नाना विपरीत बुद्धिवालों द्वारा संकट उपस्थित किया जा रहा है फिर भी समय अनुसार सातिशय पुण्यात्मा जीव कर्मों से युद्ध करने के लिए कटिबद्ध हैं। अपने बलवीर्य को न छिपाकर मोक्षमार्ग को चला रहे हैं। इस शताब्दी में मुख्य ३ आचार्य परंपरायें चल रहीं हैं। १. आ. श्री शांतिसागरजी महाराज दक्षिणवाले २. अंकलीकर आ. आदिसागरजी महाराज ३. आ. शांतिसागरजी महाराज छाणीवाले। इन्हीं आचार्यों की परंपराओं में अनेक अवांतर भेद हो गये हैं सो ठीक ही है क्योंकि अवसर्पिणीकाल चल रहा है और इस काल का प्रभाव जैनों पर ही पड़ेगा। जो खड़ा है, चल रहा है, दौड़ रहा है वही गिरेगा किंतु जो जमीन पर लेटा है वह कैसे और कहाँ गिरेगा? ऐसे ही आचार विचार से उत्कृष्ट जैन ही अत्यंत पतित होंगे, अजैन क्या पतित होंगे वो तो पहले से ही मोक्षमार्ग से पतित हैं। इसमें अनेक ऐंसी दुर्घटनाऐं उत्पन्न होगी जो इतिहास रूप में बनती जायेगी क्योंकि ये पंथवादी और पक्षपाती मूर्खता तथा अहंकार के कारण जिनधर्म के विच्छेद करने वाले हो रहे हैं। गुजरात की राजधानी गांधीनगर सेक्टर नं. २१ में ब्र. यशवन्ती (मोहनी) को श्रुतपंचमी के दिन गोम्मटसार जीवकाण्ड का अध्ययन कराना प्रारम्भ किया। उस समय प्रमाद के भंगों को समझा रहे थे। उसी समय शील के अठारह हजार भंगों को तैयार करने के भाव कर सावन वदी एकम के दिन प्रारम्भ कर थोड़े से समय में भादों सुदी चौथ को पूर्ण किये तथा भादों सुदी तेरस के दिन शील के १८० भंगों को प्रारंभ कर इसी दिन पूर्ण किये जो ये छठवें गुणस्थान में प्राप्त होते हैं तदनन्तर प्रमाद

के ३७५०० भंगों को पूर्ण किया फिर चौरासी लाख उत्तरगुण और चौरासी लाख मंत्रों का कार्य प्रारम्भ करके वैसाख सुदी ३ वि.सं. २०५६ को पूर्ण किया। इनका मूल आधार आ. कुंदकुंदजी कृत मूलाचार और प्रतिक्रमण है। पूर्वकाल में जब मनुष्यों की आयु लम्बी थी उस समय श्रावकों ने और साधुओं ने यह व्रत किया होगा किंतु वर्तमान में इतने लम्बे उपवास करने के लिए न तो जीवन है न समय है। अतः समय के अनुसार चौरासीलाख उत्तरगुणों के भंगों में से प्रत्येक लाख के प्रथम भंग को ग्रहण कर चौरासी भंग हुए इन चौरासी भंगों के ८४ उपवास उत्तम, चौरासी नीरस भोजन मध्यम और चौरासी एकाशन करना जघन्य हैं तथा नित्यप्रति व्रत के दिन अभिषेक, पूजन, आरती करना तथा मंत्र का जाप करना चाहिये। व्रत के दिन पूर्ण ब्रह्मचर्य से रहना, शुद्ध भोजन करना, ध्यान अध्ययन में समय लगाना, विकथाओं से, आरम्भ परिग्रह से दूर रहना, विशेष शृंगार अलंकार का त्याग करना चाहिए। तीनों संध्या कालों में समुच्चय मंत्र का जाप करना अथवा जिस नम्बर का उपवासादि हो उस नम्बर का जाप करना चाहिए। यह व्रत अक्षयतृतीया के दिन ही प्रारंभ करना चाहिये बाद में फिर किसी भी दिन व्रत कर सकते हैं।

समुच्चय मंत्रः- ॐ ह्रीं अर्हं चतुरशीति लक्षोत्तर गुणेभ्यो नमः स्वाहा।

उद्यापन विधि : व्रत पूर्ण होने के बाद अपनी शक्त्यनुसार उद्यापन करना चाहिए। सप्तक्षेत्रों में मंगलद्रव्य, प्रातिहार्य, १६ स्वप्न, पूजन सामग्री आदि दान में देना, चार प्रकार का दान देना, वस्त्र धारियों को वस्त्रदान देना, पीछी कमण्डलु वालों को पीछी, कमण्डलु तथा शास्त्र देना एवं उत्तरगुण विधान करना जिससे भवांतर में तीर्थंकर पदवी को पाकर बाद में मोक्ष को प्राप्त होना इसका फल है।

प्र.४४-व्रत करने से तीर्थंकर प्रकृति का बंध कैसे हो सकता है?

उत्तर- देखो, आप थोड़ा सा विचार करेंगे तो आपको स्वयं ही समझ में आयेगा कि व्रतों का पालन करने से तीर्थंकर प्रकृति का बंध होता है जैसे किसीने व्रत किया अर्थात् चारों प्रकार के आहार का त्याग किया यानि आहार का त्याग करने से तो उपवास (अनशन) कहलाया। भोजनपान का त्याग होने से बाह्य में त्याग धर्म कहलाया और अंतरंग में इच्छाओं का दमन होने से तप कहलाया। मोक्षमार्ग के प्रति तथा अपने प्रति श्रद्धान नहीं है तो कोई भी तप त्याग धर्म का आचरण कर नहीं सकता अतः श्रद्धान पूर्वक ही तप त्याग धर्म का आचरण होने से दर्शनविशुद्धि भावना हुई तथा जब निर्मल श्रद्धान है तब नम्रता अर्थात् विनय सम्पन्नता है और जब गुणगान किया तब अर्हंत आदि भक्ति हुई तथा भक्ति बिना वात्सल्य तो हो नहीं सकता है अतः वात्सल्य भावना है जब वात्सल्य है तब नियम से प्रभावना होगी। जब किसी कार्य की प्रभावना करते हैं तब कार्य करने के पहले तत्सम्बंधी पूर्व में विचार करेंगे तो वह निरन्तर विचार ही आभीक्षण ज्ञानोपयोग कहलाया और जब निरन्तर तत्त्वविचार, कर्तव्य विचार में मन स्थिर होता है तब वह स्थिरता ही आवश्यकापरिहाणि, शीलव्रतों का निरतिचारपालन हुआ। कारण जब मन बाह्य विषय वासनाओं से हटकर आत्म कल्याण में सदा लगा रहेगा। सदा आत्म कल्याण में रहने से असंख्यात गुण श्रेणी पाप कर्मों की निर्जरा होगी, पाप कर्मों का संवर होगा, पुण्य कर्मों की निर्जरा कम मात्रा में होती है, पुण्य कर्मों का संवर नहीं होता है पाप को हटाकर पुण्य जब उदय में आता है तो सारी सुख सामग्री अनायास प्राप्त होती जाती है जब लौकिक कार्यों की सिद्धि में देर नहीं लगती है तो लोकोत्तर कार्यों की सिद्धि में देर कैसे लगेगी अर्थात् नहीं लगेगी अतः हे भव्य जीवो यदि इन्द्रिय सुख प्राप्त करने की आकांक्षा है तो भी व्रतों का पालन

करो, जिससे सांसारिक इष्ट सुख का अनुभव करो बाद में आत्मसुख, मोक्षसुख प्राप्त करो जो सदा एकसी अवस्था रूप में रहने वाला शाश्वत पद है। ऐसी मेरी आन्तरिक भावना है और प्रत्येक भव्य जीवों का यही उत्तम लक्ष्य होना चाहिए।

८४ मंत्रजाप

१. ॐ ह्रीं आयै नमः	१ले लाख का पहला मंत्र है।	१
२. ॐ ह्रीं अवब्रप्रायै नमः	२रे लाख का पहला मंत्र है।	१००००१
३. ॐ ह्रीं प्राप्रिदृष्टाय नमः	३रे लाख का पहला मंत्र है।	२००००१
४. ॐ ह्रीं कावोगीबायै नमः	४थे लाख का पहला मंत्र है।	३००००१
५. ॐ ह्रीं मातकुसवाय नमः	५वें लाख का पहला मंत्र है।	४००००१
६. ॐ ह्रीं रवसंराछायै नमः	६वें लाख का पहला मंत्र है।	५००००१
७. ॐ ह्रीं भासप्रबायै नमः	७वें लाख का पहला मंत्र है।	६००००१
८. ॐ ह्रीं माव्वाशौप्रयाय नमः	८वें लाख का पहला मंत्र है।	७००००१
९. ॐ ह्रीं आवागीतायै नमः	९वें लाख का पहला मंत्र है।	८००००१
१०. ॐ ह्रीं ब्रव्रमाप्राय नमः	१०वें लाख का पहला मंत्र है।	९००००१
११. ॐ ह्रीं साप्राप्राय नमः	११वें लाख का पहला मंत्र है।	१०००००१
१२. ॐ ह्रीं अयाबाप्राय नमः	१२वें लाख का पहला मंत्र है।	११००००१
१३. ॐ ह्रीं पयागंसूप्राय नमः	१३वें लाख का पहला मंत्र है।	१२००००१
१४. ॐ ह्रीं आद्वय्वाछप्राय नमः	१४वें लाख का पहला मंत्र है।	१३००००१
१५. ॐ ह्रीं वाद्वीतधशप्राय नमः	१५वें लाख का पहला मंत्र है।	१४००००१
१६. ॐ ह्रीं जवश्रीसंराप्राय नमः	१६वें लाख का पहला मंत्र है।	१५००००१
१७. ॐ ह्रीं आत्रीसातप्राय नमः	१७वें लाख का पहला मंत्र है।	१६००००१
१८. ॐ ह्रीं लवचावगंधाताय नमः	१८वें लाख का पहला मंत्र है।	१७००००१
१९. ॐ ह्रीं माचावाताय नमः	१९वें लाख का पहला मंत्र है।	१८००००१
२०. ॐ ह्रीं आमाधद्दताय नमः	२०वें लाख का पहला मंत्र है।	१९००००१
२१. ॐ ह्रीं आबाताय नमः	२१वें लाख का पहला मंत्र है।	२०००००१
२२. ॐ ह्रीं आछताय नमः	२२वें लाख का पहला मंत्र है।	२१००००१
२३. ॐ ह्रीं अवाप्रशताय नमः	२३वें लाख का पहला मंत्र है।	२२००००१
२४. ॐ ह्रीं आताय नमः	२४वें लाख का पहला मंत्र है।	२३००००१
२५. ॐ ह्रीं कावोग्यताय नमः	२५वें लाख का पहला मंत्र है।	२४००००१
२६. ॐ ह्रीं मातकुतताय नमः	२६वें लाख का पहला मंत्र है।	२५००००१
२७. ॐ ह्रीं रवसंरावये नमः	२७वें लाख का पहला मंत्र है।	२६००००१
२८. ॐ ह्रीं भासप्रावये नमः	२८वें लाख का पहला मंत्र है।	२७००००१
२९. ॐ ह्रीं माव्वाप्रियवये नमः	२९वें लाख का पहला मंत्र है।	२८००००१
३०. ॐ ह्रीं आवागीसूवये नमः	३०वें लाख का पहला मंत्र है।	२९००००१

३१. ॐ ह्रीं ब्रव्रमाछवये नमः	३१वें लाख का पहला मंत्र है।	३०००००१
३२. ॐ ह्रीं साप्राशावये नमः	३२वें लाख का पहला मंत्र है।	३१००००१
३३. ॐ ह्रीं आसावये नमः	३३वें लाख का पहला मंत्र है।	३२००००१
३४. ॐ ह्रीं पयासागंतवये नमः	३४वें लाख का पहला मंत्र है।	३३००००१
३५. ॐ ह्रीं मयद्वीताव्यवे नमः	३५वें लाख का पहला मंत्र है।	३४००००१
३६. ॐ ह्रीं वाद्वीतधाव्यवे नमः	३६वें लाख का पहला मंत्र है।	३५००००१
३७. ॐ ह्रीं जवत्रीसंरादृव्यवे नमः	३७वें लाख का पहला मंत्र है।	३६००००१
३८. ॐ ह्रीं आत्रीसासूव्यवे नमः	३८वें लाख का पहला मंत्र है।	३७००००१
३९. ॐ ह्रीं आचावगंछव्यवे नमः	३९वें लाख का पहला मंत्र है।	३८००००१
४०. ॐ ह्रीं माचावाव्यवे नमः	४०वें लाख का पहला मंत्र है।	३९००००१
४१. ॐ ह्रीं आमाधाव्यवे नमः	४१वें लाख का पहला मंत्र है।	४०००००१
४२. ॐ ह्रीं आराव्यवे नमः	४२वें लाख का पहला मंत्र है।	४१००००१
४३. ॐ ह्रीं आतपाय नमः	४३वें लाख का पहला मंत्र है।	४२००००१
४४. ॐ ह्रीं अवाप्रातपाय नमः	४४वें लाख का पहला मंत्र है।	४३००००१
४५. ॐ ह्रीं आप्रिद्दतपाय नमः	४५वें लाख का पहला मंत्र है।	४४००००१
४६. ॐ ह्रीं कावोगीबाताय नमः	४६वें लाख का पहला मंत्र है।	४५००००१
४७. ॐ ह्रीं मातासूताय नमः	४७वें लाख का पहला मंत्र है।	४६००००१
४८. ॐ ह्रीं रवसंराछताय नमः	४८वें लाख का पहला मंत्र है।	४७००००१
४९. ॐ ह्रीं भासप्रराताय नमः	४९वें लाख का पहला मंत्र है।	४८००००१
५०. ॐ ह्रीं माव्वाप्रयताय नमः	५०वें लाख का पहला मंत्र है।	४९००००१
५१. ॐ ह्रीं आवागीतताय नमः	५१वें लाख का पहला मंत्र है।	५०००००१
५२. ॐ ह्रीं ब्रव्रमाकवाछेदाय नमः	५२वें लाख का पहला मंत्र है।	५१००००१
५३. ॐ ह्रीं साप्राराछेदाय नमः	५३वें लाख का पहला मंत्र है।	५२००००१
५४. ॐ ह्रीं अयसाबाछेदाय नमः	५४वें लाख का पहला मंत्र है।	५३००००१
५५. ॐ ह्रीं पयसागंसूछेदाय नमः	५५वें लाख का पहला मंत्र है।	५४००००१
५६. ॐ ह्रीं मयद्वीताछेदाय नमः	५६वें लाख का पहला मंत्र है।	५५००००१
५७. ॐ ह्रीं वाद्वीतधाछेदाय नमः	५७वें लाख का पहला मंत्र है।	५६००००१
५८. ॐ ह्रीं जवत्रीसंराबाछेदाय नमः	५८वें लाख का पहला मंत्र है।	५७००००१
५९. ॐ ह्रीं आत्रीसातछेदाय नमः	५९वें लाख का पहला मंत्र है।	५८००००१
६०. ॐ ह्रीं आचावगंधामूलाय नमः	६०वें लाख का पहला मंत्र है।	५९००००१
६१. ॐ ह्रीं माचावामूलाय नमः	६१वें लाख का पहला मंत्र है।	६०००००१
६२. ॐ ह्रीं आमाधद्दमूलाय नमः	६२वें लाख का पहला मंत्र है।	६१००००१
६३. ॐ ह्रीं आराबामूलाय नमः	६३वें लाख का पहला मंत्र है।	६२००००१
६४. ॐ ह्रीं आछमूलाय नमः	६४वें लाख का पहला मंत्र है।	६३००००१
६५. ॐ ह्रीं अवाप्रशमूलाय नमः	६५वें लाख का पहला मंत्र है।	६४००००१
६६. ॐ ह्रीं आबमूलाय नमः	६६वें लाख का पहला मंत्र है।	६५००००१

६७. ॐ ह्रीं कावोग्यामूलाय नमः	६७वें लाख का पहला मंत्र है।	६६००००१
६८. ॐ ह्रीं मातातमूलाय नमः	६८वें लाख का पहला मंत्र है।	६७००००१
६९. ॐ ह्रीं रवारापाय नमः	६९वें लाख का पहला मंत्र है।	६८००००१
७०. ॐ ह्रीं भासप्रद्दपाय नमः	७०वें लाख का पहला मंत्र है।	६९००००१
७१. ॐ ह्रीं माव्वाशावबापाय नमः	७१वें लाख का पहला मंत्र है।	७०००००१
७२. ॐ ह्रीं आगीसूपाय नमः	७२वें लाख का पहला मंत्र है।	७१००००१
७३. ॐ ह्रीं आव्रमाछपाय नमः	७३वें लाख का पहला मंत्र है।	७२००००१
७४. ॐ ह्रीं सापप्रराशपाय नमः	७४वें लाख का पहला मंत्र है।	७३००००१
७५. ॐ ह्रीं अयसामाय नमः	७५वें लाख का पहला मंत्र है।	७४००००१
७६. ॐ ह्रीं पयसागंतपाय नमः	७६वें लाख का पहला मंत्र है।	७५००००१
७७. ॐ ह्रीं आद्व्यताश्राय नमः	७७वें लाख का पहला मंत्र है।	७६००००१
७८. ॐ ह्रीं वाद्वीतधाश्राय नमः	७८वें लाख का पहला मंत्र है।	७७००००१
७९. ॐ ह्रीं जवत्रीसांश्राय नमः	७९वें लाख का पहला मंत्र है।	७८००००१
८०. ॐ ह्रीं आत्रीसासूश्राय नमः	८०वें लाख का पहला मंत्र है।	७९००००१
८१. ॐ ह्रीं आचावगंछश्राय नमः	८१वें लाख का पहला मंत्र है।	८००००१
८२. ॐ ह्रीं माचावाशश्राय नमः	८२वें लाख का पहला मंत्र है।	८१००००१
८३. ॐ ह्रीं आमाधवश्राय नमः	८३वें लाख का पहला मंत्र है।	८२००००१
८४. ॐ ह्रीं आराश्राय नमः	८४वें लाख का पहला मंत्र है।	८३००००१
८५. ॐ ह्रीं अयनासातश्रद्धानाय नमः	८४लाखवाँ अंतिम मंत्र है।	८४०००००

गुण मीमांसा

प्र.४५-गुण किसे कहते हैं?

उत्तर- जो आत्मा का उपकार करें उनको अथवा जो द्रव्य के आश्रय होकर रहते हैं, जो संकर व्यतिकर दोषों को टालकर निवास करते हैं उनको या अनादिकाल से अनन्तकाल तक एक अपरिणामी स्वभाववालों को गुण कहते हैं।

प्र.४६-गुणों के कितने भेद हैं और नाम कौन कौन हैं?

उत्तर- गुणों के दो भेद हैं। नामः- सामान्य गुण और विशेष गुण।

प्र.४७-सामान्य गुण किसे कहते हैं?

उत्तर- जो सभी चेतन और अचेतन द्रव्यों में रहें उन्हें सामान्य गुण कहते हैं।

प्र.४८-अस्तित्त्व गुण किसे कहते हैं?

उत्तर- अस्ति के भाव को अस्तित्त्व कहते हैं। जो अपने सभी गुण पर्यायों में व्याप्त रहे उसे सत् कहते हैं तथा उत्पादव्यय और ध्रौव्यवाले को सत् कहते हैं अस्ति और सत् एकार्थवाची हैं।

प्र.४९-वस्तु और वस्तुत्त्व गुण किसे कहते हैं?

उत्तर- सामान्य विशेष धर्मवाले पदार्थ को वस्तु कहते हैं, वस्तु के भाव को वस्तुत्त्वगुण कहते हैं।

प्र.५०-द्रव्य और द्रव्यत्त्व गुण किसे कहते हैं?

उत्तर- जो अपने प्रदेश समूहों के द्वारा अखंडपने से स्वभाव विभाव पर्यायों को प्राप्त हुआ था, हो रहा है और होगा उसे द्रव्य कहते हैं और इसके भाव को द्रव्यत्त्वगुण कहते हैं।

प्र.५१-प्रमेय और प्रमेयत्त्व गुण किसे कहते हैं?

उत्तर- प्रमाण के द्वारा जानने योग्य जो स्व और पर स्वरूप है वह प्रमेय है और प्रमेय के भाव को प्रमेयत्त्वगुण कहते हैं।

प्र.५२-अगुरुलघु और अगुरुलघुत्त्व गुण किसे कहते हैं?

उत्तर- जो सूक्ष्म है, वचन के अगोचर है, प्रति समय में परिणमनशील है तथा आगम प्रमाण से जाना जाता है उसे अगुरुलघुगुण कहते हैं तथा इसके भाव को अगुरुलघुत्त्वगुण कहते हैं।

प्र.५३-प्रदेश और प्रदेशत्त्व गुण किसे कहते हैं और किसमें कितने प्रदेश होते हैं?

उत्तर- एक अविभागी पुद्गल परमाणु के द्वारा व्याप्त आकाशक्षेत्र को प्रदेश कहते हैं और प्रदेश के भाव को प्रदेशत्त्व गुण कहते हैं। काल द्रव्य एक प्रदेशी है शेष पांच द्रव्य बहुप्रदेशी हैं। आकाश के प्रदेश के समान जिस किसी भी द्रव्य के अविभागी अंश को प्रदेश कहते हैं।

प्र.५४-विशेष गुण किसे कहते हैं, कितने भेद और नाम कौन कौन हैं?

उत्तर- जो किसी किसी विशेष द्रव्य में रहें उन्हें विशेष गुण कहते हैं, सोलह भेद हैं- ज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्य आदि। जिनके द्वारा एक द्रव्य दूसरे द्रव्य से पृथक् किया जाता है उन्हें विशेष गुण कहते हैं।

प्र.५५-संकर दोष किसे कहते हैं?

उत्तर- अनंत गुणों का एकरूप में होने को संकर दोष कहते हैं।

प्र.५६-व्यतिकर दोष किसे कहते हैं?

उत्तर- अपने को पररूप में मिला देने को व्यतिकर दोष कहते हैं।

प्र.५७-इन गुणों की परिभाषाओं का संग्रह करने से क्या फल प्राप्त होता है?

उत्तर : वस्तु तत्त्व को समझना और समझकर स्वरूप में लीन होना वास्तविक फल प्राप्त होता है।

प्र.५८-यदि ऐसा है तो मोक्षमार्ग की प्राप्ति और मोक्षफल की प्राप्ति किस परिभाषा के स्वीकार से होगी?

उत्तर- जो आत्मा का उपकार करें उन्हें गुण कहते हैं इसके स्वीकार करने से मार्ग और मार्गफल की प्राप्ति होती है।

प्र.५९-ऐसा क्यों तथा उपरोक्त अस्तित्त्वादि परिभाषाओं से क्यों प्राप्त नहीं होती है?

उत्तर- मार्ग और मार्गफल की प्राप्ति केवल आत्मा को होती है शेष द्रव्यों को नहीं। इसका कारण यह है कि जिस द्रव्य में विकार और संसार है उसीको निर्विकारपना और मोक्ष की प्राप्ति होगी। यह अवस्था पुद्गल और जीव की होती है, शेष द्रव्यों की नहीं क्योंकि चार द्रव्यों की परिणति हमेशा शुद्ध होती है।

प्र.६०-मार्ग और मार्गफल की प्राप्ति पारिणामिकभावों से होती है या अन्य भावों से?

उत्तर- मार्ग और मार्गफल की प्राप्ति पारिणामिक भावों से नहीं होती है क्योंकि पारिणामिक भाव तो अनादिकाल से प्रत्येक जीव में मौजूद है। जबकि एक जीव की अपेक्षा मार्ग और मार्गफल अनादि न होकर सादि माना है तथा मार्ग की प्राप्ति के बाद अन्तर्मुहूर्त में या अर्धपुद्गल परिवर्तन काल के अन्दर नियम से मार्गफल की प्राप्ति होती है अतः पारिणामिक भावों से मार्ग और मार्गफल की प्राप्ति न होकर अन्य भावों से प्राप्ति होती है। ये भाव पुरुषार्थ से ही प्राप्त होते हैं।

प्र.६१-वे अन्य भाव कौन से हैं जिनसे मार्ग और मार्गफल की प्राप्ति होती है?

उत्तर- औपशमिक भाव, क्षायोपशमिक भाव, क्षायिक भाव से मार्ग और मार्गफल की प्राप्ति होती है।

प्र.६२-गुणों के कथन में भावों को बीच में क्यों ले लिया?

उत्तर- नैमित्तिक भावों को भी गुणनाम से कहा है (पं. का. गाथा ५६ में उदयेण उवसमेण... विच्छिण्णा) भावों को तत्त्व भी कहा है (त.द्वि. १ सूत्र) इन्हीं भावों से मार्ग और मार्गफल की प्राप्ति होती है तथा इन्हीं के अवांतर भेदों को परस्पर में गुणा आदि के करने से ८४ लाख उत्तरगुणों की प्राप्ति होती है।

प्र.६३-इनको निकालने की विधि क्या है या कितने प्रकार से समझ सकते हैं?

उत्तर- इनको समझने के लिए संख्या, प्रस्तार, अक्षसंक्रम, नष्ट और उद्दिष्ट ये ५ अर्थाधिकार हैं।

प्र.६४-संख्या किसे कहते हैं?

उत्तर- आलापों के भेदों को संख्या कहते हैं।

प्र.६५-प्रस्तार किसे कहते हैं?

उत्तर- संख्या के रखने या निकालने के क्रम को प्रस्तार कहते हैं।

प्र.६६-अक्षसंक्रम किसे कहते हैं?

उत्तर- एक भेद से दूसरे भेद पर पहुंचने के क्रम को अक्षसंक्रम कहते हैं।

प्र.६७-नष्ट किसे कहते हैं?

उत्तर- संख्या को रखकर भेद के/भंग के निकालने को नष्ट कहते हैं।

प्र.६८-उद्दिष्ट किसे कहते हैं?

उत्तर- भेद को/ भंग को रखकर संख्या के निकालने को उद्दिष्ट कहते हैं।

प्र.६९-संख्या को निकालने की क्या विधि है?

उत्तर- प्रथमभंग के अहिंसाव्रतादि २१ भेद हैं। दूसरे खंड के अतिक्रम त्यागादि चार भेद हैं। उनमें अतिक्रमत्यागादि चारों भेद अहिंसाव्रतादि इक्कीस भेदों से गुणा करने पर २१ X ४ = ८४ भेद हुए। आगे तीसरेखंड में भूमि की रक्षादि दश भेदों से गुणा करने पर ८४ X १० = ८४० भेद हुए। चौथे खंड में क्षमादि दश धर्मों के भेदों से गुणा करने पर ८४० X १० = ८४०० भेद हुए। पांचवें खंड में स्त्रीसंसर्ग त्याग आदि दश भेदों से गुणा करने पर ८४०० X १०=८४००० भेद हुए। छठवें खंड में

आकंपित दोष त्यागादि भेदों से गुणा करने पर ८४००० X १०=८४०००० भेद हुए। सातवें खंड में प्रायश्चित्त के आलोचनादोष त्यागादि भेदों से गुणा करने पर ८४००००X१०=८४००००० भेद हुए।

प्र.७०-प्रस्तार किस विधि से निकाला जाता है?

उत्तर- प्रथम खंड में गुणों के इक्कीस भेद गिनाये हैं। इन इक्कीस भेदों को फैलाकर रखने को प्रस्तार कहते हैं। ऐसा करने पर एक को इक्कीस १ जगह रखने पर फिर दूसरे खंड के अतिक्रम त्याग आदि चार भेदों को एक एक के ऊपर रखना।

४ ४

१ = ८४

आगे तीसरे खंड के भूमि की रक्षा आदि दश भेदों को स्थापित करने पर ८४० भेद हो जाते हैं।

८४ ८४ ८४ ८४ ८४ ८४ ८४ ८४ ८४ ८४

१ १ १ १ १ १ १ १ १ १ = ८४०

आगे चौथे खंड के क्षमा आदि दश भेदों को स्थापित करने पर ८४०० भंग हो जाते हैं।

८४० ८४० ८४० ८४० ८४० ८४० ८४० ८४० ८४० ८४०

१ १ १ १ १ १ १ १ १ १ = ८४००

आगे पांचवें खंड के स्त्रीसंसर्ग त्याग आदि दश भेदों को स्थापित करने पर ८४००० भेद हो जाते हैं।

८४०० ८४०० ८४०० ८४०० ८४०० ८४०० ८४०० ८४०० ८४०० ८४००

१ १ १ १ १ १ १ १ १ १ = ८४०००

आगे छठवें खंड के आकंपितादि दोषों के त्याग रूप दश भेदों को स्थापित करने पर ८४०००० भेद हो जाते हैं।

८४००० ८४००० ८४००० ८४००० ८४००० ८४००० ८४००० ८४००० ८४००० ८४०००

१ १ १ १ १ १ १ १ १ १

= ८४००००

आगे सातवें खंड के आलोचनादि दश भेदों को स्थापित करने पर = ८४०००००० भेद हो जाते हैं

८४००००० ८४००००० ८४००००० ८४००००० ८४००००० ८४००००० ८४००००० ८४००००० ८४००००० ८४०००००

१ १ १ १ १ १ १ १ १ १

= ८४०००००

प्र.७१-अक्षपरिवर्तन निकालने की क्या विधि है?

उत्तर- अहिंसादि व्रतों को आदि से लेकर २१ भेद अहिंसा व्रत आदि ५ पालन स्वरूप तथा क्रोधादिक १६के त्याग रूप। अतिक्रम त्याग आदि चार भेद, भूमि की रक्षा आदि दश भेद, क्षमाधर्म आदि के पालन रूप दश भेद, स्त्रीसंसर्ग आदि के त्याग रूप दश भेद, आकंपित आदि के त्यागरूप दश भेद, आलोचना आदि प्रायश्चित्त के दश भेद इनको क्रमशः नीचे नीचे स्थापित करना चाहिए। जब प्रथम खंड के अहिंसाव्रत से लेकर इंद्रियजय को प्राप्त कर पुनः अहिंसाव्रत पर आ जाय तब दूसरे खंड के स्थानों में अतिक्रमत्याग को छोड़कर व्यतिक्रमत्याग पर आ जाय तथा इस प्रकार परिवर्तन होते होते अंत तक पहुंच जाय और प्रथम स्थान को वापस आकर प्राप्त कर ले, तब तीसरा स्थान भूमि की रक्षा आदि १० स्थानों को क्रमशः प्राप्त कर अंतिम स्थान को प्राप्त कर पुनः प्रथम स्थान को प्राप्त हो जाता है। इस प्रकार परिवर्तन करते करते प्रत्येक खण्ड के अंतिम स्थान को प्राप्त कर लेते हैं तब विवक्षित खण्ड पूरा हो जाता है और अंतिम खण्ड आलोचना प्रायश्चित्त को प्रारंभ कर क्रमशः परिवर्तन करते करते अंतिम ८४००००० उत्तरगुण पूर्ण हो जाते हैं जो उत्तरगुणों के भंग लिखे गये हैं वे क्रमवार अक्ष परिवर्तन कराके ही लिखे गये हैं।

अहिंसा +	अतित्या. +	भू.रक्षा +	क्षमा ध. +	स्त्री. +	आकं. +	आलो.	
१	०	०	०	०	०	०	=१ला भंग
स.व्र. +	अति.त्या. +	भू.रक्षा +	क्ष.ध. +	स्त्री. +	आकं. +	आलो.	
२	०	०	०	०	०	०	= २रा भंग
अ.व्र. +	अति.त्या. +	भू.रक्षा +	क्ष.ध. +	स्त्री. +	आकं. +	आलो.	
३	०	०	०	०	०	०	= ३रा भंग
ब्र.व्र. +	अति.त्या. +	भू.रक्षा +	क्ष.ध. +	स्त्री. +	आकं. +	आलो.	
४	०	०	०	०	०	०	= ४था भंग
अप.व्र. +	अति. +	भू.रक्षा +	क्ष.ध. +	स्त्री. +	आकं. +	आलो.	
५	०	०	०	०	०	०	= ५वां भंग
पिशु.त्या.+	अति.त्या. +	भू.रक्षा +	क्ष.ध. +	स्त्री. +	आकं. +	आलो.	
१९	०	०	०	०	०	०	=१९वां भंग
अ.त्या. +	अति.त्या. +	भू.रक्षा +	क्ष.ध. +	स्त्री. +	आकं. +	आलो.	
२०	०	०	०	०	०	०	=२०वां भंग
इं.जय. +	अ.त्या. +	भू.रक्षा +	क्ष.ध. +	स्त्री. +	आकं. +	आलो.	
२१	०	०	०	०	०	०	=२१वां भंग
इं.जय. +	अना.त्या. +	पंचें.रक्षा +	ब्र.ध. +	रात्रि. +	तत्सेवी. +	श्रद्धान.	
२१	६३	७५६	७५६०	७५६००	७५६०००	७५६००००	= ८४लाखवांभंग

प्र.७२-नष्ट किस विधि से निकाला जाता है?

उत्तर- एक अंक लिख कर फिर अपने अक्षपिंड प्रमाण से भाग देने पर जो शेष प्राप्त हो तो उस शेष को अक्षस्थान समझना तथा जो लब्ध प्राप्त हुआ है उसमें एक जोड़ना। यदि शेष में शून्य हो तो अपने खंड के अंतिम भेद को समझना और लब्ध भाग में एक नहीं जोड़ना। जैसे उत्तरगुणों में से यदि पहला भंग प्राप्त करना है तो १ अंक रखकर उसमें प्रथम खंड के पिंडरुप २१ का १/२१ = ० भाग दिया तो लब्ध ० आया तथा शेष एक आया। अतः शेष से अहिंसाव्रत समझना। ० में एक जोड़ना, ० + १ = १ एक प्राप्त हुआ। अब इस एक में दूसरे खंड के पिंड प्रमाण चार से भाग देना १/४ = ० तो यहाँ लब्ध ० आया तथा १ शेष आया। इस एक शेष से अतिक्रमत्याग को ग्रहण करना चाहिए। पुनः आगे शून्य में एक जोड़ना ० + १ = १ फिर एक में तीसरे खंड के पिंडरूप १० का भाग देना १/१० = ० लब्ध आया और शेष एक आया। इस एक से भूमिरक्षा को ग्रहण करना चाहिए। आगे लब्ध शून्य में एक जोड़ने से १ आया। इस एक में चौथे खंड के पिंडरूप १० से भाग दो १/१० = ० लब्ध आने पर शून्य में एक जोड़ना ० +१= १ प्राप्त हुआ। इस एक में आगे छठवें खंड के पिंड प्रमाण १० से भाग देना चाहिए १/१० = ० लब्ध आया और शेष एक आया। इस एक से आकंपित दोषत्याग को लेना और लब्ध ० में एक जोड़ना १/१० = ० + १ =१ तब एक ही प्राप्त हुआ। पुनः अगले खण्ड के पिंड प्रमाण १० से भाग देना १/१० = ० लब्ध शून्य तथा शेष एक आया। शेष एक से आलोचना प्रायश्चित्त ग्रहण करना चाहिए और यह अंतिम है इसलिए लब्ध में एक नहीं मिलाना। अतः नष्ट की अपेक्षा प्रथम भंग आया।

<u>प्रथम भंग निकालने की विधि</u>

```
२१) १(०   ० + १ = १     ४) १ (०      ० + १ = १    १० ) १ (०  ० + १ = १
    ०                        ०                          ०
    १                        १                          १
१० ) १ (०   ० + १ = १    १०) १ (०     ० + १ = १    १० )१ (०  ० + १ = १
     ०                        ०                         ०
१० ) १ (०                     १                         १
     ०
```

१ यह अंतिम भंग होने से इस लब्ध ० में एक नहीं मिलाना और शेष एक से आलोचना प्रायश्चित्त समझना चाहिये। अतः यह प्रथम भंग कहलाया।

अ.व्रत	+	अति.त्याग	+	भूमि. रक्षा	+	क्षमाधर्म	+	स्त्रीसं. त्याग	+	आकं. त्याग	+	आलो.प्राय.	
१	+	०	+	०	+	०	+	०	+	०	+	०	= १

दूसरे भंग को निकालने की विधि।

२१) २(० ० + १ = १ ४) १ (० ० + १ = १ १०) १ (० ० + १ = १
० ० ०
२ १ १
१०) १ (० ० + १ = १ १०) १ (० ० + १ = १ १०) १ (० ० + १ = १
० ० ०
१०) १ (० १ १
०

१ यह अंतिम भंग होने से इस लब्ध ० में एक नहीं मिलाना और शेष एक से आलोचना प्रायश्चित्त समझना चाहिये। अतः यह दूसरा भंग कहलाया।

स.व्रत + अति. त्याग + भूमि. रक्षा + क्षमाधर्म + स्त्री. त्याग + आंक. त्याग + आलो. प्राय.
२ + ० + ० + ० + ० + ० + ० = २

तीसरे भंग को निकालने की विधि

२१) ३(० ० + १ = १ ४) १ (० ० + १ = १ १०) १ (० ० + १ = १
० ० ०
३ १ १
१०)१ (० ० + १ = १ १०)१ (० ० + १ = १ १०) १ (० ० + १ = १
० ० ०
१०)१ (० १ १
०

१ यह अंतिम भंग होने से इस लब्ध ० में एक नहीं मिलाना और शेष एक से आलोचना प्रायश्चित्त समझना चाहिये। अतः यह तीसरा भंग कहलाया।

अचौ. व्रत + अति. त्याग + भूमि. रक्षा + क्षमा धर्म + स्त्री त्याग + आंक. त्याग + आलो. प्राय.
३ + ० + ० + ० + ० + ० + ० = ३

शुद्धात्मानुभूति शुद्ध रत्नत्रय से और अशुद्धात्मानुभूति अशुद्ध रत्नत्रय से होती है।

चौथे भंग को निकालने की विधि

२१) ४(० ० + १ = १ ४) १ (० ० + १ = १ १०) १ (० ० + १ = १
० ० ०
४ १ १
१०) १ (० ० + १ = १ १०) १ (० ० + १ = १ १०) १ (० ० + १ = १
० ० ०
१०) १ (० १ १
०

१ यह अंतिम भंग होने से इस लब्ध ० में एक नहीं मिलाना और शेष एक से आलोचना प्रायश्चित्त समझना चाहिये। अतः यह चौथा भंग कहलाया।

ब्रह्म. व्रत + अति. त्याग + भूमि. रक्षा + क्षमा धर्म + स्त्री त्याग + आंक.त्याग + आलो. प्राय.
४ + ० + ० + ० + ० + ० + ०
= ४

पाँचवाँ भंग निकालने की विधि

२१) ५(० ० + १ = १ ४) १ (० ० + १ = १ १०) १ (० ० + १ = १
० ० ०
५ १ १
१०) १ (० ० + १ = १ १०) १ (० ० + १ = १ १०) १ (० ० + १ = १
० ० ०
१०) १ (० १ १
०

१ यह अंतिम भंग होने से इस लब्ध ० में एक नहीं मिलाना और शेष एक से आलोचना प्रायश्चित्त समझना चाहिये। अतः यह पांचवाँ भंग कहलाया।

अपरि. व्रत + अति. त्याग + भूमि रक्षा + क्षमा धर्म + स्त्री त्याग + आंक.त्याग + आलो. प्राय.
५ + ० + ० + ० + ० + ० + ० = ५

२०८०वाँ भंग निकालने की विधि

२१) २०८० (९९ + १ = १०० ४) १०० (२५ १०) २५ (२ + १ = ३ १०) ३ (० + १ = १
१८९ १०० २० ०
१९० ० ५ ३
१८९
१०) १ (० + १ = १ १०) १ (० + १ = १ १०) १ (०
० ० ०
१ १ १

अहिं. व्रत + अना. + प्रत्ये. रक्षा + आ. धर्म + स्त्री त्याग + आंक. त्याग + आलो. प्राय.
१ + ६३ + ३३६ + १६८० + ० + ० + ०
= २०८०वां भंग

३०५७५वां भंग निकालने की विधि

२१) ३०५७५ (१४५५ + १ ४) १४५६ (३६४ १०) ३६४ (३६ + १ = ३७ १०) ३७ (३ + १ = ४
३०५५५ १४५६ ३६० ३०
२० ० ४ ७
१०) ४ (० + १ = १ १०) १ (० + १ = १ १०) १ (०
० ० ०
४ १ १

अज्ञा. + अना. त्याग + वायु. रक्षा + तप धर्म + प्रिय. त्याग + आकं. त्याग + आलो. प्राय.
२० + ६३ + २५२ + ५०४० + २५२०० + ० + ०
= ३०५७५वां भंग

एलोपेथिक होम्योपेथिक और आयुर्वेदिक कंपनियों की दवाईयां खानेवाला व्यक्ति शुद्ध शाकाहारी नहीं हैं क्योंकि इन दवाईयों में मद्य और मधु का, रक्त आदि का संमिश्रण रहता है जो सभी जानते हैं।

४५३७२९ वां भंग निकालने की विधी

२१) ४५३७२९ (२१६०६ + १ = ४) २१६०७(५४०१ + १ = १०) ५४०२ (५४० + १ = ५४१
४५३७२६ २१६०४ ५४००
३ ३ २
१०) ५४१ (५४ + १ १०) ५५ (५ + १ १०) ६ (०. १ = १ १०) १ (०
५४० ५० ० ०
१ ५ ६ १

अचौ.व्रत	अतिचार त्याग	जलरक्षा	क्षमाधर्म	आभू.त्याग	छन्नदोष त्याग	आलो. प्राय.
३	४२	८४	०	३३६००	४२००००	०

= ४५३७२९ वां भंग

६५६५५३५वां भंग निकालने की विधि

२१) ६५६५५३५ (३१२६४४+१ = ४) ३१२६४५(७८१६१+१= १०) ७८१६२ (७८१६+१=
६५६५५२४ ३१२६४४ ७२१६०
११ १ २
१०)७८१७(७८१+१ = १०) ७८२ (७८+१= १०) ७९ (७+१= १०) ८ (०
७८१० ७८० ७० ०
७ २ ९ ८

अर.त्या.	अति. त्या.	जलरक्षा	तप धर्म	प्रणी. त्या.	अव्यक्त. त्या.	मूल प्राय.
११	०	८४	५०४० ८४००	६७२०००	५८८००००	

= ६५६५५३५वां भंग

अन्याय और अभक्ष्य पदार्थों का सेवन करने वाले गृहस्थ और साधुओं के वचन आत्मसाधना के लिए ग्राह्य नहीं हैं क्योंकि मलिन दर्पण में अपना प्रतिबिंब स्पष्ट, स्वच्छ दिखई नहीं देता। रंगीन चश्मा में निर्दोष वस्तु भी रंगीन दिखाई देती है।

ब्रह्मचर्य एवं ८४ लाख उत्तरगुण मंत्र विधान

७५७०९४५वां भंग निकालने की विधि

२१) ७५७०९४५ (३६०५२१+१= ४)३६०५२२ (९०१३०+१= १०)९०१३१(९०१३+१=९०१४)
७५७०९४१ ३६०५२० ९०१३०
४ २ १

१०)९०१४(९०१+१= १०)९०२(९०+१= १०)९१(९+१= १०)१०(०
९०१० (० ९०० ९० १०
४ २ १ ०

ब्र. व्रत व्यति.त्या. भूमि.रक्षा शौचधर्म प्रणी.त्या. आकं.त्या. श्रद्धानप्राय.
४ २ ० ४ ८४०० ० ७५६०००० = ७५७०९४५वां भंग

८४०००००वां भंग निकालने की विधि

२१) ८४००००० (४००००० ४) ४०००००(१००००० १०) १००००(१०००० १०) १०००
८४००००० ४००००० १००००० १०००
० ० ० ०

१०) १००० (१०० १०)१०० (१० १०)१० (१
१००० १०० १०
० ० ०

इंद्रि. जय अ.त्याग पंचें.रक्षा ब्रह्म.धर्म रात्रि.त्या. तत्से.त्या. श्रद्धा. प्राय.
२१ ६३ ७५६ ७५६० ७५६०० ७५६००० ७५६०००० = ८४०००००वां भंग

अभक्ष्य सेवियों के कुछ बाह्य गुण और चमत्कारों को देखकर सुनकर एकादबार मन में प्रसन्न होना और वचन से प्रसंशा करना सम्यग्दर्शन का अतिचार है और बारबार करना अनाचार है।

प्र.७३-उद्दिष्ट निकालने की क्या विधि है?

उत्तर- भंग को लिखकर संख्या निकालने चाहिए। जैसे पहला भंग निकालना है तो सर्व प्रथम एक का अंक लिखना फिर गूढ़ यंत्र के खंडों में से नीचे के खंड में जो प्रायश्चित्त के दश भेद गिनाये हैं उनसे जो एक का अंक लिखा है उससे गुणा करो १ X १० = १० आया। फिर अनंकित ९ घटा दिये, आया एक। फिर नीचे से ऊपर दूसरे खंड में जो आलोचना के आकंपितादि १० दोष गिनाये हैं उससे गुणा किया १ X १० = १० आया। इस दश में से आगे के ९ अनंकित हैं सो १० - ९ = १ घटाये एक आया। पुनः तीसरे खंड में स्त्री संसर्ग त्याग आदि दश भेद हैं। तब १ X १० गुणा करने से दश प्राप्त हुए। पुनः दश से ९ अनंकित को घटाया आया एक। पुनः चौथे खंड में जो क्षमादि दश धर्म बताये हैं उस एक में दश से गुणा करने पर दश प्राप्त हुए फिर दश में से मार्दव धर्मादि ९ अनंकित हैं अतः दश से ९ घटाये तब एक आया। पुनः ५वें खंड में भूमि की रक्षा आदि दश भेद गिनाये हैं। १ X १० गुणा करने पर १० आये इसलिए इस १० में से जलादि रक्षा ९ अनंकित हैं अतः ९ को घटाया तब १० - ९ = १ आया। पुनः अब छठवें खंड में जो अतिक्रमत्याग आदि ४ भेद गिनाये हैं अतः १ X ४ = ४ गुणा करने पर चार प्राप्त हुए। व्यतिक्रमत्याग आदि ३ अनंकित हैं। अतः तीन घटाया तो आया १। पुनः नीचे से ऊपर की ओर गिनने पर प्रथम खंड को अंतिम खंड समझना। अतः अंतिम खंड में २१ भेद हैं इसलिए १ X २१ का गुणा किया आया २१। सत्यव्रतादि २० अनंकित हैं। अतः २१-२० = १ इस अंतिम में एक शेष रहने पर आगे कुछ भी गुणा न करने से यह पहला भंग प्राप्त हुआ।

अ.व्र. X अ.त्या X भू.र. X क्ष.ध. X स्त्री. त्या. X आ.त्या. X आलो.प्राय.

१ X १० = १० - ९ = १ X १० = १० - ९ = १ X १० - ९ = १ X १०

१० - ९ = १ X १० = १० - ९ = १ X ४ = ४ - ३ = १ X २१ = २१ - २० = १ला भंग

प. व्र. X अ. त्या X भू.र. X क्ष.ध. X स्त्री त्या. X आ. त्या. X आलो. प्राय.

१ X १० = १० - ९ = १ X १० = १० - ९ = १ X १०= १० - ९ = १ X १०

१० - ९ = १ X १० = १० -९ = १ X ४ = ४ - ३ = १ X २१ = २१ - १६ = ५वाँ भंग

ब्र. व्र. X व्य.त्या X भू.र. X क्ष.ध. X स्त्री. त्या. X आ. त्या. X आलो. प्राय.

१ X १० = १० - ९ = १ X १० = १० - ९ = १ X १०= १० - ९ = १ X १०

१० - ९ = १ X १० = १० - ९ = १ X ४ = ४ - २ = २ X २१ = ४२ - १७ = २५वाँ भंग

अहिं. व्र. X अना.त्या X प्रत्ये.र. X आर्ज. ध. X स्त्री. त्या. X आ. त्या. X आलो. प्राय.

१X १० = १० - ९ = १ X १० = १० - ९ = १ X १०= १० - ९ = १X१० = १०

१० - ७ = ३ X १० = ३० - ५ = २५ X ४ = १०० X २१ = २१०० - २० =२०८०वां भंग

अज्ञा.त्या. X व्य.त्या X अग्नि.र. X क्ष.ध. X स्त्री. त्या. X आ. त्या. X आलो. प्राय.

१ X १० = १० - ९ = १ X १० = १० - ९ = १ X १० = १० - ९ = १ X १० = १० - ९ = १ X १० = १०

१० - ७ = ३ X ४ = १२ - २ = १० X २१ = २१०० - १ २०९९ =२०९९ वां भंग

मनो. त्या. X अना.त्या. X द्वी.र. X तप. ध. X प्रियश.त्या. X अनु. त्या. X आलो. प्राय.
१ X १० = १० - ९ = १ X १० = १० - ८ = २ X १० = २० - ६ = १४ X १० = १४० - ३ = १३७ X १० = १३७०
१३७० - ३ = १३६७ X ४ = ५४६८ X २१ = ११४८२८ - ७ = ११४८२१ वां भंग
अरति. X अति.त्या. X पंचें.र. X आकिं. ध. X कुशी. त्या. X बहु. त्या. X तप. प्राय.
१ X १० = १० - ४ = ६ X १० = ६० - २ = ५८ X १० = ५८० - २ = ५७८ X १० = ५७८० - १ = ५७७९ X १०
५७७९० X ४ = २३११६० - १ = २३११५९ X २१ = ४८५४३३९ - १० = ४८५४३२९ वां भंग
इंद्रि.जय X अना.त्या. X पंचें.र. X ब्र. ध. X रात्रि. त्या. X तत्सेवी. X श्रद्धान. प्राय.
१ X १० = १० X १० = १०० X १० = १००० X १० = १०००० X १० = १०००००
१००००० X ४ = ४००००० X २१ = ८४००००० वां भंग

प्र.७४-इन चौरासी लाख उत्तरगुणों को जानने से क्या लाभ है?

उत्तर- इन गुणों को जानने से आत्म विशुद्धि बढ़ती है तथा बाह्य में सदाचार की भी वृद्धि होती है, आदर सम्मान प्राप्त होता है तथा शिष्यों आदि की भी प्राप्ति होती है। धर्मध्यान और शुक्लध्यान की भी प्राप्ति होती है। कदाचित् उत्कृष्ट धर्मध्यान नहीं प्राप्त हुआ तो मोक्ष प्राप्ति के बिना उत्कृष्ट वैमानिकदेव पद को प्राप्त कर, पुनः बाद में चरम शरीरी मनुष्यपना प्राप्त कर, मुनिपद अंगीकार कर, घोर तपश्चरण कर, क्षपकश्रेणी आरोहण कर क्रमशः कर्मों को क्षयकर मोक्ष प्राप्त करना ही लाभ है।

प्र.७५-इन गुणों को जानने से ऐसे उत्कृष्ट पद की प्राप्ति कैसे हो सकती है?

उत्तर- सम्यक् रत्नत्रय पूर्वक इन गुणों का चिंतन करने से पापाश्रव रुकता है, पुण्य कर्मों की वृद्धि होती है, पूर्वबद्ध कर्मों की निर्जरा होती है जिससे इन पदों की प्राप्ति होती है।

प्र.७६-इन पदों की प्राप्ति कैसे हो सकती है?

उत्तर- क्योंकि गुणों का चिंतन और तद्रूप परिणमन करने से अशुभप्रकृतियों का स्थितिकांडकघात और अनुभागकांडकघात होता है। कषायों का दमन होने से परिणामों में निर्मलता आती है, परिणामों की निर्मलता से शुभप्रकृतियों के स्थितिबंध और अनुभागबंध में वृद्धि होती है, पापकर्मों का संवर होता है तथा जैसे जैसे गुणस्थान वृद्धि को प्राप्त होते जाते हैं वैसे वैसे पुण्य प्रकृतियों का भी संवर होता जाता है, साथ साथ असंख्यात गुणश्रेणी कर्मों की निर्जरा होने से केवलज्ञान प्राप्त कर बाद में मोक्ष प्राप्त कर लेता है।

प्र.७७-इन गुणों को जानने की क्या आवश्यकता है?

उत्तर- यदि आप गुणवान बनना चाहते हैं तो गुणों को जानना जरूरी है क्योंकि गुणों को जाने बिना और परिणमन हुए बिना गुणवान बनने का कोई दूसरा उपाय नहीं है अतः जानना आवश्यक है जैसे कोई व्यक्ति धनवान बनना चाहता है तो धनवानों को पहंचाने, संगति करे, आज्ञा का पालन करे, व्यापारी बनना है तो व्यापारी की संगति करे, वैद्यिक सीखना चाहता है तो वैद्य की संगति करे, साधु बनना है तो साधु की संगति करे। अतः गुणवान बनने के लिए गुणवानों की जानकारी संगति, आज्ञापालन करना ही होगी तभी गुणवान बन सकते हैं, अन्यथा नहीं चाहे कितना ही परिश्रम करो।

प्र.७८-शंका की है जानने की और समाधान किया है संगति का, सो यह कैसे?

उत्तर- आपकी शंका ठीक है किंतु संगति किये बिना आप कैसे जानोगे? जानने के लिए आपको संगति पहले करनी ही पड़ेगी तब बाद में जानकारी प्राप्त होगी।

प्र.७९-इन गुणों को कौन जानेगा?

उत्तर- इन गुणों की पहंचान जीव करेगा, अजीव नहीं और जीव का चित्र तथा प्रतिबिंब भी नहीं।

प्र.८०-कौन सा जीव करेगा?

उत्तर- आसन्न भव्य जीव करेगा, अन्य नहीं क्योंकि अभव्य जीव और दूरानुदूर भव्य जीव में योग्यता होने पर भी मिथ्यात्वपना होने से यथार्थ में नहीं जान पाता। अतः जो भव्य है, सैनी है, पर्याप्त है, कर्मभूमिज है, शुभ लेश्यावाला है, संयमी है, विशुद्ध परिणाम वाला है, साकार उपयोग वाला है, जागृत है, व्रत, समिति और गुप्तियों से सहित हो तभी गुणों का यथार्थ ज्ञानी हो सकता है, अन्यथा नहीं।

प्र.८१-क्या ये गुण द्रव्यरूप हैं, गुणरूप हैं या पयार्यरूप हैं?

उत्तर- ये चौरासी लाख उत्तर गुण पर्यायरूप हैं तथा उत्पत्ति की अपेक्षा औपशमिकभाव, क्षायोपशमिक भाव और क्षायिकभाव हो सकते हैं किंतु पूर्ति क्षायिक भाव में ही होती है।

प्र.८२-इन उत्तर गुणों को द्रव्य और गुणरूप मानने में क्या आपत्ति है ?

उत्तर- इन गुणों को एक जीव की अपेक्षा द्रव्य और गुण रूप में मानने पर अनादि मानना पड़ेगा और ये गुण अनादि होते नहीं, यदि इन गुणों को अनादि माना जाय तो मिथ्यादृष्टिपना, असंयमीपना नहीं बन सकता यह आपत्ति है अतः ये गुण पर्याय रूप हैं, नैमित्तिक हैं, उत्पाद व्यय धर्म वाले हैं। दूसरी आपत्ति यह है कि इन गुणों को गर्भ जन्म से मानने का प्रसंग आयेगा जो आगम विरुद्ध है क्योंकि ये गुण संयमी मुनियों के ही हो सकते हैं, असंयमी के नहीं।

प्र.८३-हो सकते हैं ऐसा क्यों कहा ?

उत्तर- कदाचित् कोई वैरागी श्रावक मुनिदीक्षा लेकर अन्तर्मुहूर्त में केवलज्ञान या समाधि प्राप्त कर सकते हैं अतः हो सकते हैं ऐसा कहा है।

प्र.८४-इन गुणों का सम्बन्ध अंतरंग से है या बहिरंग से?

उत्तर- इन गुणों का सम्बन्ध अंतरंग और बहिरंग से है। जैसे बाहुबली ने मुनिदीक्षा लेकर सारे गुणों का विकाश भाव रूप से किया, प्रवृत्तिरूप से नहीं क्योंकि छद्मस्थावस्था में उन्होंने विहार ही नहीं किया तथा दूसरे मुनिजन चरणानुयोग के अनुसार प्रवृत्ति के माध्यम से गुणों को उत्पन्न करते हैं और द्रव्यानुयोगानुसार कर्मों के उपशम क्षय और क्षयोपशम से उत्पन्न होते हैं, जो कदाचित् दृष्टिगोचर भी हो जाते हैं तथा इन गुणों की जानकारी चरणानुयोग, कर्म सिद्धान्त और द्रव्यानुयोग से भली प्रकार हो सकती है क्योंकि चरणानुयोग में बाह्य ग्रहण और त्याग की मुख्यता से, कर्म सिद्धान्त में कर्मों के बंध उदय, सत्त्वादि की अपेक्षा से और द्रव्यानुयोग में केवल भावों की मुख्यता से विचार किया जाता है।

प्र.८५-पंचनमस्कार मंत्र को पूर्णरूप से उच्चारण करो?

उत्तर- णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं, णमो उवज्झायाणं, णमो लोये सव्व साहूणं।

प्र.८६-यह तो आपने अधूरा उच्चारण किया है?

उत्तर- समाधान कर्ता से शंकाकार पूंछता है कि आप ही बतायें कि णमोकार मंत्र पूरा कैसे उच्चारण किया जाता है। समाधान कर्ता ने पूरा उच्चारण ऐसे किया। णमो लोये सव्व अरिहंताणं। णमो लोये सव्व सिद्धाणं। णमो लोये सव्व आइरियाणं। णमो लोये सव्व उवज्झायाणं। णमो लोये सव्व साहूणं।

प्र.८७-इस प्रकार हमने आजतक न तो पढ़ा है और न सुना है ?

उत्तर- आप का कहना सही है कि वर्तमान में इसका उच्चारण ऐसे ही किया जाता है किंतु **लोये सव्व** पद अन्त्य दीपक है और इसको प्रत्येक पद में लगाकर उच्चारण करना चाहिए। भ.आ. गा. ७५३ की टीका में कहा है:- अत्र नमस्कार सूत्रेण **णमो लोए सव्व साधूणं** इत्यत्र लोए सव्व प्रत्येकमभिसंबंध्यते। **णमो लोए सव्वेसिं अरिहंताणं, णमो लोए सव्वेसिं सिद्धाणं, णमो लोए सव्वेसिं आयरियाणं, णमो लोए सव्वेसिं उवज्झायाणं** इति।

प्र.८८-अरिहंताणं इत्यादि में बहुवचन के निर्देश से ही सब अरिहंतों का ग्रहण करना सिद्ध है अतः सर्व शब्द का ग्रहण करना उचित नहीं है?

उत्तर- ढाईद्वीप के भरत, ऐरावत और विदेहक्षेत्रों में पंचपरमेष्ठी भूतकाल में हुए हैं, वर्तमान में हैं और भविष्य में होंगे अतः उन सबके संग्रह के लिए गाथा सूत्र में **सव्व** शब्द का ग्रहण किया है और विशेष आदर बतलाने के लिए प्रत्येक के साथ **णमो** शब्द लगाया है।

प्र.८९-ऐसा न कोई उच्चारण करता है न कोई बताता है?

उत्तर- लोकव्यवहार में एक ऐसी पद्धति प्रचलित है कि जिसका प्रचार प्रसार हुये बहुत समय व्यतीत हो गया है वही पद्धति राजमार्ग बन जाती है और अति प्राचीन पद्धति प्रायः कर लुप्त हो जाती है तथा सूत्रों में एक ही पद को बारबार नहीं लिखा जाता है किंतु एक ही बार लिखकर शेष का लोप कर दिया जाता है। अतः **लोये सव्व** इतना पद लोप कर गाथा सूत्र बनाया गया और इसी का सर्वत्र प्रचार प्रसार हुआ, शास्त्रों में, छोटी छोटी पुस्तकों में भी लिख कर छापा गया है। सर्वत्र पढ़ाया गया यह बात केवल दिगम्बरों में ही नहीं किंतु जैन समाज के सभी सम्प्रदायों में प्रचार प्रसार हुआ। इसलिए यदि कोई यथार्थ वस्तु या नियम को नहीं बताता हो तो उसका सर्वत्र लोप नहीं होता अतः गाथा और सूत्रकारों को छोड़कर व्याख्याकारों को, प्रवचनकारों को चाहिए कि वे पौर्वापर्य संबंध को मिलाकर गूढ़ रहस्य को भी बतलाएं तथा पक्षपात का सहारा लेकर छिपाये नहीं।

प्र.९०-अन्त्यदीपक किसे कहते हैं ?

उत्तर- जैसे कमरे के आदि मध्य भाग को स्पर्शकर अन्त्य में दीपक को पहुंचाया जाये रखा जाये तो उसे अन्त्यदीपक कहते हैं क्योंकि अंत में स्थित होने से अन्त्य दीपक कहा जाता है। जो कमरे के प्रारम्भ में रखा जाये उसे आदि दीपक और जो कमरे के मध्य में रखा जाय उसे मध्य दीपक कहते हैं ये तीनों ही दीपक परस्पर में सापेक्ष होकर कमरे को प्रकाशित करते हैं वैसे ही गाथाओं में, सूत्रों में प्रयुक्त पद अपने अर्थ को पूर्ण रूप से प्रकाशित करते हैं। हाँ इतना अवश्य है कि कोई श्रोता या वक्ता गूढ़ अर्थ को न समझ पाये यह भिन्न बात है। सो सूत्रकर्ता का दोष नहीं है, समझने वाले का दोष है। जैसे भ. आदिनाथ के उपदेश को यथार्थ न समझकर मारीच चर्तुगति में भटक गया इसमें

भ. आदिनाथ का दोष नहीं था किंतु मारीच का ही दोष था।

प्र.९१-णमो अरिहंताणं ऐसा बहुवचन का उच्चारण करने से सभी अरिहंतों को नमस्कार हो यह अर्थ तो निकल ही आता है फिर 'लोये सव्व' इतना पद देने की क्या जरूरत है?

उत्तर- ठीक है, आपकी शंका के अनुसार फिर तो णमो लोये सव्व साहूणं इस में भी **लोये सव्व** इस पद की योजना करने की क्या आवश्यकता है? यदि अंतिमपद में **लोये सव्व** देने की जरूरत है तो आदि के चार परमेष्ठियों के साथ में देने की आवश्यकता है।

प्र.९२-इस पंच नमस्कार मंत्र में कितने अक्षर हैं?

उत्तर- इस नमस्कार मंत्र में ३५ अक्षर हैं।

प्र.९३-यह तो समाधान अधूरा है?

उत्तर- तो पूरा समाधान इस प्रकार है कि **'लोये सव्व'** ये चार अक्षर आदि के चार पदों के साथ में जोड़ देने से ३५ + १६ = ५१ अक्षर हुए अतः णमोकार मंत्र में **५१ अक्षर** होते हैं।

प्र.९४-णमोकार मंत्र में मात्रायें कितनी हैं?

उत्तर- इस मंत्र में **५८ मात्रायें** हैं।

प्र.९५-यह तो समाधान अधूरा है?

उत्तर- तो पूरा समाधान इस प्रकार है कि पूर्वोक्त ५८ मात्राओं में **लोये सव्व** इसकी ७ मात्राओं को और चारों पदों की २८ हुई इनको मिलाने से ५८ + २८ = **८६ मात्रायें** हुई।

प्र.९६-णमोकार मंत्र के विस्तार को सुनकर या पढ़कर तो बड़ा सन्देह पैदा हो जायेगा आज वर्तमान में णमोकार मंत्र के ३५ उपवास किये जाते हैं और इसी प्रकार की कथा, पूजा और विधान है, शिक्षण शिबिरों में पढ़ाया जाता है परीक्षा ली जाती है तो यह सब मिथ्या हो जायेगा, या तो आपका कथन गलत है या पूर्व का कथन गलत है?

उत्तर- आपकी शंका ठीक है क्योंकि आपने केवल एक ही प्रकार से अपने जीवन में पढ़ा और सुना है अतः सन्देह होना ही चाहिए। आगम में मोक्षमार्गी श्रोता तीन प्रकार के बताये हैं यथा - कोई अति संक्षेप में विषय को समझ लेते हैं, कोई अति विस्तार से तत्त्वों को समझ लेते हैं और कोई मध्यम रीति से समझ लेते हैं। जैसे णमोकार मंत्र को अतिसंक्षेप से समझने के लिए ॐ मंत्र पर्याप्त है क्योंकि इस ॐ में समस्त तत्त्व, पंच परमेष्ठियों तथा जिनवाणी आदि का समावेश हुआ है। अति विस्तार से ५१ अक्षर और मध्यम रुचिवालों के लिए ३५, १६, ६, ५ अक्षरों में पूरे मंत्रों को समझ लेना चाहिए। अतः श्रोताओं की दृष्टि से सभी कथन सही हैं।

प्र.९७-णमोकार मंत्र का अधिक से अधिक विस्तार और कम से कम संकोच कहाँ तक हो सकता है?

उत्तर- णमोकार मंत्र का अधिक से अधिक ५१ अक्षरों तक तथा कम से कम एक अक्षर तक हो सकता है यानि अक्षरों की गणना में कम ज्यादा होने पर भी शक्ति में कमी नहीं होगी जैसे, चूर्ण में, गोली में, रस में, रसायन में और इन्जेक्शन आदि में आगे आगे मात्रा कम कम है तो भी रोग नाशक शक्ति बराबर है इसमें कमी नहीं है ऐसे ही अक्षरों की गणना में कमी होने पर भी संसार को छेदने की सामर्थ्य में कमी नहीं है वह तो बराबर है।

प्र.९८-क्या संसार का छेद किया जा सकता है?

उत्तर- नहीं, बाह्य द्रव्य संसार का छेद नहीं हो सकता है क्योंकि वह भिन्न द्रव्य है किंतु जो भाव मिथ्यात्रय अपने में विद्यमान है सो उस भाव रूप संसार का विच्छेद हो सकता है और भाव संसार का अंत हुआ तो स्व अशुद्ध द्रव्य, क्षेत्र, काल और भव संसार का विच्छेद अवश्य ही हो जाता है क्योंकि एक के अशुद्ध होने पर शेष सभी अशुद्ध और एक के शुद्ध होने पर कालांतर में सभी शुद्ध हो जाते हैं। **देर हो सकती है अंधेर नहीं** इसी तरह एक विकार के विच्छेद होने पर क्रमशः सभी विकारों का विच्छेद हो जाता है और एक के संबंध रहने पर सभी का संबंध बना रहता है।

प्र.९९-मिथ्यात्रय क्या वस्तु है यह तो हमने कभी सुना ही नहीं है?

उत्तर- मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान और मिथ्याचारित्र को ही मिथ्यात्रय कहते हैं।

प्र.१००-णमोकार मंत्र का विस्तार या संकोच क्यों बतलाया?

उत्तर- जिस प्रकार शब्द रूप में णमोकार मंत्र का संकोच विस्तार होता है उसी प्रकार पंचपरमेष्ठियों में संकोच विस्तार न होकर पंच परमेष्ठियों के नाम और साधनानुसार उत्पन्न हुए इन चौरासी लाख मंत्रों के अक्षरों में भी संकोच विस्तार होता है। अतः दोनों में साम्यता बतलाने के लिए संकोच विस्तार का कथन किया है जैसे **ॐ ह्रीं आयै नमः** यह संक्षेप रूप में पहला मंत्र है और इसीका विस्तार रूप **ॐ ह्रीं क्लीं अहिंसामहाव्रत अतिक्रमत्याग भूमि की रक्षा क्षमाधर्म स्त्री संसर्ग त्याग आकंपित दोष त्याग आलोचना प्रायश्चित्ताय नमः।** यह ५० अक्षरोंवाला पहला मंत्र है। आगे **ॐ ह्रीं अहिंसा महाव्रत अनाचार त्याग साधारण वनस्पतिकायिक जीव की रक्षा ब्रह्मचर्य धर्म प्रणीतरस आहार त्याग अनुमानित दोष त्याग प्रतिक्रमण प्रायश्चित्ताय नमः।** इस मंत्र में बीजाक्षरों को जोड़ देने से करीब ७० अक्षरोंवाला सप्त भंगी मंत्र बन जायेगा और संक्षेप में **आसाप्रायः नमः** इस में ॐ जोड़ देने से सात अक्षरों का मंत्र बन जायेगा।

प्र.१०१-मंत्र किसे कहते हैं?

उत्तर- स्युमंत्र्यंते गुप्तं भाष्यंते मंत्रविद्भिरिति मंत्राः - मंत्रज्ञानियों के द्वारा जो विशेष भावों को शब्दों के द्वारा गुप्त रूप से कहा गया है उसे मंत्र कहते हैं। अथवा **अकारादिहकारान्ता वर्णा मंत्राः प्रकीर्तिताः** - अकार से हकार पर्यंत स्वतंत्र असहाय होकर अथवा परस्पर में मिले हुए स्वर व्यंजनों को मंत्र कहते हैं।

प्र.१०२-मंत्र का व्युत्पत्ति अर्थ क्या है?

उत्तर- मंत्र का व्युत्पत्ति अर्थ यह है कि - चुरादिगण पठित मत्रिति धातोः इदित्त्वान्नुमि विभक्ति कार्य मंत्र इति सिद्धम् - मत्र् + नुम् + अच् = मंत्रः। चुरादिगण में पठित मत्र् धातु से नुम् का आगमकर अच्

प्रत्यय लगाने के बाद विभक्ति प्रत्यय कर मंत्र संज्ञा सिद्ध होती है।

प्र.१०३-मंत्र के कितने भेद होते हैं, नाम कौन कौन हैं?

उत्तर- मंत्र के दो भेद होते हैं? १. भावात्मक और २. वचनात्मक।

प्र.१०४-भावात्मक मंत्र किसे कहते हैं, कितने भेद होते हैं और लक्षण क्या है?

उत्तर- आत्म भावों को भावात्मक मंत्र कहते हैं। इसके दो भेद होते हैं। यदि संसारी जीवों को सुखी देखकर उनको दुःखी बनाने के लिए जो कलुषित परिणाम होते हैं उसे अशुभ पाप या नीचभाव मंत्र कहते हैं तथा दीन दुःखी जीवों को देखकर सुखी करने के लिए जो परिणाम होते हैं उसे शुभ पुण्य या उच्चभाव मंत्र कहते हैं। इनका उदाहरण है अशुभ तैजस समुद्घात, शुभ तैजस समुद्घात, अनेक ऋद्धियाँ जो आगम ग्रन्थों में पढ़ीं जातीं हैं।

प्र.१०५-वचनात्मक मंत्र किसे कहते हैं और कितने भेद हैं?

उत्तर- भावों के अनुसार कंठ, तालु, जिह्वा आदि के संचरण से जो ध्वनि उत्पन्न होती है उसे वचनात्मक मंत्र कहते हैं। इसके दो भेद हैं- शुभ और अशुभ।

प्र.१०६-शुभ वचनात्मकमंत्र किसे कहते हैं ?

उत्तर- शुभ भावों से रचित वचन प्रयोग को शुभवचनात्मक मंत्र कहते हैं।

प्र.१०७-अशुभ वचनात्मक मंत्र किसे कहते हैं?

उत्तर- अशुभ भावों से रचित वचन प्रयोग को अशुभ वचनात्मक मंत्र कहते हैं अथवा दूसरे प्रकार से मंत्र दो प्रकार के होते हैं- १. कल्याणकारी २. आजिविका संबंधी।

प्र.१०८-कल्याणकारी मंत्र किसे कहते हैं?

उत्तर- जिन मंत्रों के ध्यान से ध्याता के असंख्यात गुणश्रेणी रूप से पूर्वबद्ध कर्मों की निर्जरा हो, नवीन कर्मों का संवर हो और अंत में शुक्लध्यान को, केवलज्ञान को तथा मोक्ष को प्राप्त करायें उसे कल्याणकारी मंत्र कहते हैं। जैसे आत्मद्रव्यवाचक, आत्मगुणवाचक, आत्मपर्याय या परमेष्ठीवाचक पद अक्षर आदि कल्याणकारी मंत्र हैं अथवा कषाय रहित होकर छहों द्रव्यों के स्वरूप आदि अवस्थाओं के चिंतन करने को कल्याणकारी मंत्र कहते हैं।

प्र.१०९-आजीविका सम्बन्धी मंत्र किसे कहते हैं?

उत्तर- जिन मंत्रों के द्वारा संख्यात असंख्यात और अनन्त जीवों की रक्षा करते हुए उदरपूर्ति और परिवार आदि के पालनपोषणार्थ शुद्ध सात्त्विक सामग्री की प्राप्ति हो उसे आजीविका मंत्र कहते हैं।

प्र.११०-इन मंत्रों का फल क्या है?

उत्तर- जब इन्हीं मंत्रों का जप, ध्यान आदि सांसारिक स्वार्थ पूर्वक किया जाता है तब सातिशय या निरतिशय पुण्य बंध कराकर, सांसारिक सफलता दिलाकर अंत में मोक्षसुख प्राप्त कराना किंतु इन मंत्रों का आजीविका के निमित्त प्रयोग करते समय संख्यात, असंख्यात और अनंत जीवों की प्रत्यक्ष में विराधना नहीं होनी चाहिए। यदि विराधना हुई तो ये मंत्र मिथ्यामंत्र कहलाने लगेंगे। अतः भव्यों को चाहिए कि वे अपना लक्ष्य न बिगाड़ें। निदान आर्तध्यान, सशल्य पूर्वक मंत्र आराधना करने से

नारायण, प्रतिनारायण, नारद, रौद्र आदि शलाका पुरुष, पुण्यपुरुष होकर भी अधोगति के पात्र हुए यही इन दोनों मंत्रों का फल है।

प्र.१११-मंत्र के और भी भेद हैं क्या?

उत्तर- हाँ, मंत्र तीन प्रकार के होते हैं - १. बीजमंत्र २. मंत्र ३. मालामंत्र।

प्र.११२-बीजमंत्र किसे कहते हैं?

उत्तर- एक अक्षर से लेकर ९ बीजाक्षरों तक के समूह को बीज मंत्र कहते हैं।

प्र.११३-मंत्र किसे कहते हैं?

उत्तर- दश बीजपदों से लेकर २० बीजपदों तक के समूह को मंत्र कहते हैं।

प्र.११४-मालामंत्र किसे कहते हैं?

उत्तर- जिनमें २० पदों के अक्षर समूह हों या अधिक संख्या में हों तो उन अक्षर समूह को माला मंत्र कहते हैं। जो ये हमने चौरासी लाख उत्तर गुणों के भंग लिखे हैं वे मंत्र विधि से मंत्र बनाने पर विस्तार रूप में मालामंत्र कहलाते हैं तथा व्याकरण के नियमानुसार संधि करके संक्षिप्त रूप में बीजाक्षर होने से कोई मंत्र बन जाते हैं और कोई बीजमंत्र बन जाते हैं।

प्र.११५-ये मंत्र अपना फल कब देते हैं?

उत्तर- बीजमंत्र सदा ही सिद्ध हो जाते हैं। मंत्र नाम वाले मंत्र जपने वाले को यौवनावस्था में ही फल देते हैं। मालामंत्र वृद्धावस्था में फल देते हैं। अथवा लिंग की दृष्टि से मंत्र के तीन भेद हैं स्त्री, पुरुष और नंपुसक।

प्र.११६-स्त्रीमंत्र किसे कहते हैं?

उत्तर- जिन मंत्रों के अंत में श्री व स्वाहा शब्द होते हैं उन्हें स्त्री मंत्र कहते हैं।

प्र.११७-पुल्लिग मंत्र किसे कहते हैं?

उत्तर- हुँ, वषट्, फट्, घे, स्वधा आदि पल्लव जिनमें होते हैं उन्हें पुल्लिग मंत्र कहते हैं।

प्र.११८-नपुंसकमंत्र किसे कहते हैं?

उत्तर- नमः जिन मंत्रों के अंत में है उन्हें नपुंसक मंत्र कहते हैं।

प्र.११९-इन मंत्रों का प्रयोग कहाँ किन कार्यों में करना चाहिए?

उत्तर- स्त्री मंत्रों का प्रयोग पाप नष्ट करने में, पुरुष मंत्रों का प्रयोग शुभ कार्य, मारन, उच्चाटन निर्विषीकरण और वशीकरण में करें। उच्चाटन आदि शेष कार्यों में नपुंसक मंत्रों का प्रयोग करें।

प्र.१२०-आग्नेयमंत्र किसे कहते हैं?

उत्तर- प्रणव, अग्नि और आकाश बीजों वाले मंत्रों को आग्नेय मंत्र कहते हैं। दूसरे आचार्य सौर्य बीजों को सौम्य और फट् अंतवाले मंत्रों को आग्नेय मंत्र कहते हैं।

प्र.१२१-सौम्यमंत्र किसे कहते हैं?

उत्तर- आग्नेय मंत्रों के अंत में नमः लगा देने से उसे सौम्य मंत्र कहते हैं। मारण, उच्चाटन आदि में

आग्नेय मंत्र बतलावें। शांत, वशीकरण, पौष्टिक आदि कार्यों में सौम्य मंत्रों को बतलावें। आग्नेय मंत्र के लिये सायंकाल वाम स्वर और जागृत मंत्र कहा है तथा सौम्य के लिये इससे उल्टा लेना चाहिए।

प्र.१२२-शांति मंत्र फल कब देते हैं?

उत्तर- जिस मंत्र से रोग, पीड़ा, उपसर्ग, भय शमन हो उसे शान्ति मंत्र कहते हैं अथवा मन कषायों के क्षय से, उपशम से या क्षयोपशम से आत्मस्वभाव में स्थिर हो उसे शान्ति मंत्र कहते हैं।

प्र.१२३-स्तम्भन मंत्र किसे कहते हैं?

उत्तर- जिस मंत्र के द्वारा मनुष्य, पशु, पक्षी आदि जीवों की गति, हलन चलन आदि क्रियायें कीलित हो जायें अथवा सम्यक्रत्नत्रय पूर्वक मन को किसी एक विषय में रोकने को स्तम्भन मंत्र कहते हैं।

प्र.१२४-मोहन मंत्र किसे कहते हैं?

उत्तर- जिन मंत्रों के द्वारा मनुष्यादि मोहित हो जायें उसे अथवा जिन बीजाक्षरों के द्वारा अपना मन अपनी आत्मा में आसक्ति को, परम प्रीतिभाव को प्राप्त हो उसे मोहन मंत्र कहते हैं।

प्र.१२५-उच्चाटन मंत्र किसे कहते हैं?

उत्तर- जिन मंत्रों के प्रभाव से मनुष्य, पशु, पक्षी अपने स्थान से भ्रष्ट हों, अपनी गरिमा नष्ट कर दें उसे या जिन मंत्रों के द्वारा दुर्ध्यानों से मन हटकर धर्मध्यान में लग जाये उसे उच्चाटन मंत्र कहते हैं।

प्र.१२६-वशीकरण मंत्र किसे कहते हैं?

उत्तर- जिन मंत्रों के द्वारा अन्य स्त्री, पुरुष अपने वश में हो जायें उसे अथवा जिन आत्मभावों के द्वारा इन्द्रिय और मन अपने वश में हो जायें उसे वशीकरण मंत्र कहते हैं।

प्र.१२७-आकर्षण मंत्र किसे कहते हैं?

उत्तर- जिन बीजाक्षरों के द्वारा मनुष्य अपने से आकर्षित होकर निकट आ जाये उन्हें अथवा अपना मन रत्नत्रय स्वरूप आत्मा में आकर लगाव झुकावपने को प्राप्त हो जाये उसे आकर्षण मंत्र कहते हैं।

प्र.१२८-जृंभण मंत्र किसे कहते हैं?

उत्तर- जिस मंत्र के प्रभाव से मनुष्य अपनी आज्ञानुसार कार्य करे उसे अथवा आत्मानुकूल इन्द्रिय और मन अपना कार्य करें उसे जृंभण मंत्र कहते हैं।

प्र.१२९-वशीकरण मंत्र और जृंभण मंत्र में क्या अंतर है तथा उदाहरण बताओ?

उत्तर- वशीकरण मंत्र की आराधना से मनुष्यादि वश में तो हो सकते हैं किंतु आज्ञाकारी हों या नहीं भी हो कारण आधीनता तो स्वीकार की परन्तु आज्ञाकारी नहीं बना किंतु जृंभण मंत्र की आराधना से समर्पित होकर आज्ञाकारी बन जाता है यही इन दोनों में अन्तर है। जैसे मालिक के आधीन नौकर तो होता है पर आज्ञाकारी नहीं होता है और जो आज्ञाकारी दिखाई देता है वह आजीविका का आज्ञाकारी है, मालिक का नहीं किंतु भक्त आधीन और आज्ञाकारी होता है।

प्र.१३०-विद्वेषण मंत्र किसे कहते हैं?

उत्तर- जिस मंत्र के द्वारा परस्पर में दो मित्रों के बीच में फूट पड़ जाय, सम्बन्ध टूट जाय उसे या आत्मा और शरीर में एकत्व बुद्धि टूट जाय उसे या सच्ची वैराग्य भावना को ही विद्वेषण मंत्र कहते हैं।

प्र.१३१-मारण मंत्र किसे कहते हैं?

उत्तर- जिस मंत्र के द्वारा अन्य जीवों की मृत्यु हो जाय उसे अथवा जिन बीजपदों के द्वारा विषयकषाय, विषयवासना नष्ट हो जाय उसे मारण मंत्र कहते हैं।

प्र.१३२-पौष्टिक मंत्र किसे कहते हैं?

उत्तर- जिस मंत्र के प्रयोग से धन, धान्य, सौभाग्य, यश कीर्ति आदि में वृद्धि हो उसे अथवा जिन बीज पदों के द्वारा मोक्षमार्ग के प्रति दृढ़ता की वृद्धि हो उसे या निस्वार्थ होकर उपसर्ग परीषहों को जीतने की सामर्थ्य उत्पन्न हो उसे पौष्टिक मंत्र कहते हैं।

प्र.१३३-चौरासीलाख मंत्र दश प्रकार के मंत्रों में से किसमें अंतर्भाव हो जाते हैं?

उत्तर- ये चौरासी लाख मंत्र दशों प्रकार के भेदों में अन्तर्भाव को प्राप्त होते हैं। कारण जिस मंत्र से मोक्ष की प्राप्ति हो सकती है क्या उससे सांसारिक फल की प्राप्ति नहीं हो सकती है। जैसे दीपक से अंधकार नष्ट होता है, प्रकाश प्राप्त होता है, अध्ययन कर सकते हैं, किसी का चेहरा या वस्तु देख सकते हैं, किंचित् धुआं भी उत्पन्न होता है, जला सकते हैं, ठंडी दूर कर सकते हैं आदि एक ही दीपक से अनेक कार्य होते देखे जाते हैं, ऐंसे ही इन महान मंत्रों से अपनी साधना और भावों के अनुसार लौकिक और लोकोत्तर फल प्राप्त करते हैं या कर सकते हैं इसमें कोई संदेह नहीं हैं।

प्र.१३४-इन मंत्रों से लौकिक फल कैसे प्राप्त हो सकता है?

उत्तर- इन मंत्रों का जाप **पदस्थं मंत्र वाक्यस्थं** पदस्थ धर्मध्यान कहलाता है और धर्मध्यान से मोक्ष सुख प्राप्त होता है **परे मोक्षहेतू** (त.सू. ९ अ. २९ सू.) तथा यदि अचरम शरीरी है तो स्वर्ग के उत्तम भोगों को प्राप्त कर पुनः मनुष्यों में श्रेष्ठ पदवी को पाकर अनंतर मुनि होकर मोक्ष को पाता है।

प्र.१३५-क्या कोई मंत्र मिथ्या भी होते हैं?

उत्तर- नहीं, कोई भी मंत्र मिथ्या नहीं होते हैं किंतु अभिप्राय या उच्चारण गलत होने से मंत्र मिथ्या हो जाते हैं। जैसे दूध स्वादिष्ट और पौष्टिक होने पर भी विष के संसर्ग से दूध मादक, कडुवा और मारक हो जाता है। वैसे ही मंत्र मिथ्यात्व और अनंतानुबंधी कषायों से मिश्रित होने के कारण दूषित हो जाते हैं।

प्र.१३६-उदाहरण क्या है?

उत्तर- आचार्य श्री धरसेनस्वामी ने मुनिराज सुबुद्धि और नरवाहन को अक्षर न्यून तथा अक्षर अधिक मंत्र दिया था और कहा था कि बेला के उपवास का नियम लेकर पत्थर की शिला पर बैठकर सिद्ध करो। अक्षर न्यून मंत्रवाले मुनिराज को कानी देवी और अक्षर वृद्धि मंत्रवाले मुनिराज को दांत बाहर निकाले हुए दिखाई दी तब दोनों मुनिराजों ने शब्दशास्त्र तथा व्याकरणशास्त्र के नियम अनुसार मंत्र शुद्ध करके पुनः सिद्ध करना प्रारम्भ किया तब सही रूप में दिखाई दिया। अतः यहाँ पर आचार्य श्री का और युगल मुनियों का अभिप्राय गलत नहीं था किंतु मंत्र गलत था। अतः फल भी गलत प्राप्त

हुआ किंतु अंजन चोर ने मंत्र का उच्चारण पूर्णरुप से किये बिना ही उत्कृष्ट फल पा लिया। कोई कहते हैं कि अंजन चोर ने मंत्र का उच्चारण गलत किया फिर भी फल सही पाया क्योंकि भाव सही थे। ऐसी बात नहीं है, अंजन चोर ने मंत्र का उच्चारण गलत नहीं किया था किंतु भय के कारण उच्चारण पूर्ण नहीं हो पाया था जैसे आणं (सिद्धाणं) ताणं (अरिहंताणं) यहाँ क्या गलत था? गलत नहीं था किंतु उच्चारण अपूर्ण था। एक तीसरा उदाहरण दिया जाता है-मंत्र सही है अभिप्राय सही है फिर भी फल सही प्राप्त नहीं हुआ कारण बिच्छु ने काटा है और सांप का मंत्र है तब विष कैसे दूर होगा? इसलिए मंत्र भी आपत्ति के अनुसार आपत्ति नाशक चाहिए और तदनुकूल साधना भी चाहिए तो आपत्ति दूर हो सकती है, अन्यथा नहीं। जैसे रोग को दूर करने के लिए औषधि का ज्ञान विश्वास और तदनुकूल प्रयोग करने से रोग दूर होता है

प्र.१३७-मंत्र को कम ज्यादा कर सकते हैं क्या?

उत्तर- नहीं, अपने आप नहीं कर सकते हैं। किंतु यह कार्य मंत्रवादी आचार्य के ऊपर छोड़ देना चाहिए। जैसे बीमारी को दूर करने के लिए वैद्य के पास जाते हैं तब वैद्य निदान कर औषधि को घटा बढ़ाकर देता है ऐसे ही यह कार्य आचार्य का है कि किस प्रकार का मंत्र देना है, घटाना है या बढ़ाना। यदि स्वयं जानकार हैं तब आचार्य की क्या आवश्यकता है। अतः इस कार्य का अधिकार तो गुरु को ही है शिष्य को नहीं, रोगी को नहीं। **न हि मंत्रोक्षर न्यूनो निहन्ति विषवेदनाम्।** र.क.श्रा. गाथा २१। अक्षरहीन मंत्र विष की वेदना को दूर नहीं कर सकता है, नाश नहीं कर सकता है।

प्र.१३८-मंत्र सिद्ध होगा कि नहीं यह कैसे जानकारी हो?

उत्तर- जिस मंत्र की साधना करनी है उस मंत्र के अक्षरों को तीन से गुणा करो फिर गुणनफल में अपने नाम के अक्षरों को मिलाकर बाद में १२ से भाग दो, यदि ५-९ शेष बचें तो सिद्ध होगा, ६-१० बचें तो देर से सिद्ध होगा, ७-११ शेष बचें तो अच्छा सिद्ध होगा और ८-१- २ शेष बचें तो सिद्ध नहीं होगा। कोई मंत्र अगर अपने नाम के मिलाने पर ऋण या धन आता हो, तो उस मंत्र के आदि में **ॐ ह्रीं क्लीं, श्रीं** इनमें से कोई भी बीज मंत्र के साथ जोड़ देने पर आराधना करने से मंत्र अवश्य सिद्ध होगा अथवा **यह पुरुष का ऋणी है या धनी है इसकी जानकारी कैसे हो-** किसी पुरुष या स्त्री से कोई कार्य लेने के लिए मंत्र जपना हो तो निम्न प्रकार के उपाय से विचार करें कि काम देने वाला व्यक्ति साधक का ऋणी है या नहीं। यदि साधक का ऋणी होगा तो कार्य निश्चय रूप से पूर्ण होगा नीचे लिखे कोष्टक से वर्ण और उनकी शत्रु और मित्रता का ज्ञान हो जायेगा। इस कोष्टक में ऋणी धनी इस रीति से देखा जा सकता है कि दोनों पुरुषों के वर्ग की संख्या को पृथक् पृथक् दो से गुणा करके इसकी वर्ग संख्या उसमें और उसका इसमें जोड़ दे तथा दोनों में ८ का भाग दें जिसका अंक शेष में अधिक हो वह ऋणी और जिसका न्यून हो वह धनी अर्थात् अधिक अंक वाला न्यून अंक वाले को धन देगा। जैसे सेठ भगवानदास के पास नंदकिशोर नौकरी चाहता है तो उसको मिलेगी या नहीं। अब देखो भगवानदास की संख्या ६ है तथा नंदकिशोर की संख्या ५ है दोनों को दो से गुणा किया तो ६ X २ = १२ और ५ X २ = १० अब इसमें एक दूसरे के वर्ग की संख्या जोड़ दो फिर ८ का भाग दो १२+५ = १७ ÷ ८ = १ शेष। १० + ६ = १६ ÷ ८ = ० शेष। यहाँ ० के शेष से भगवानदास का शेष एक अधिक है अतः भगवानदास नंदकिशोर को नौकरी में रख लेगा।

ब्रह्मचर्य एवं ८४ लाख उत्तरगुण मंत्र विधान

संख्या	वर्ग का स्वामी	वर्ग के अक्षर	शत्रु	मित्र	उदासीन
१	गरुड़	अ ई उ ए	सर्प	श्वान	सिंह
२	बिलाव	क ख ग घ ङ	मूषक	सर्प	श्वान
३	सिंह	च छ ज झ ञ	मृग	मूषक	सर्प
४	श्वान	ट ठ ड ढ ण	मेष	मृग	मूषक
५	सर्प	त थ द ध न	गरुड़	मेष	मृग
६	मूषक	प फ ब भ म	बिलाव	गरुड़	मेष
७	मृग	य र ल व	सिंह	बिलाव	गरुड़
८	मेष	श ष स ह	श्वान	सिंह	बिलाव

प्र.१३९-गणित के द्वारा सब कुछ देखने पर भी यदि कार्य सिद्ध नहीं हुआ तो मंत्र का या विधि का या भाग्य का या पुरुषार्थ का या किसका दोष माना जाय?

उत्तर- द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की तथा गणित की पद्धति से पर्याप्त शुद्धि होने पर भी मंत्र का पूर्ण रूप से शुद्ध उच्चारण होना चाहिए, मंत्र साधन की विधि में किसी भी प्रकार की कमी नहीं होना चाहिए, भाग्य और पुरुषार्थ अनुकूल होना चाहिए। यदि अंतरंग और बहिरंग सामग्री में हीनाधिकपना है तो कार्य सिद्ध नहीं होगा। हाँ, इतना अवश्य है कि अपनी दृष्टि में कारण आ पाये या नहीं आ पाये किंतु **'सामग्री विकलं कार्यं न हि लोके विलोकितम्'** लोक में सामग्री के विकल होने पर कार्य नहीं देखा जाता है। चाहे वह कार्य लौकिक हो या अलौकिक।

प्र.१४०-अंतरंग सामग्री किसे कहते हैं और भाग्य किसे कहते हैं?

उत्तर- भाग्य को अंतरंग सामग्री कहते हैं और पूर्वबद्ध कर्मोदय को भाग्य कहते हैं।

प्र.१४१-बहिरंग सामग्री किसे कहते हैं?

उत्तर- कर्मोदय के अलावा कार्य में सहायक बाह्य सामग्री को बहिरंग सामग्री कहते हैं।

प्र.१४२-क्या सभी कार्यों में भाग्य और पुरुषार्थ की आवश्यकता होती है?

उत्तर- नहीं, केवल लौकिक कार्यों में भाग्य और पुरुषार्थ की आवश्यकता होती है, मोक्ष प्राप्ति के लिए नहीं। कारण मोक्ष की प्राप्ति पुरुषार्थ के आधीन है, भाग्य के आधीन नहीं क्योंकि भाग्य को नष्ट करने के लिए ही पुरुषार्थ किया जाता है। धर्म और शुक्लध्यान से पूर्वबद्ध कर्मों की असंख्यात गुणश्रेणी निर्जरा करना तथा केवली समुद्घात से भाग्य को असमय में बिना फल दिये आत्मा से

अलग करना ही पुरुषार्थ का विशेष फल है। जैसे पांडव गजकुमार आदि।

प्र.१४३-मोक्ष की प्राप्ति पुरुषार्थ के आधीन है तो कार्य की उत्पत्ति केवल पुरुषार्थ से हुई तब 'बाह्येतरोपाधि समग्रतेयं, कार्येषु ते द्रव्यगतः स्वभावः' बाह्य और अभ्यन्तर दोनों कारणों की पूर्णता से कार्य होता है यह द्रव्यगत स्वभाव है यह वाक्य गलत हो जायेगा आ. समन्तभद्र कृत स्वयंभू. ६० नं.?

उत्तर- पुरुषार्थ के द्वारा भाग्य नष्ट किया है न कि उपादान आत्मा का। सांसारिक कार्यों के लिए अंतरंग कारणों में से भाग्य ग्रहण करना चाहिए। मोक्ष के लिए अंतरंग कारण से उपादान आत्मा को ग्रहण करना चाहिए। अतः उभय कारणों से ही कार्यों की सिद्धि होती है, एक से नहीं। संसार के कार्य भाग्य और पुरुषार्थ से सिद्ध होते हैं तथा मोक्ष रूपी कार्य उपादान आत्मा और रत्नत्रय रूपी पुरुषार्थ से सिद्ध होता है लौकिक और पारलौकिक कार्य की सिद्धि उभय कारणों के आधीन है ऐसा निश्चय करना चाहिए। इसलिए धर्मध्यान और शुक्लध्यान की सिद्धि के लिए बीजपदों का, माला मंत्रों का और मंत्रों का जाप अवश्य करना चाहिए।

प्र.१४४-यह मंत्र शास्त्र क्यों लिखा और उपदेश क्यों दिया?

उत्तर- आत्मशुद्धि के लिए, धर्म प्रभावना के लिए, अजैनों को जैन बनाने के लिए और जैनों को जैन धर्म में दृढ़ करने के लिए इसकी रचना की है, उपदेश दिया है। जब तक जैनों में मंत्रों का प्रयोग होता रहा तब तक अनेक अजैन समय समय पर जैन बनते रहे और जब से जैनों में मंत्रों का प्रयोग करना बंद हो गया तब से अजैनों को जैन बनाना तो दूर रहा किंतु अनेक जैन अजैन बनते गये। कारणः- जब गृहस्थ नाना प्रतिकूलताओं से जूझते हैं तब समस्याओं का समाधान चाहते हैं और समाधान जब जैनों के पास नहीं मिला तब अजैनों के पास में जाकर मंत्र तंत्र का प्रयोग समझकर प्रयोग किया तथा सफलता प्राप्त की तब उन्हीं को गुरु बना लिया और धर्म परिवर्तन कर लिया। देखा जाता है कि जैनों के गोत्र, वंश, उपजाति आदि अजैनों में पाये जाते हैं तथा बहुत सारा रीतिरिवाज भी पाया जाता है। वर्तमान में भी अनेक जैन परिवार विदेशों में व्यापार के लिए चले गये, वो वहाँ के भोजन पढ़ाई, संगति, संस्कार के कारण अजैन बन गये केवल नाम मात्र जैनपना रहा, सदाचार समाप्त हो गया और यहीं पर अनेकों जगह जैनधर्म की शिक्षा, सत्संगति का और अच्छे धर्मानुकूल संस्कार न होने से जैन अजैन बन गये जो प्रत्यक्ष देखा जा रहा है अतः यह मंत्र शास्त्र आत्मा की रक्षा के लिए, धर्म प्रभावना के लिए राजाज्ञानुमोदित शस्त्र के समान है। जैसे सरकार शस्त्र आत्मा की, देश की, समाज की रक्षा के लिए देती है, न कि जीव विराधना के लिए। यदि कोई करे तो इसमें सरकार का क्या दोष है? ऐसे ही यदि कोई जिनेंद्र प्रणीत मंत्र का गलत प्रयोग करे तो इसमें जिनेंद्र का क्या दोष?

स्वच्छंद मनमाना बोलने वाला और आचरण करने वाले व्यक्ति का जीवन गन्ने के फूल के समान गंध हीन, गुणहीन होता है। जो जिनधर्म को, जातिकुल की परंपरा को दूषित करने वाला है।

ब्रह्मचर्य एवं ८४ लाख उत्तरगुण मंत्र विधान

कटपय पुरस्थ वर्णै, नव-नव पंचाष्ट कल्पितैः क्रमशः।
स्वर अ न शून्यं संख्या, मात्रो परिमाक्षरं त्याज्यम्।।

क से लेकर झ तक नव अक्षर

क	ख	ग	घ	ङ	च	छ	ज	झ
१	२	३	४	५	६	७	८	९

ट से लेकर ध तक नव अक्षर

ट	ठ	ड	ढ	ण	त	थ	द	ध
१	२	३	४	५	६	७	८	९

प से लेकर म तक पांच अक्षर

प	फ	ब	भ	म
१	२	३	४	५

य से लेकर ह तक आठ अक्षर

य	र	ल	व	श	ष	स	ह
१	२	३	४	५	६	७	८

ऊपर की गाथा के अनुसार स्वर अ, न के स्थान पर शून्य लेना। मात्रा और आधे अक्षर त्याज्य हैं। यह गोम्मटसार जीवकाण्ड की गाथा १५८ की टीका में है अतः गाथानुसार चौबीस तीर्थंकरों के नाम चिह्न, जन्मस्थान, पिता, माता के नाम निर्वाणस्थान ये सब लिखे गये हैं बुद्धिमान लोग इसे ध्यान देकर गलती सुधार कर पढ़ें।

णमोकार महामंत्र

शब्दों में	अंकों में
णमो अरिहंताणं	५५०२८६५
णमो सिद्धाणं	५५७९५
णमो आइरियाणं	५५००२१५
णमो उवज्झायाणं	५५०४९१५
णमो लोऐ सव्व साहूणं	५५३०७४७८५

दंसणणाणुवदेसो सिस्सग्गहणं च पोसणं तेसिं। चरिया हि सरागाणं जिणिंदपूजोवदेसो य।।२४८।। प्र.सा.

अर्थः- सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान का उपदेश करना, रत्नत्रय के आराधक शिष्यों को दीक्षा देना और उन शिष्यों के शयन भोजनादि की चिंता करना तथा पंचपरमेष्ठियों की पूजादि का उपदेश करना ये सब सराग चारित्र वाले मुनियों की दिनचर्या होती है। श्री जयसेनाचार्य कृत टीका

ब्रह्मचर्य एवं ८४ लाख उत्तरगुण मंत्र विधान

चौबीस तीर्थंकरों के नाम		चिह्न		जन्म स्थान	
	शब्दों में	अंकों में	शब्दों में	अंकों में	शब्दों में	अंकों में
(१)	आदिनाथ	०८०७	बैल	३३	अयोध्या	०११
(२)	अजितनाथ	०८६०७	हाथी	८७	अयोध्या	०११
(३)	संभवनाथ	७४४०७	घोड़ा	४३	श्रावस्ति	२४६
(४)	अभिनन्दननाथ	०४०८००७	बंदर	३८२	अयोध्या	०११
(५)	सुमतिनाथ	७५६०७	चकवा	६१४	अयोध्या	०११
(६)	पद्मप्रभु	१५२४	लालकमल	३३१५३	कौशाम्बि	१५३
(७)	सुपार्श्वनाथ	७१४०७	साथिया	७७१	बनारस	३०२७
(८)	चंद्रप्रभु	६२२४	चन्द्रमा	६२५	चंद्रपुरी	६२१२
(९)	पुष्पदंत	११८६	मगर	५३२	काकन्दी	११८
(१०)	शीतलनाथ	५६३०७	वृक्ष	०६	भद्दलपुरा	४८३१२
(११)	श्रेयांसनाथ	२१७०७	गेण्डा	३३	सिंहपुर	७८१२
(१२)	वासुपूज्य	४७११	भैंसा	४७	चंपापुर	६११२
(१३)	विमलनाथ	४५३०७	सूकर	५१२	कंपिला	११३
(१४)	अनंतनाथ	००६०७	सेहि	७८	अयोध्या	०११
(१५)	धर्मनाथ	९५०७	वज्रदण्ड	४२८३	रतनपुरी	२६०१२
(१६)	शांतिनाथ	५६०७	हिरण	८२५	हस्तिनापुर	८६०१२
(१७)	कुंथुनाथ	१७०७	बकरा	३१२	हस्तिनापुर	८६०१२
(१८)	अरहनाथ	०२८०७	मछली	५७३	हस्तिनापुर	८६०१२
(१९)	मल्लिनाथ	५३०७	कलश	१३५	मिथिला	५७३
(२०)	मुनिसुव्रतनाथ	५०७२६०७	कछुआ	१७०	राजगृह	२८०८
(२१)	नमिनाथ	०५०७	नीलकमल	०३१५३	मिथिला	५७३
(२२)	नेमिनाथ	०५०७	शंख	५२	सोरीपुर	७२१२
(२३)	पार्श्वनाथ	१४०७	सर्प	७१	बनारस	३०२७
(२४)	महावीर स्वामी	५८४२४५	सिंह	७८	कुण्डलपुर	१३३१२

पिता के नाम		माता के नाम		निर्वाण स्थान	
शब्दों में	अंकों में	शब्दों में	अंकों में	शब्दों में	अंकों में
नाभिराय	०४२१	मरुदेवी	५२८४	कैलाशगिरी	१३५३२
जितऋतु	८६०६	विजया	४८१	सम्मेदशिखर	७५८५२२
जितारी	८६२	सुषेणा	७६५	सम्मेदशिखर	७५८५२२

ब्रह्मचर्य एवं ८४ लाख उत्तरगुण मंत्र विधान

संवर	७४२	सिद्धार्था	७९७	सम्मेदशिखर	७५८५२२
मेघरथ	५४२७	मंगला	५३३	सम्मेदशिखर	७५८५२२
धरण	९२५	सुसीमा	७७५	सम्मेदशिखर	७५८५२२
सुप्रतिष्ठित	७२६२६	पृथ्वीसेना	०४७०	सम्मेदशिखर	७५८५२२
महासेन	५८७०	लक्ष्मणा	३५५	सम्मेदशिखर	७५८५२२
सुग्रीव	७२४	रामा	२५	सम्मेदशिखर	७५८५२२
दृढ़रथ	०४२७	सुनंदा	७०८	सम्मेदशिखर	७५८५२२
विष्णु	४५	विष्णुश्री	४५२	सम्मेदशिखर	७५८५२२
वसुपूज्य	४७११	जयावती	८१४६	चम्पापुर	६११२
कृतवर्मा	०६४५	जयश्यामा	८११५	सम्मेदशिखर	७५८५२२
सिंहसेन	७८७०	सर्वयशा	७४१५	सम्मेदशिखर	७५८५२२
भानु	४०	सुव्रता	७२६	सम्मेदशिखर	७५८५२२
विश्वसेन	४४७०	एरा	०२	सम्मेदशिखर	७५८५२२
शूरसेन	५२७०	श्रीमती	२५६	सम्मेदशिखर	७५८५२२
सुदर्शन	७८५०	मित्रसेना	५२७०	सम्मेदशिखर	७५८५२२
कुम्भ	१४	प्रभावती	२४४६	सम्मेदशिखर	७५८५२२
सुमित्र	७५२	पद्मावती	१५४६	सम्मेदशिखर	७५८५२२
श्रीविजय	२४८१	वप्पिला	४१३	सम्मेदशिखर	७५८५२२
समुद्रविजय	७५२४८१	शिवादेवी	५४८४	गिरनार गिरि	३२०२३२
अश्वसेन	०४७०	वामा	४५	सम्मेदशिखर	७५८५२२
सिद्धार्थ	७९७	त्रिशला	२७३	पावापुर	१४१२

आ० वासुपूज्यसागरजी की शिष्या बा. ब्र. आ. श्रेयमति

स्वर और व्यंजनों की शक्ति का वर्णन

ये चौरासी लाख मंत्र हैं जो आत्मा के मूलगुण उत्तरगुणवाचक हैं क्योंकि उत्तरगुणों के होने पर मूलगुण नियम से होते हैं किंतु मूलगुणों के होने पर उत्तरगुण हो भी सकते हैं और नहीं भी। ये मंत्र अभेद विवक्षा में द्रव्यवाचक बन जाते हैं और कदाचित् तीर्थंकर प्रकृति के उदय की अपेक्षा औदयिक तथा शेष कर्मों के क्षयोपशम, क्षय या उपशम से उत्पन्न होने के कारण पर्यायवाचक/ परमेष्ठीवाचक कहलाते हैं, परमेष्ठी पांच होते हैं जिनके नाम णमोकार मंत्र के माध्यम से पहंचाने जाते हैं। इन गुणों को प्राप्त करने की प्रतिज्ञा वैरागी आत्मा दीक्षा लेते ही संयम पूर्वक रत्नत्रय से परिणत होकर कर लेता

है किंतु जैसे जैसे ध्यान बढ़ता जाता है वैसे वैसे कर्मों के बन्धन खुलते जाते हैं, आत्म विशुद्धि बढ़ती जाती है और घातिया कर्मों को द्रव्य भावरूप से क्षय कर अनन्तचतुष्टय को प्राप्त कर बाद में अयोगी होने पर चौरासी लाख उत्तरगुण पूर्णता को प्राप्त होते हैं तथा क्षणमात्र में सिद्ध हो जाते हैं तब अनन्त गुणधर्मों की/ मंत्रों की प्राप्ति हो जाती है। अतः वर्तमान में उन आत्मगुणों की सिद्धि के लिए, पदस्थ धर्मध्यान की सिद्धि के लिए, शुक्लध्यान की प्राप्ति के अभ्यास के लिए कुछ वर्णन किया जाता है। इसलिये बाह्य विषयवासना छोड़कर स्थिरचित्त होकर साधना करनी चाहिए जिससे यदि हीन अवस्था है तो लौकिकसिद्धि होकर भवान्तर में अलौकिक सिद्धि होगी।

बीजाक्षरों की शक्ति का वर्णन

अ- अव्यय, व्यापक अखण्ड आत्मा का वाचक सूचक, शुद्ध, ज्ञान शक्ति का द्योतक, प्रणव बीज ॐ का जनक माना गया है।

आ- अव्यय, शक्ति और बुद्धि का परिचायक, सारस्वत बीज का जनक, माया बीज के साथ साथ कीर्ति धन और आशा का पूरक माना गया है।

इ- गत्यर्थक, लक्ष्मी प्राप्ति का साधक, कोमल कार्य का साधक, कठोर कर्मों का बाधक तथा ह्रीं बीज का जनक माना गया है।

ई- अमृतबीज का मूल कार्य साधक, अल्प शक्ति द्योतक, ज्ञानवर्धक, स्तम्भक, मोहक, जृम्भक शक्ति वाला माना गया है।

उ- उच्चाटन बीजों का मूल शक्तिशाली श्वांस नालिका द्वारा जोर से धक्का देने पर शत्रुध्वंसक है।

ऊ- उच्चाटन, मोहक, विशेष शक्ति का परिचायक, पाप कार्य तथा कष्टदायक साधनों का ध्वंसक है।

ऋ- ऋद्धिबीज, सिद्धिदायक, शुभकार्यों का बीज, कार्य सिद्धि का सूचक है।

लृ- सत्य का संचारक, पापवाणी का ध्वंसक, लक्ष्मीबीज आत्मसाधक है।

ए- निश्चल पूर्ण, गतिसूचक, अरिष्ट निवारक बीजों का सूचक, पोषक और संवर्धक है।

ऐ- उदात्त, उच्चस्वर से प्रयोग करने पर वशीकरण बीजों का मूल, पोषक और संवर्धक, जलबीज की उत्पत्ति का कारण, सिद्धिप्रद कार्यों का उत्पादक बीज, शासन देवताओं को आह्वानन करने में सहायक क्लिष्ट और कठोर कार्यों के लिए प्रयुक्त बीजों का मूल, ऋण विद्युत का उत्पादक है।

ओ- अनुदात्त, निम्न स्वर की अवस्था में मायाबीज का उत्पादक, लक्ष्मी और श्री का पोषक, उदात्त, उच्च स्वर की अवस्था में कठोर कार्यों का उत्पादकबीज, कार्य साधक निर्जरा का हेतु, रमणीय पदार्थों की प्राप्ति के लिए बीजों में अग्रणी, अनुस्वरान्त बीजों का सहयोगी है।

औ- मारण और उच्चारण संबंधी बीजों में प्रधान, शीघ्र कार्य साधक निरपेक्षी अनेक बीजों का मूल है।

अं- स्वतंत्र शक्तिहीन किंतु आत्मशुद्धि के लिए ध्यान मंत्रों में प्रधान, विकार के अभाव का सूचक, आकाश बीजों का जनक, शक्ति का उत्पादक लक्ष्मीबीजों का मूल है।

अः- शान्ति बीजों में प्रधान, निरपेक्षावस्था में कार्य असाधक सहयोगी का अपेक्षक है।

क- शान्तिबीज, प्रभावशाली, सुखोत्पादक, आदर, कामना का पूरक, काम बीज का जनक है।

ख- आकाशबीज, अभाव कार्यों की सिद्धि के लिए कल्पवृक्ष, उच्चाटन बीजों का जनक है।

ग- पृथक् करने वाले कार्यों की सिद्धि के लिए कल्पवृक्ष, उच्चाटन बीजों का जनक है।

घ- स्तम्भबीज, स्तम्भन कार्यों का साधक, विघ्न विघातक, मारण और मोहबीजों का जनक है।

ङ- शत्रुनाशक, स्वर मातृका बीजों के संयोगानुसार फलोत्पादक, विध्वंसक बीजों का जनक है।
च- अंगहीन खण्डशक्ति द्योतक मातृकाबीजों के संयोगानुसार फलोत्पादक, विध्वंसक बीजोत्पादक है।
छ- छाया सूचक, मायाबीज का सहयोगी, बन्धनकारक, धर्मबीज का जनक पापशक्ति विध्वंसक, मृदु कार्यों का साधक माना गया है।
ज- नूतन कार्यों का साधक, कष्ट नाशक, शक्ति संचारक, श्री बीजों का जनक है।
झ- रेफ युक्त होने पर कार्य साधक, आधि व्याधि नाशक, शक्ति का संचारक, श्री बीजों का जनक है।
ञ- स्तम्भक और मोहक बीजों का जनक, कार्य साधक, दुसाधना रोधक, मायाबीज का जनक है।
ट- अग्निबीज, आग्नेय कार्यों का प्रसारक और निस्तारक, अग्नितत्त्व युक्त विध्वंसक कार्यों का साधक है।
ठ- अशुभ सूचक बीजों का जनक, क्लिष्ट और कठोर कार्यों का साधक, मृदुल कार्यों का विनाशक, रोदन कर्त्ता, अशान्ति का जनक, संक्षिप्त होने पर द्विगुणित शक्ति का विनाशक अग्नि बीज है।
ड-शासन देवताओं की शक्ति का प्रस्फोटक, निष्कृष्ट कार्यों की सिद्धि के लिए अमोघ, संयोग से पंच तत्त्वरूप बीजों का जनक, निकृष्ट आचार विचार द्वारा साफल्योत्पादक, अचेतन क्रिया का साधक है।
ढ- निश्चल मायाबीज का जनक, मारकबीजों में प्रधान, शांति का विरोधी, शक्तिवर्धक तथा धारक है।
ण- शांति सूचक, आकाशबीजों में प्रधान, ध्वंसकबीजों का जनक, शक्तिस्फोटक, शक्ति का धारक है।
त- आकर्षक बीज शक्ति का जनक, कार्यसाधक, सारस्वत बीज युक्त सर्व सिद्धिदायक है।
थ- मंगल साधक, लक्ष्मी बीजों का साथी, स्वर मातृकाओं सहित मोहक बीज शक्ति का धारक है।
द- कर्मनाशक बीज, आत्म शक्ति स्फोटक, वशीकरण बीजों का जनक है।
ध- श्रीं और क्लीं बीजों का सहायक, मित्रवत् फलदाता, माया बीजों का जनक है।
न- आत्म सिद्धि का सूचक, जल तत्त्व का सृष्टा, मृदुतर कार्यों का साधक, आत्म हितैषी है।
प- परमात्मदर्शक जलतत्त्व के प्रधानत्व से युक्त समस्त कार्यों की सिद्धि के लिए ग्राह्य शक्ति युक्त है।
फ- वायु और जल तत्त्व युक्त होने पर विध्वंसक, विघ्न विघातक फट् की ध्वनि से युक्त होने पर उच्चाटक कठोर कार्य साधक माना गया है।
ब- अनुस्वार युक्त विघ्न विनाशक, निरोधक सिद्धि सूचक माना गया है।
भ- मारण व उच्चाटन के लिए उपयोगी, सत्कार्य निरोधक कार्यों का तत्काल साधक, साधना में नाना प्रकार के विघ्नोत्पादक, कल्याण से दूर, कटु, मधु वर्णों से युक्त होने पर अनेक प्रकार के कार्यों का साधक, लक्ष्मी बीजों का विरोधी शक्ति युक्त है।
म- सिद्धि साधक, लौकिकालौकिक सिद्धिदाता, सन्तान की प्राप्ति में सहायक है।
य- शान्ति का साधक, सात्त्विक सिद्धि का कारण, महत्त्वपूर्ण कार्यों की सिद्धि के लिए उपयोगी, मित्र प्राप्ति या किसी अभीष्ट वस्तु की प्राप्ति के लिए अत्यन्त उपयोगी ध्यान का साधक है।
र- अग्निबीज, कार्यसाधक, बीजों का जनक, शक्ति का प्रस्फोटक और शक्तिवर्धक है।
ल- लक्ष्मी प्राप्ति में सहायक, श्री बीजों का निकटतम सहयोगी और सगोत्री कल्याण सूचक है।
व- सिद्धिदायक, आकर्षक ह,र और अनुस्वार के संयोग से चमत्कारों का उत्पादक, सारस्वत बीज, भूत, पिशाच, शाकिनी बाधा नाशक, रोग हर्ता लौकिक कामनाओं की पूर्ति के लिए अनुस्वार मातृका सहयोगापेक्षी, मंगलसाधक, विपत्तियों का रोधक, स्तम्भक है।
श- निरर्थक सामान्य बीजों का जनक, उपेक्षा धर्मयुक्त, शान्ति का पोषक है।

ष- आह्वानन बीजों का जनक, सिद्धिदायक, अग्निस्तम्भक, जलस्तम्भक, सापेक्ष ध्वनि ग्राहक, सहयोग से अद्भुत कार्य साधक, आत्मोन्नति से शून्य, रुद्रबीज का जनक, भयंकर और बीभत्स कार्य साधक है।

स- सर्व इष्ट साधक, सर्व बीजों में प्रयोग शक्ति के लिए परम आवश्यक, पौष्टिक कार्यों के लिए परमोपयोगी, द्रव्य कर्मों का नाशक क्लीं बीज का सहयोगी, कामबीज का उत्पादक, आत्मसूचक दर्शक है।

ह- शान्ति, पौष्टिक और मांगलिक कार्यों का उत्पादक, साधन के उपयोगी, स्वतन्त्र और सहयोगापेक्षी, लक्ष्मीसाधक, सन्तान प्राप्ति के लिए अनुस्वार युक्त होने पर जाप में सहायक आकाश तत्त्व युक्त कर्म नाशक, सभी प्रकार के बीजों का जनक है।

प्र.१४५-बीज और अक्षर किसे कहते हैं?

उत्तर- जिस प्रकार गेहूँ, चना आदि बीजों में जड़, स्कंध, शाखा, प्रतिशाखा, पत्ते, फूल और फल आदि शक्तियाँ पाई जाती हैं और वे शक्तियां जीवों के संयोग से उत्पन्न हो जाती हैं अतः बीजों के समान होने से स्वर व्यंजनों को बीज कहते हैं तथा विनाश रहित होने को अक्षर कहते हैं ऐसे ही आत्मशक्तियाँ, धर्म नाश रहित होने से अक्षर हैं। दोनों का समास होने से बीजाक्षर कहलाते हैं। सम्यक् रत्नत्रय पूर्वक मोक्षमार्ग में सहायक होने से समीचीन और मिथ्यात्रय सहित लौकिक कार्यों के सिर्फ साधन होने से मिथ्या बीजाक्षर कहलाते हैं। जैसे स्वादिष्ट और पौष्टिक आदि गुणों से सम्पन्न दूध, शक्कर, मिश्री के संसर्ग से और भी अधिक गुणकारी हो जाता है तथा कड़वे जहर के संसर्ग से मारक बन जाता है।

प्र.१४६-बीजाक्षरों की उत्पत्ति किससे होती है?

उत्तर- समीचीन देव, गुरु आदि द्रव्यों के नामों से हुई है। देव से मतलब है अर्हंत, सिद्ध। गुरु से मतलब है आचार्य, उपाध्याय और साधु अथवा शब्द रूप बीजाक्षरों की उत्पत्ति भाषा वर्गणा रूप पुद्गल स्कन्धों से की हुई है।

प्र.१४७-बीजाक्षरों के कितने भेद हैं?

उत्तर- इन बीजाक्षरों के द्रव्य और भावों की अपेक्षा से दो भेद हैं इनमें निमित्त नैमित्तिक संबंध है। द्रव्य बीजाक्षरों का उपादान कारण भाषा वर्गणा रूप पुद्गल द्रव्य है तथा निमित्त कारण जीव का विकारी परिणाम है। भाव बीजाक्षरों का उपादान कारण संसारी अशुद्ध जीव द्रव्य है तथा निमित्त कारण पुद्गल द्रव्य है द्रव्य और भाव बीजाक्षरों का परिणमन एक ही समय में एक ही साथ होने से सामान्य प्राणियों को भ्रम हो जाता है कि कौन सा बीजाक्षर किस द्रव्य का परिणाम है और इसी भ्रम के, मूर्खता के, अविवेकता के कारण ही मनुष्य विवाद में पड़ जाते हैं। प्राकृतभाषा की अपेक्षा ३३ व्यंजन, २७ स्वर और योगबाह ४ ये सब मूल वर्ण ६४होते हैं। संस्कृत में १६ स्वर, २५ व्यंजन अन्तस्थ ४, उष्माक्षर ४, क्+ष्+अ= क्ष, त्+र्+अ= त्र, ज्+ञ्+अ=ज्ञ ये तीन मिलाकर ५२ स्वर और व्यंजन तथा अंग्रेजी में २६ अक्षर होते हैं। इसलिए प्रत्येक देश की प्रत्येक भाषाओं के स्वर व्यंजनों की संख्या एक ही प्रकार की नहीं है अलग अलग है। इन सब में प्रधान ॐ बीज आत्मवाचक है। इसी को तेजोबीज (अग्निबीज) कामबीज और भावबीज भी कहते हैं। यह ॐ बीजाक्षर भी समस्त मंत्रों का स्वामी है।

श्री	कीर्तिवाचक
ह्रीं	कल्याणवाचक
श्रीं	शांतिवाचक
हं	मंगलवाचक
ॐ	सुखवाचक
हं	विद्वेषरोषवाचक
प्रौं, प्रीं	स्तम्भनवाचक
क्लीं	लक्ष्मी प्राप्ति वाचक
तीर्थंकर नाम	मंगलवाचक
क्ष्वीं	योगवाचक
हूं	वशीकरण और उच्चाटन
फट्	मारण में
नमः	स्तम्भन, विद्वेषण, मोहन में
वषट्	शान्ति और पौष्टिक में इसका प्रयोग करना चाहिए।
यक्ष और यक्षणियों के नाम	कीर्ति और प्रीतिवाचक

प्र.१४८-किस फल की प्राप्ति के लिए किन अंगुलियों से जाप करना चाहिए?

उत्तर- मोक्ष प्राप्ति के लिए अंगूठे से, यहाँ मोक्ष से मतलब सांसारिक आपदाओं से छुटकारा प्राप्त होना है। लोकव्यवहार के लिए तर्जनी से, धन और सुख के लिए मध्यमा से, शान्ति के लिए अनामिका से और सब कार्यों के लिए कनिष्ठा से जाप करना चाहिए। शत्रु नाश के लिए तर्जनी से भी जाप कर सकते हैं।

मंत्रों को जपने के निम्न लिखित १३ प्रकार हैं:- मंत्रानुशासन ब्र. कुमारी कौशल पृ. ४१

प्र.१४९-ग्रथित मंत्र किसे कहते हैं, इसका प्रयोग किसमें किया जाता है?

उत्तर- साध्य के नाम के एक एक अक्षर के साथ मंत्र के एक एक अक्षर को एकबार प्रयोग करने को ग्रथित मंत्र कहते हैं। यह वश्य और आकर्षण कर्मों में फलदायक होता है।

प्र.१५०-संपुट मंत्र किसे कहते हैं, इसका प्रयोग किसमें किया जाता है?

उत्तर- जिसके आदि में मंत्र फिर साध्य का नाम और अंत में फिर मंत्र बोला जाय उसे संपुटमंत्र कहते हैं। यह शांति और पुष्टि करनेवाला तथा तीन लोक का ऐश्वर्य देने वाला है।

प्र.१५१-ग्रस्त मंत्र किसे कहते हैं, इसका प्रयोग किसमें किया जाता है?

उत्तर- जिसके आदि और अंत में आधा आधा मंत्र और बीच में साध्य का नाम हो उसे ग्रस्त मंत्र कहते हैं। इसका मारण आदि सभी अशुभ कार्यों में प्रयोग किया जाता है।

प्र.१५२-समस्तयायोग मंत्र किसे कहते हैं, इसका प्रयोग किसमें किया जाता है?

उत्तर-जिसमें पहले नाम और फिर मंत्र बोला जाय उसे समस्तयायोग कहते हैं। यह उच्चाटन में प्रयोग किया जाता है।

प्र.१५३-विदर्भित मंत्र किसे कहते हैं, इसका प्रयोग किसमें किया जाता है?

उत्तर- जिसमें मंत्र के दो दो अक्षर और साध्य के नाम का एक एक अक्षर आवे उसे विदर्भितमंत्र कहते हैं। यह वशीकरण में प्रयोग किया जाता है।

प्र.१५४-आक्रांत मंत्र किसे कहते हैं, इसका प्रयोग किसमें किया जाता है?

उत्तर- यदि साध्य का नाम चारों ओर मंत्रों के अक्षरों से घिरा हो तो उसे आक्रांत मंत्र कहते हैं। यह सब कार्यों की सिद्धि, स्तंभन आवेशन, वश्य और उच्चाटन कर्मों को करता है।

प्र.१५५-आद्यंत मंत्र किसे कहते हैं, इसका प्रयोग किसमें किया जाता है?

उत्तर- जिसके आदि में एकबार पूरा मंत्र, मध्य में साध्य का नाम और अंत में फिर पूरा मंत्र लगाया जाय तो उसे आद्यंत मंत्र कहते हैं। यह विद्वेषण करता है।

प्र.१५६-गर्भस्थ या गर्भित मंत्र किसे कहते हैं, इसका प्रयोग किसमें किया जाता है?

उत्तर- जिसके आदि और अंत में दो दो बार मंत्र का प्रयोग करके बीच में एकबार साध्य का नाम रखने को गर्भस्थ या गर्भित कहते हैं। यह मारण, उच्चाटन, वश्य, नदी और गर्भ स्तंभन, नौका भंजन में प्रयोग किया जाता है।

प्र.१५७-सर्वतोमुख मंत्र किसे कहते हैं, इसका प्रयोग किसमें किया जाता है?

उत्तर- जिसके आदि और अंत में तीन तीन बार मंत्र जपा जावे और साध्य का नाम बीच में एक ही बार रहे उसे सर्वतोमुख कहते हैं। यह सब उपसर्गों को शांत करने वाला, सब सौभाग्यों को करने वाला तथा देवताओं को भी अमृत देने वाला है।

प्र.१५८-विदर्भ मंत्र किसे कहते हैं, इसका प्रयोग किसमें किया जाता है?

उत्तर- जिसके आदि में मंत्र फिर नाम फिर मंत्र इस प्रकार तीन तीन बार किया गया हो उसे विदर्भ मंत्र कहते हैं। यह सब व्याधियों को नष्ट करने वाला तथा भूत और मिर्गी के रोग को दूर करता है।

प्र.१५९-विदर्भग्रसित मंत्र किसे कहते हैं, इसका प्रयोग किसमें किया जाता है?

उत्तर- जिसमें साध्य के नाम के एक एक अक्षर को विदर्भ रूप में करके पहले के समान आदि और अंत में प्रयोग किया जावे उसे विदर्भ ग्रसित कहते हैं। यह सब कार्यों को और सभी ऐश्वर्यों के फलों को प्राप्त कराने में होता है।

प्र.१६०-रोधन मंत्र किसे कहते हैं, इसका प्रयोग किसमें किया जाता है?

उत्तर- नाम के आदि मध्य और अंत में मंत्र रखने को रोधन मंत्र कहते हैं। इसका प्रयोग शत्रु को रोकने में होता है।

प्र.१६१-पल्लव मंत्र किसे कहते हैं, इसका प्रयोग किसमें किया जाता है?

उत्तर- मंत्र के अंत में नाम रखने को पल्लव मंत्र कहते हैं। इसका प्रयोग कष्टनिवारण में और आत्म रक्षा तथा आत्मसाधना में किया जाता है।

ब्रह्मचर्य एवं ८४ लाख उत्तरगुण मंत्र विधान

	मंत्र का प्रयोग
प्रथम मंत्र	**आत्मशुद्धि के लिए और दरिद्रता दूर करने के लिए।**
मंत्र	ॐ ह्रीं आयै नमः।
दूसरा मंत्र	शान्ति, पुष्टि और इष्ट कार्य साधक।
मंत्र	ॐ ह्रीं सायै नमः वषट्।
तीसरा मंत्र	आकर्षण के लिए।
मंत्र	ॐ ह्रीं तायै नमः।
चौथा मंत्र	मंगल कारक और कीर्तिकारक
मंत्र	ॐ हं श्री ब्रायै नमः
पांचवां मंत्र	ज्ञान और लक्ष्मीदायक मंत्र
मंत्र	ॐ अर्हं क्लीं पायै नमः
छठवां	इच्छित कार्य पूरक मंत्र
मंत्र	ॐ ह्रीं लं क्रवायै नमः
इक्कीसवां -	कीर्ति और कल्याणवाचक।
मंत्र	ॐ ह्रीं श्री अयायै नमः।
४७ वां मंत्र	शांति, लक्ष्मी और संततिदायक।
मंत्र	ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं मवायै नमः
५३ वां	महान शक्तिदायक उपसर्ग निवारक
मंत्र	ॐ ह्रीं झौं अरायै नमः स्वाहा
८४८ वां	भोग सामग्रीदायक मंत्र
मंत्र	ॐ क्ष्वीं मामार्दवायै नमः स्वाहा
३३६१० वां	स्तम्भन, उच्चाटन कारक
मंत्र	ॐ प्रीं हं भाभवायै नमः
४२०११ वां	कीर्ति, धन आदि कार्य साधक
मंत्र	ॐ आगयाय नमः
५०९०४०१ वां	कल्याणकारक इष्ट कार्य साधक
मंत्र	ॐ ह्रीं धन छेदाय नमः स्वाहा।

नोटः- इन ८४ लाख मंत्रों में अनेक मंत्र इस प्रकार आये हैं कि जिनका नाम, अक्षर, गणना एक सी है परंतु कोई ऐसा मत समझना कि बार बार वे ही मंत्र दुहराये जा रहे हैं किंतु एक जैसे मंत्र होने पर भी उनका अर्थ और फल अलग अलग होगा। कारण कि सातों भंगों में से प्रथम प्रथम अक्षर लेकर संधि करके मंत्र बनाये हैं जैसे षट्खंडागम में **तं जहा** ऐसा यह सूत्र अनेकों बार आया है पर प्रसंगानुसार अर्थ भिन्न भिन्न है ऐसे ही आत्ममीमांसा में **विरोधान्नोभयैकात्म्य** यह गाथा १० बार आई है पर प्रसंगानुसार अर्थ अलग अलग है वैसे ही यहाँ इन मंत्रों का अर्थ और फल अलग अलग समझना चाहिए।

ब्रह्मचर्य एवं ८४ लाख उत्तरगुण मंत्र विधान

अहिंसामहाव्रत + अतिक्रमत्याग + भूमि की रक्षा + क्षमाधर्म + स्त्रीसंसर्ग त्याग + आकंपित दोष त्याग + आलोचना प्रायश्चित्त। यदि इन सातों भंगों का पूरा मंत्र बनाते हैं तो ४५ से ५५ अक्षरों तक का मंत्र बनता है किंतु व्याकरण के नियमानुसार पर्यायवाची शब्दों को लेकर तथा परस्पर में संधि कर देने से मंत्र छोटा बन जाता है और कोई किसी भी अवस्था में सरलता से जप कर अपना कार्य सिद्ध कर सकता है जैसे अ + अ + अ + अ + अ + अ + अ = अकः सवर्णे दीर्घः = सातों अ को मिलाने से आ दीर्घ हुआ तथा आकारान्त होने से नमस्कार अर्थ में चतुर्थी विभक्ति करने पर आये हुआ अतः सामान्यतया **आयै** के पहले ॐ ह्रीं लगाने से तथा अन्त में नमः स्वाहा लगाने से पूरा मंत्र बन जाता है। **ॐ ह्रीं आयै नमः स्वाहा**- यह चौरासी लाख मंत्रों में से पहला मंत्र है। इसी तरह व्याकरण के नियमानुसार पूरे चौरासी लाख मंत्र बनेंगे। आत्मा के जितने गुणधर्म हैं तथा संसारी जीवों के जितने परिणाम हैं उनके अनुसार ही शब्दयोजना करने पर अनंत मंत्र बन जाते हैं फिर भी परोक्षज्ञानियों का विषय संख्यात संख्या रूप में होने से संख्यात मंत्र बताये हैं। हाँ इतना अवश्य है कि मंत्रों के अक्षरों में विषय और व्यक्ति के अनुसार हीनाधिकता हो सकती है जैसे बीमार व्यक्ति की बीमारी और सामर्थ्य के अनुसार औषधि और औषधि की मात्रा में हीनाधिकता देखी जाती है।

१. ॐ ह्रीं आयै नमः स्वाहा।
२. ॐ ह्रीं सायै नमः स्वाहा।
३. ॐ ह्रीं तायै नमः स्वाहा।
४. ॐ ह्रीं ब्रायै नमः स्वाहा।
५. ॐ ह्रीं पायै नमः स्वाहा।
६. ॐ ह्रीं क्रवायै नमः स्वाहा।
७. ॐ ह्रीं मानायै नमः स्वाहा।
८. ॐ ह्रीं छायै नमः स्वाहा।
९. ॐ ह्रीं लवायै नमः स्वाहा।
१०. ॐ ह्रीं भायै नमः स्वाहा।
११. ॐ ह्रीं अरायै नमः स्वाहा।
१२. ॐ ह्रीं रायै नमः स्वाहा।
१३. ॐ ह्रीं जवायै नमः स्वाहा।
१४. ॐ ह्रीं मायै नमः स्वाहा।
१५. ॐ ह्रीं वायै नमः स्वाहा।
१६. ॐ ह्रीं कायै नमः स्वाहा।
१७. ॐ ह्रीं मयायै नमः स्वाहा।
१८. ॐ ह्रीं प्रायै नमः स्वाहा।
१९. ॐ ह्रीं पयायै नमः स्वाहा।
२०. ॐ ह्रीं अज्ञायै नमः स्वाहा।
२१. ॐ ह्रीं अयायै नमः स्वाहा।
२२. ॐ ह्रीं अवायै नमः स्वाहा।
२३. ॐ ह्रीं सवायै नमः स्वाहा।
२४. ॐ ह्रीं तवायै नमः स्वाहा।
२५. ॐ ह्रीं ब्रवायै नमः स्वाहा।
२६. ॐ ह्रीं पवायै नमः स्वाहा।
२७. ॐ ह्रीं क्रोवायै नमः स्वाहा।
२८. ॐ ह्रीं मानवायै नमः स्वाहा।
२९. ॐ ह्रीं मावायै नमः स्वाहा।
३०. ॐ ह्रीं लोवायै नमः स्वाहा।
३१. ॐ ह्रीं भवायै नमः स्वाहा।
३२. ॐ ह्रीं अरवायै नमः स्वाहा।
३३. ॐ ह्रीं रवायै नमः स्वाहा।
३४. ॐ ह्रीं जुवायै नमः स्वाहा।
३५. ॐ ह्रीं मनवायै नमः स्वाहा।
३६. ॐ ह्रीं ववायै नमः स्वाहा।
३७. ॐ ह्रीं कावायै नमः स्वाहा।
३८. ॐ ह्रीं मिवायै नमः स्वाहा।
३९. ॐ ह्रीं वायै नमः स्वाहा।
४०. ॐ ह्रीं पिवायै नमः स्वाहा।

४१. ॐ ह्रीं ज्ञवायै नमः स्वाहा।
४२. ॐ ह्रीं खवायै नमः स्वाहा।
४३. ॐ ह्रीं अहिंसायै नमः स्वाहा।
४४. ॐ ह्रीं सत्यायै नमः स्वाहा।
४५. ॐ ह्रीं अचावायै नमः स्वाहा।
४६. ॐ ह्रीं ब्रहायै नमः स्वाहा।
४७. ॐ ह्रीं मवायै नमः स्वाहा।
४८. ॐ ह्रीं झंआयै नमः स्वाहा।
४९. ॐ ह्रीं थआयै नमः स्वाहा।
५०. ॐ ह्रीं मायायै नमः स्वाहा।
५१. ॐ ह्रीं लोभायै नमः स्वाहा।
५२. ॐ ह्रीं भयायै नमः स्वाहा।
५३. ॐ ह्रीं अरायै नमः स्वाहा।
५४. ॐ ह्रीं रत्यायै नमः स्वाहा।
५५. ॐ ह्रीं ग्लायै नमः स्वाहा।
५६. ॐ ह्रीं मनायै नमः स्वाहा।
५७. ॐ ह्रीं वाचायै नमः स्वाहा।
५८. ॐ ह्रीं कायायै नमः स्वाहा।
५९. ॐ ह्रीं मिथ्यायै नमः स्वाहा।
६०. ॐ ह्रीं प्रमायै नमः स्वाहा।
६१. ॐ ह्रीं पिश्वायै नमः स्वाहा।
६२. ॐ ह्रीं अज्ञानायै नमः स्वाहा।
६३. ॐ ह्रीं हृष्यायै नमः स्वाहा।
६४. ॐ ह्रीं आनायै नमः स्वाहा।
६५. ॐ ह्रीं सानायै नमः स्वाहा।
६६. ॐ ह्रीं अचावनायै नमः स्वाहा।
६७. ॐ ह्रीं ब्रह्मायै नमः स्वाहा।
६८. ॐ ह्रीं अपायै नमः स्वाहा।
६९. ॐ ह्रीं क्रोधानायै नमः स्वाहा।
७०. ॐ ह्रीं दर्पानायै नमः स्वाहा।
७१. ॐ ह्रीं वंचनानायै नमः स्वाहा।
७२. ॐ ह्रीं लवानायै नमः स्वाहा।
७३. ॐ ह्रीं भानायै नमः स्वाहा।
७४. ॐ ह्रीं अरानायै नमः स्वाहा।
७५. ॐ ह्रीं रानायै नमः स्वाहा।
७६. ॐ ह्रीं जुगवनायै नमः स्वाहा।
७७. ॐ ह्रीं मनानायै नमः स्वाहा।
७८. ॐ ह्रीं वचनायै नमः स्वाहा।
७९. ॐ ह्रीं कायानायै नमः स्वाहा।
८०. ॐ ह्रीं मिथ्यानायै नमः स्वाहा।
८१. ॐ ह्रीं प्रमानायै नमः स्वाहा।
८२. ॐ ह्रीं पिशवनायै नमः स्वाहा।
८३. ॐ ह्रीं अज्ञानायै नमः स्वाहा।
८४. ॐ ह्रीं अयानायै नमः स्वाहा।
८५. ॐ ह्रीं आजायै नमः स्वाहा।
८६. ॐ ह्रीं साजायै नमः स्वाहा।
८७. ॐ ह्रीं अचावजायै नमः स्वाहा।
८८. ॐ ह्रीं ब्राजायै नमः स्वाहा।
८९. ॐ ह्रीं पाजायै नमः स्वाहा।
९०. ॐ ह्रीं क्रोजायै नमः स्वाहा।
९१. ॐ ह्रीं मानाजायै नमः स्वाहा।
९२. ॐ ह्रीं मायाजायै नमः स्वाहा।
९३. ॐ ह्रीं लवजायै नमः स्वाहा।
९४. ॐ ह्रीं भाजायै नमः स्वाहा।
९५. ॐ ह्रीं आजायै नमः स्वाहा।
९६. ॐ ह्रीं राजायै नमः स्वाहा।
९७. ॐ ह्रीं जवजायै नमः स्वाहा।
९८. ॐ ह्रीं माजायै नमः स्वाहा।
९९. ॐ ह्रीं वाजायै नमः स्वाहा।
१००. ॐ ह्रीं काजायै नमः स्वाहा।
१०१. ॐ ह्रीं मयजायै नमः स्वाहा।
१०२. ॐ ह्रीं प्राजायै नमः स्वाहा।
१०३. ॐ ह्रीं पयजायै नमः स्वाहा।
१०४. ॐ ह्रीं अज्ञाजायै नमः स्वाहा।
१०५. ॐ ह्रीं खाजायै नमः स्वाहा।
१०६. ॐ ह्रीं अव्यजायै नमः स्वाहा।
१०७. ॐ ह्रीं सव्यजायै नमः स्वाहा।
१०८. ॐ ह्रीं अव्यजायै नमः स्वाहा।
१०९. ॐ ह्रीं ब्रव्यजायै नमः स्वाहा।
११०. ॐ ह्रीं पव्यजायै नमः स्वाहा।
१११. ॐ ह्रीं क्रोव्यजायै नमः स्वाहा।
११२. ॐ ह्रीं माव्यतिजायै नमः स्वाहा।

११३. ॐ ह्रीं मायाव्यतिजायै नमः स्वाहा।
११४. ॐ ह्रीं लोव्यजायै नमः स्वाहा।
११५. ॐ ह्रीं भव्यजायै नमः स्वाहा।
११६. ॐ ह्रीं अव्यजायै नमः स्वाहा।
११७. ॐ ह्रीं रव्यजायै नमः स्वाहा।
११८. ॐ ह्रीं जुव्यजायै नमः स्वाहा।
११९. ॐ ह्रीं मव्यतिजायै नमः स्वाहा।
१२०. ॐ ह्रीं वव्जायै नमः स्वाहा।
१२१. ॐ ह्रीं काव्जायै नमः स्वाहा।
१२२. ॐ ह्रीं मिव्जायै नमः स्वाहा।
१२३. ॐ ह्रीं प्रव्जायै नमः स्वाहा।
१२४. ॐ ह्रीं पिव्जायै नमः स्वाहा।
१२५. ॐ ह्रीं अव्जायै नमः स्वाहा।
१२६. ॐ ह्रीं इव्जायै नमः स्वाहा।
१२७. ॐ ह्रीं आतिजायै नमः स्वाहा।
१२८. ॐ ह्रीं सातिजायै नमः स्वाहा।
१२९. ॐ ह्रीं अचावजायै नमः स्वाहा।
१३०. ॐ ह्रीं ब्रातिजायै नमः स्वाहा।
१३१. ॐ ह्रीं पातिजायै नमः स्वाहा।
१३२. ॐ ह्रीं क्रवजायै नमः स्वाहा।
१३३. ॐ ह्रीं मानातिजायै नमः स्वाहा।
१३४. ॐ ह्रीं मायातिजायै नमः स्वाहा।
१३५. ॐ ह्रीं लवाजायै नमः स्वाहा।
१३६. ॐ ह्रीं भातिजायै नमः स्वाहा।
१३७. ॐ ह्रीं आतिजायै नमः स्वाहा।
१३८. ॐ ह्रीं रातिजायै नमः स्वाहा।
१३९. ॐ ह्रीं जवतिजायै नमः स्वाहा।
१४०. ॐ ह्रीं मतिजायै नमः स्वाहा।
१४१. ॐ ह्रीं वचातिजायै नमः स्वाहा।
१४२. ॐ ह्रीं कातिजायै नमः स्वाहा।
१४३. ॐ ह्रीं मिथ्यातिजायै नमः स्वाहा।
१४४. ॐ ह्रीं प्रातिजायै नमः स्वाहा।
१४५. ॐ ह्रीं पयतिजायै नमः स्वाहा।
१४६. ॐ ह्रीं अज्ञातिजायै नमः स्वाहा
१४७. ॐ ह्रीं अयतिजायै नमः स्वाहा।
१४८. ॐ ह्रीं आनाजायै नमः स्वाहा।
१४९. ॐ ह्रीं सानाजायै नमः स्वाहा।
१५०. ॐ ह्रीं असनाजायै नमः स्वाहा।
१५१. ॐ ह्रीं ब्रानाजायै नमः स्वाहा।
१५२. ॐ ह्रीं पानाजायै नमः स्वाहा।
१५३. ॐ ह्रीं क्रवनाजायै नमः स्वाहा।
१५४. ॐ ह्रीं मानानाजायै नमः स्वाहा।
१५५. ॐ ह्रीं मायानाजायै नमः स्वाहा।
१५६. ॐ ह्रीं लोभानाजायै नमः स्वाहा।
१५७. ॐ ह्रीं भयानाजायै नमः स्वाहा
१५८. ॐ ह्रीं अरानाजायै नमः स्वाहा
१५९. ॐ ह्रीं रानाजायै नमः स्वाहा।
१६०. ॐ ह्रीं जवनाजायै नमः स्वाहा।
१६१. ॐ ह्रीं मनानाजायै नमः स्वाहा।
१६२. ॐ ह्रीं वनाजायै नमः स्वाहा।
१६३. ॐ ह्रीं कानाजायै नमः स्वाहा।
१६४. ॐ ह्रीं मिथ्यानाजायै नमः स्वाहा।
१६५. ॐ ह्रीं प्रानाजायै नमः स्वाहा।
१६६. ॐ ह्रीं पयनाजायै नमः स्वाहा।
१६७. ॐ ह्रीं अज्ञानाजायै नमः स्वाहा।
१६८. ॐ ह्रीं अयनाजायै नमः स्वाहा।
१६९. ॐ ह्रीं आगायै नमः स्वाहा।
१७०. ॐ ह्रीं सागायै नमः स्वाहा।
१७१. ॐ ह्रीं अचावसायै नमः स्वाहा।
१७२. ॐ ह्रीं ब्रासायै नमः स्वाहा।
१७३. ॐ ह्रीं पासायै नमः स्वाहा।
१७४. ॐ ह्रीं क्रवसायै नमः स्वाहा।
१७५. ॐ ह्रीं मासायै नमः स्वाहा।
१७६. ॐ ह्रीं मायासायै नमः स्वाहा।
१७७. ॐ ह्रीं लवसायै नमः स्वाहा।
१७८. ॐ ह्रीं भासायै नमः स्वाहा।
१७९. ॐ ह्रीं अरासायै नमः स्वाहा।
१८०. ॐ ह्रीं रासायै नमः स्वाहा।
१८१. ॐ ह्रीं जवसायै नमः स्वाहा।
१८२. ॐ ह्रीं मनासायै नमः स्वाहा।
१८३. ॐ ह्रीं वासायै नमः स्वाहा।
१८४. ॐ ह्रीं कासायै नमः स्वाहा।

ब्रह्मचर्य एवं ८४ लाख उत्तरगुण मंत्र विधान

१८५. ॐ ह्रीं मनसायै नमः स्वाहा।
१८६. ॐ ह्रीं प्रासायै नमः स्वाहा।
१८७. ॐ ह्रीं पयसायै नमः स्वाहा।
१८८. ॐ ह्रीं अज्ञासायै नमः स्वाहा।
१८९. ॐ ह्रीं अयसायै नमः स्वाहा।
१९०. ॐ ह्रीं अव्सायै नमः स्वाहा।
१९१. ॐ ह्रीं सव्सायै नमः स्वाहा।
१९२. ॐ ह्रीं अव्यसायै नमः स्वाहा।
१९३. ॐ ह्रीं ब्रव्सायै नमः स्वाहा।
१९४. ॐ ह्रीं पव्सायै नमः स्वाहा।
१९५. ॐ ह्रीं क्रोव्सायै नमः स्वाहा।
१९६. ॐ ह्रीं माव्सायै नमः स्वाहा।
१९७. ॐ ह्रीं मायाव्सायै नमः स्वाहा।
१९८. ॐ ह्रीं लोव्सायै नमः स्वाहा।
१९९. ॐ ह्रीं भव्सायै नमः स्वाहा।
२००. ॐ ह्रीं अरव्यायै नमः स्वाहा।
२०१. ॐ ह्रीं रव्सायै नमः स्वाहा।
२०२. ॐ ह्रीं जुव्सायै नमः स्वाहा।
२०३. ॐ ह्रीं मव्सायै नमः स्वाहा।
२०४. ॐ ह्रीं वव्सायै नमः स्वाहा।
२०५. ॐ ह्रीं काव्सायै नमः स्वाहा।
२०६. ॐ ह्रीं मिव्सायै नमः स्वाहा।
२०७. ॐ ह्रीं प्रव्सायै नमः स्वाहा।
२०८. ॐ ह्रीं पिव्सायै नमः स्वाहा।
२०९. ॐ ह्रीं अव्सायै नमः स्वाहा।
२१०. ॐ ह्रीं इव्सायै नमः स्वाहा।

एवं पणमिय सिद्धे जिणवरवसहे पुणो पुणो समणे।
पडिवज्जदु सामण्णं जदि इच्छदि दुक्ख परिमोक्खं।।२०१।। प्र.सा.

अर्थः- यदि दुःखों से मुक्त होने की इच्छा है तो पंचपरमेष्ठियों को नमस्कार करके मुनिधर्म को अंगीकार करो।

द्रव्यस्य सिद्धौ चरणस्य सिद्धिः द्रव्यस्य सिद्धिश्चरणस्य सिद्धौ।
बुद्ध्वेति कर्माविरताःपरेऽपि द्रव्याविरुद्धं चरणं चरंतु।।१३।।

अर्थः- द्रव्य की सिद्धि में चरण की सिद्धि है और चरण की सिद्धि में द्रव्य की सिद्धि है यह जानकर पापकर्मों से विरत तथा अन्य भी द्रव्य से अविरुद्ध चारित्र का पालन करो।

जदि ते विसयकसाया पाव त्ति परूविदा व सत्थेसु ।
किह ते तप्पडिबद्धा पुरिसा णित्थारगा होंति।।२०१।। प्र.सा.

अर्थः- जो ये विषयकषाय शास्त्रों में पाप रूप कहे गये हैं तो इन विषयकषायों से सहित साधु और वक्ता अपने भक्तों का, शिष्यों का संसार समुद्र से पार करने वाला कैसे हो सकता है? ऐसे साधु और वक्ता संसार में पत्थर की नाव के समान है। अतः संसारभीरुओं को इनसे बचकर रहना चाहिये।

उपकार

माता पिता भाइयों ने कुमार्ग से बचाया और सन्मार्ग में लगाया। परम पूज्य आ. श्री १०८ पार्श्वसागरजी महाराज का भरपूर उपकार है कि जिन्होंने मेरे को अंधकूप से निकालकर धर्मशिक्षा तथा धर्मदीक्षा दी। सिद्धान्त, आध्यात्म तथा न्याय के गूढ़तम रहस्य को समझाया और गूढ़ से गूढ़ शंकाओं का समाधान किया, अनन्य वात्सल्य दिया तथा गहन चिंतन करने का मार्ग बतलाया, निर्भय बनाया। मुनिदीक्षा के बाद प्रथम चातुर्मास सन् १९७७ उदयपुर में राजस्थान के अनुभवी पंडित शान्त स्वभावी, निस्पृही, निरभिमानी प्यारेलालजी कोटडिया तथा पन्नालालजी भोरावतने श्री समयसारजी, प्रवचनसार, पंचास्तिकाय, जीवकाण्ड, कर्मकाण्ड का अध्ययन कराया, पढ़ाया और जयधवला, धवला तथा महाबन्ध जैसे महान ग्रन्थों को पढ़ने की प्रेरणा दी। महाराष्ट्र में फल्टण निवासी अनेक भाषाविज्ञ व्याकरणाचार्य वयोवृद्ध मोतीलालजी कोठारी ने संस्कृत व्याकरण का तथा श्रवणबेलगोल के आश्रम के ब्र. व्याकरणाचार्य प्रभाकरजी ने अष्टाध्यायी, वैयाकरण सिद्धान्त कौमुदी का अध्ययन कराया। इन सभी ने निःस्वार्थ निष्कपट भाव से हमारा उपकार किया है। इन सभी का मेरे ऊपर महान उपकार है जिसे हम कभी नहीं भूल सकते हैं। जो ज्ञान हमको भविष्य में केवलज्ञान प्राप्त कराने में सहायक हो ऐसी मेरी धारणा है।

लेखन कार्य में सहायकों के नाम – गांधीनगर गुजरात राजधानी, कोबा आश्रम गुजरात, सतना म. प्र. दि. जैन प्रेसवाले, इन्दौर से राजेन्द्रकुमारजी खण्डेलवाल, उदयपुर से महावीर मिण्डा, राँची शांतिलालजी अग्रवाल कागजवाले, सम्पतलालजी कासलीवाल, सम्पतलालजी अग्रवाल, महावीरप्रसादजी कटक, कोलकाता मनीष कुमारजी गंगवाल, हुलासचन्द्रजी सेठी, महावीर रारा असम गुहाटी, बाबुलालजी मेहता तलोदवाले आदि दातारों ने कार्य को बिना रुकावट के पूर्ण कराया तथा गया के विनोदकुमारजी अजमेराने लेमनेशन प्रारंभ कराया। आर्यिका श्रेयमतीजी, बा. ब्र. सुगन्ध कुमारजी तथा बा. ब्र. ब्रह्मचारिणी नेहल (भाग्याजी) बहनजी ने खूब खूब रात्रि दिन सहायता की है, भंगों के यथाक्रम से नम्बर पूरे इन्होंने ही डाले हैं (आ. श्रेयमतीजी बा. ब्र. नेहलजी) १८००० शील के भंगों के लिखते समय सहायक आर्यिका श्रेयांसमति माताजी, दूसरी लिपि बनानेवालीं अर्यिका श्रेयमति माताजी। गांधीनगर गुजरात के श्रावकों ने स्याही कागज आदि की सहायता की है तथा देशव्रती श्रावक जितुभाई का विशेष योगदान रहा ये पेथापुर के निवासी हैं।

निमित्त– बा. ब्र. यशवंती को श्रुतपंचमी के दिन श्री जीवकांड का अध्ययन कराना प्रारम्भ किया और जब प्रमाद के भंगों को समझा रहे थे उसी समय भावना जाग्रत हुई कि इसी प्रकार शील के १८००० भंगों को लिखना चाहिए। सावन वदी प्रतिपदा (गुजराती आसाढ़ वदी एकम) को भगवान श्री महावीर की प्रथम दिव्यदेशना के दिन शुभ मुहूर्त में कार्य प्रारंभ कर भादों सुदी ४ को लिखकर पूर्ण किया। आ. श्रेयमतीजी बाह्य निमित्त हैं और अंतरंग निमित्त स्वयं का पुरुषार्थ तथा उत्साह है।

इसे पुस्तक रूप में छपाने, प्रूफ देखने और योग्य सुझाव देने आदि का श्रम साध्य कार्य धर्म भावना से युक्त विद्वान डॉ. शेखरचन्द्र जैन ने किया।

हेतु– इन भंगों के लिखने का उद्देश्य यह है कि भव्यात्मायें इनको पढ़कर, अपने बलवीर्य को न छिपाकर, बाह्य चमत्कारों में न फँस कर अपने शील को निर्दोष पालें तथा पालन करने का अभ्यास करें। अपना भविष्य उज्ज्वल बनावें इसी भावना के साथ विश्राम लेता हूँ।

ब्रह्मचर्य एवं ८४ लाख उत्तरगुण मंत्र विधान

प्रमाण- ब्रह्मचर्य के भंगों की संख्या १८००० है और उत्तरगुणों की संख्या चौरासी लाख और मंत्रों की संख्या चौरासी लाख है।

नाम- ब्रह्मचर्य एवं चौरासीलाख उत्तरगुण भंग और मंत्र शास्त्र

कर्ता- आ. श्री वासुपूज्यसागरजी **पेज भंग और मंत्रों का प्रमाणः-** हस्तलिखित पेज १ लाख हैं, दोनों बाजुओं के पेजों की संख्या २ लाख हैं। प्रत्येक पेज के पहली बाजू में ४२ भंग हैं और दूसरी बाजू भी ४२ भंग हैं तथा दोनों को मिलाकर ८४ भंग हो जाते हैं। इस प्रकार जब एक पेज में ८४ तो एक लाख में ८४ लाख भंग हुए। प्रत्येक पत्र की लम्बाई चौड़ाई का प्रमाण क्रमशः १६, १७,१८ इंच और १२,१३,१४ इंच है क्योंकि पत्र एक जगह का नहीं है किंतु मुद्रित होने पर पत्रों का कितना प्रमाण रहेगा हम नहीं जानते। इस बात को तो समाज जाने, हाँ भंगों में और मंत्रों में हीनाधिकता नहीं हो सकती है यह हम अवश्य जानते हैं। यह विशालकाय ग्रन्थ लेमनेशन हो जाने के बाद जिला पन्ना म. प्र. महेवा में श्री श्री चन्द्रजी के चन्द्रप्रभु जिन चैत्यालय में विराजमान है तथा यदि किसी संस्था ने सावधानी पूर्वक सम्हालने की इच्छा प्रकट की तो उनको सहर्ष दे दिया जायेगा। यही आचार्य परम्परागत व्यवस्था है। यह वास्तव में जिनेन्द्र की तथा आचार्यों की ही कृति है केवल हम तो शब्द संग्रह में निमित्त मात्र है। तात्कालिक हमको प्रत्यक्ष फल मिला है कि कार्य करते समय कोई भी व्याधि अपना प्रभाव नहीं डाल पाई और विशेष औषधि के बिना अपने आप विदा होती रही, भावी फल क्या प्राप्त होगा यह केवली जाने अतः भव्य जीव प्रमाद को छोड़कर नित्य ही इन भंगों और मंत्रों के द्वारा अपनी आत्मा की शुद्धि करें इसमें संहनन और काल को दोषी ठहराकर मोक्षमार्ग से बचने का उपाय नहीं करें ऐसी मेरी भावना है।

अंतिम मंगलाचरण क्षत्रचूड़ामणि।

अन्यदीय मिवात्मीयमपि दोषं प्रपश्यता।
कः समः खलु मुक्तोऽयं युक्तः कायेन चेदपि।।८३।। आ. वादीभसिंह

अर्थः-जो दूसरों के दोषों के समान अपने दोषों को देखता है वह शरीरी होने पर भी मुक्त ही है ऐसा मैं मानता हूँ।

अंतिम मंगलाचरण

कार्य किया आरंभ था, तब मन में हर्ष अपार।
निर्विध्न हुआ जब पूर्ण तो, तब पाया आनंद सार।। आ. वासुपूज्यसागर

ब्रह्मचर्य के १८००० भंगों की आद्यंत प्रशस्ति

कोसवां वाले आ. विमलसागरजी महाराज के शिष्य प. पू. स्व. परमोपकारी आ. १०८ श्री पार्श्वसागरजी महाराज कोटलावालों (यू.पी.) के शिष्य प. पू. आ. श्री १०८ वासुपूज्यसागरजी महाराज ने ये ब्रह्मचर्य के छठवें प्रमत्तसंयत गुणस्थान में उत्पन्न होने वाले १८० भंग पूर्ण किये। आज प्रातः काल मंगलवार समय आठ बजे प्रारम्भकर मध्याह्नकाल २-३० पर समाप्त किए। गांधीनगर गुजरात राजधानी महावीर दि. जैन. मन्दिर सेक्टर नं. २१ (जूना सचिवालय के सामने) में भादों सुदी १३, ता. २८-९-९३ को उद्वेग चौघडिया में प्रारंभ कर काल चौघडिया में समाप्त किया।

चौरासी लाख उत्तर गुणों की आद्यन्त प्रशस्ति

प्रारम्भ समय- गुजरात अहमदाबाद के सुकुमाल नगर में पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव के निमित्त भूमि पूजन के दिन २३.२.१९९४ की प्रातः काल की शुभ बेला में श्रावकों के द्वारा श्री जिनेन्द्र भगवान का अभिषेक पूजन के बाद लेखन कार्य प्रारम्भ किया। वि. सं. २०५० तिथि १२ बुधवार, पुष्यनक्षत्र, चंद्रमा कर्क का था।

समाप्ति समय-झारखण्ड के श्री दिगम्बर जैन सम्मेदाचल विकास कमिटि चोपड़ाकुंड जिन मंदिर में वैशाख सुदी तीज अक्षय तृतीया, शनिवार ६.५.२००० अमृत चौघड़िया रोहिणी नक्षत्र, अमृतयोग, मिथुन का चन्द्रमा था। तब मध्याह्न के समय में उत्तरगुण विधानपूर्वक भगवान श्री पार्श्वनाथजी, चन्द्रप्रभजी, श्री बाहुबलीजी तथा आ. कल्याणमतिजी, श्रेयमतीजी, क्षु. श्रेणिमतीजी, बा. ब्र. सुगंध कुमारजी, बा. ब्र. नेहलबहिनजी (भाग्याजी) ब्र. संतोषबहिनजी, ब्र. पं. वयोवृद्ध रतनलालजी, ब्र. लीलाकुमारीजी, ब्र. अंजना कुमारीजी (ये तीन इन्दौर आश्रम के) क्षेत्र के अध्यक्ष श्री भागचन्द्रजी पाटनी, संस्थापक महामंत्री राजेन्द्रजी दोशी, सुशील कुमारजी, मोहनलालजी, रमेशजी, कोडरमा निवासी थे तथा अनेक दर्शक श्रावक श्राविकाएं थे।

विधानकर्त्ता तथा पूजक - ओंकारमलजी, मोहनलालजी, इनकी मातेश्वरी, पड्डसेनजी और धर्म पत्नी पुष्पाजी कलकत्ता वाले तथा रफीगंज निवासी श्री शांतिलालजी वीणाबहिनजी सपरिवार आदि ने चतुर्विध मुनि संघ सहित चौरासी लाख उत्तरगुण और मंत्र शास्त्र की पूजा आराधना पूर्वक विसर्जन किया।

परमपूज्य श्री १०८ आचार्य परमेष्ठी पार्श्वसागरजी
कोटलावालों के शिष्य आ. वासुपूज्यसागर

प. पू. आचार्य श्री पार्श्वसागरजी महाराज की पूजन

(कविराजः- शीलचंदजी जैन कृत देवेन्द्रनगर)
श्री एक सौ आठ मुनि पारस सागरजी।
शांति सौम्य विद्वान तपश्चर्या आगरजी।
अत्रावतर संवोषट् आओ मम गृह स्वामी।
परम पुनीत पवित्र साधु गुण गणनामी।।

ॐ ह्रूँ प. पू. श्री १०८ आचार्य पार्श्वसागर अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननम्। अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनम्। अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणम्। पुष्पांजलिं क्षिपामि।

जल शुद्ध प्रासुक भर कटोरी गुरु चरण आगे धरूं।
भव जन्म मरण जरा विनाशन हेतु पूजा विस्तरूं।।
गुरु पार्श्व सागर पुरुष पारस परम पूज्य पुनीत हैं।
हम भटकते सत्पथ बतादो पाप से भयभीत हैं।।

ॐ ह्रूँ प. पू. श्री १०८ आचार्य पार्श्वसागरेभ्यो जन्मजरामृत्यु विनाशनाय जलं निर्व. स्वाहा।

शुचि गंध चंदन घिस सुगुरु संमुख कटोरी में धरुं।
भव ताप पाप विनाशने को गुरु चरण पूजा करुं।।
गुरु पार्श्व सागर पुरुष पारस परम पूज्य पुनीत हैं।
हम भटकते सत्पथ बतादो पाप से भयभीत हैं।।

ॐ ह्रूँ प. पू. श्री १०८ आचार्य पार्श्वसागरेभ्यो संसारताप विनाशनाय चंदनं निर्व. स्वाहा।

शुचिनीर प्रक्षालित सुतंदुल शशि समान लुभावने।
अक्षत अक्षय फल हेतु गुरु ढिंग लगत परम सुहावने।
गुरु पार्श्व सागर पुरुष पारस परम पूज्य पुनीत हैं।
हम भटकते सत्पथ बतादो पाप से भयभीत हैं।।

ॐ ह्रूँ प. पू. श्री १०८ आचार्य पार्श्वसागरेभ्यो अक्षयपद प्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

शुभपीत पङ्ज प्रसून पावन नयन जनमन मोहते।
मद मदन जीत बने दिगम्बर चरण पथ में सोहते।।
गुरु पार्श्व सागर पुरुष पारस परम पूज्य पुनीत हैं।
हम भटकते सत्पथ बतादो पाप से भयभीत हैं।।

ॐ ह्रूँ प. पू. श्री १०८ आचार्य पार्श्वसागरेभ्यो कामबाण विनाशनाय पुष्पं निर्व. स्वाहा।

नैवज नवीन सुतृप्तिकारी शुद्ध सात्विक गुणभरे।
गुरु चरण में अर्पित समर्पित क्षुधा नाशन गुणधरे।।
गुरु पार्श्व सागर पुरुष पारस परम पूज्य पुनीत हैं।
हम भटकते सत्पथ बतादो पाप से भयभीत हैं।।

ॐ ह्रूँ प. पू. श्री १०८ आचार्य पार्श्वसागरेभ्यो क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्व. स्वाहा।

दीपक दिपंत दशों दिशा तम हनन ज्योति प्रकाशती।
मम मोहतम नाशन गुरु ढिंग लाल मणि प्रतिभासती।।
गुरु पार्श्व सागर पुरुष पारस परम पूज्य पुनीत हैं।
हम भटकते सत्पथ बतादो पाप से भयभीत हैं।।

ॐ ह्रूँ प. पू. श्री १०८ आचार्य पार्श्वसागरेभ्यो मोहांधकार विनाशनाय दीपं निर्व. स्वाहा।

शुचि मलय चंदन धूप खेऊं वसुकरम धूं धूं जले।
जिमि लोह पिंड धरे अग्नि में तीव्र तापन से गले।।
गुरु पार्श्व सागर पुरुष पारस परम पूज्य पुनीत हैं।
हम भटकते सत्पथ बतादो पाप से भयभीत हैं।।

ॐ ह्रूँ प. पू. श्री १०८ आचार्य पार्श्वसागरेभ्यो अष्टकर्म दहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

उपलब्ध फल भर थाल में गुरुवर समीप सजा धरैं।
तुम मोक्षपंथ स्वरूप दर्शन मुक्ति की युक्ति करैं।।
गुरु पार्श्व सागर पुरुष पारस परम पूज्य पुनीत हैं।
हम भटकते सत्पथ बतादो पाप से भयभीत हैं।।

ॐ ह्रूँ प. पू. श्री १०८ आचार्य पार्श्वसागरेभ्यो मोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

जल चंदनादिक अष्ट द्रव्य सुभव्य भाव प्रबोधते।
मुनिराज आज अनर्घपद को अष्टविधि अनुमोदते।।
गुरु पार्श्व सागर पुरुष पारस परम पूज्य पुनीत हैं।
हम भटकते सत्पथ बतादो पाप से भयभीत हैं।।

ॐ ह्रूँ प. पू. श्री १०८ आचार्य पार्श्वसागरेभ्यो अनर्घपद प्राप्तये अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

पारस सागर मुनिवर गाथा। कहत सुनावत नावत माथा।।
मध्य आगरा कोटला ग्रामा। राम स्वरूप पिता अभिरामा।।
मातु जानकी जैसे सीता। पतिभक्ता सुपवित्र पुनीता।।
आठ बीस कम द्वै हज्जारा। विक्रम संवत दीप उजारा।
कार्तिक सुदी सप्तमी प्यारी। जननी ने जन पदवीधारी।
श्री राजेन्द्र कुमार सुनामा। पुत्र पुनीत उदय अभिरामा।
दूज चन्द्र सम बाल अवस्था। क्रम क्रम बनी किशोरावस्था।
विद्याध्ययन किया तन मन से। शिवमुखराय गुरुबुध जन से।।
धर्म शास्त्र का ज्ञान संजोया। पौधा ब्रह्मचर्य का बोया।
ग्रंथ व्याकरण कर अभ्यासा। पंडित नाथूराम प्रभाषा।
विनय युक्त विद्या थी साधी। धर्म प्रवृत्ति सदा आराधी।
यौवन मदन विकार न व्यापा। बाल ब्रह्मचारी गुण थापा।
नैतिक नीतिधनोपार्जन से। गृह जीवन पितु माता मन से।
इकतालीस वर्ष की वय में। पाक्षिक श्रावक बने सुलय में।।
वर्ष चवालिस मात सिधारी। हुआ विराग बने ब्रह्मचारी।।
मुनी विमलसागर व्रत दीना। आतम को ब्रह्मावत् चीना।।
संवत द्वैसहस्त्र सत्रह में। क्षुल्लक दीक्षा धर तनगृह में।
संवत द्वै सहस्त्र अट्ठारा। विमल सिंधु से मुनिव्रत धारा।
गृहवस्था में धर्माचारी। शिखरसम्मेद बंद चौबारी।।
महाव्रतों का पालन करते। विषय कषाय सदा पर हरते।
शांति सौम्य विद्वान विरागी। तन की ममता मन से त्यागी।।
देश भ्रमण तीरथ वंदन में। सम्यक् बोध भरे जन जन में।
व्रत जप तप रत रहैं सुबंदे। गुरु दर्शन जन जन आनन्दे।।
धत्ताः- मुनि पारस सागर, गुण-गण आगर नग्नपरीषह के धारी।
सत् पथ दर्शाते, रस वरसाते, आत्मधर्म के आचारी।।

ॐ ह्रूँ प. पू. श्री १०८ आचार्य पार्श्वसागरेभ्यो जयमाला पूर्णार्घं निर्वपामीति स्वाहा।

आरती

पार्श्वसागर की गुण आगर की
ले मंगल दीप जलाय हो, आज उतारूं आरतियां
पिता आपके रामस्वरूपजी, माता जानकीबाई- गुरुवर माता०
ग्राम कोटला जन्म लियो है सब जन मंगल गाई२
न रागी की, न द्वेषी की, ले आतम ज्योति जलाय हो
मैं आज उतारूं.....
पार्श्वसागर.....
घोर उपवास व्रतों के धारी आतम ब्रह्म विहारी - गुरुवर आतम
खड़ग धार के पथ पर चल कर शिथिलाचार निवारी
गुरुवर शिथिलाचार.....
गृह त्यागी की, वैरागी की, ले मंगल दीप जलाय हो
मैं आज उतारूं.....
पार्श्वसागर.....
गुरुवर आज नयन से लखकर आलोकित सुख पाया- गुरुवर आलोकित
भक्ति भाव से आरती करके, फूला नहीं समाया
गुरुवर फूला नहीं.....
ऐसे ऋषिवर की ऐसे मुनिवर की करूं आरती बारंबार हो
मैं आज उतारूं.....
पार्श्वसागर की.....

श्री आ. विमलसागराय नमः श्री आ. पार्श्वसागराय नमः

प. पू. आचार्य १०८ श्री वासुपूज्यसागरजी की पूजन नं.-१

समता रस को पीने वाले, हे गुरु वासुपूज्य सागरजी,
आओ सब मिल पूज रचावे, ज्ञानी ध्यानी गुण आगर की।
भक्ति भाव से निज शक्ति से, जो गुरुवर की पूजा रचाते,
मिटे कर्म जंजाल जगत का, होवे निज कल्याण।।

ॐ ह्रूँ श्री १०८ आचार्य वासुपूज्यसागर अत्र अवतर[२] संवौषट् आह्वाननम्। अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनम्। अत्र मम सन्निहितो भव[२] वषट् सन्निधिकरणम्। पुष्पांजलिं क्षिपामि।

कलशा सजा के हम, नीर भरा के हम,
लाये हैं वासुपूज्य गुरुवर, के चरणों में[२]
जन्म जरान्तक मेरा, नाश हो जाये सारा
आश लेकर आये हैं, गुरुवर चरणों में[२] ।।१।।

ॐ ह्रूँ श्री आचार्य वासुपूज्य सागराय जन्मजरा मृत्यु विनाशनाय जलं निर्व. स्वाहा।

मलयागिरी का चंदन, घिस घिसा के हम,
लाये हैं वासुपूज्य गुरुवर, के चरणों में[२]
निज अंतर में शीतलता भर दो
आश लेकर आये हैं, गुरुवर चरणों में[२] ।।२।।

ॐ ह्रूँ श्री आचार्य वासुपूज्य सागराय भवाताप विनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

तंदुलपुंज को, क्षाल कराके हम
लाये हैं वासुपूज्य गुरुवर, के चरणों में[२]
नाश हो करमों का, अक्षय पद पाऊं मैं
आश लेकर आये हैं, गुरुवर चरणों में[२] ।।३।।

ॐ ह्रूँ श्री आचार्य वासुपूज्य सागराय अक्षय पद प्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

गंध मिटाने को, पुष्प संजोके हम
लाये हैं वासुपूज्य गुरुवर, के चरणों में[२]
काम व्यथा से गुरु, मुक्ति दिला दो हमें
आश लेकर आये हैं, गुरुवर चरणों में[२] ।।४।।

ॐ ह्रूँ श्री आचार्य वासुपूज्य सागराय कामबाण विनाशनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

बरफी पेड़ा के थाल भरा के हम
लाये हैं वासुपूज्य गुरुवर, के चरणों में[२]
क्षुधा मिटादो गुरु, भ्रमण छुड़ा दो मेरा
आश लेकर आये हैं, गुरुवर चरणों में[२] ।।५।।

ॐ ह्रूँ श्री आचार्य वासुपूज्य सागराय क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दीपक की ज्योत में घृत पुरा के हम

लाये हैं वासुपूज्य गुरुवर, के चरणों में२
अंतर मन का तम मिटा दो गुरु
आश लेकर आये हैं, गुरुवर चरणों में२ ।।५।।

ॐ ह्रूँ श्री आ. वासुपूज्य सागराय मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

धूप सुगन्धित, द्रव्य बना के हम
लाये हैं वासुपूज्य गुरुवर, के चरणों में२
अन्तर कर्मों की, ज्वाला मिटा दो मेरी।
आश लेकर आये हैं, गुरुवर चरणों में२ ।।७।।

ॐ ह्रूँ श्री आ. वासुपूज्य सागराय अष्ट कर्म दहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

बादाम श्रीफल और छुहारा हम
लाये हैं वासुपूज्य गुरुवर, के चरणों में२
मोक्ष महाफल, दे दो गुरूवर
आश लेकर आये हैं, गुरुवर चरणों में२ ।।८।।

ॐ ह्रूँ श्री आ. वासुपूज्य सागराय मोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

अष्ट द्रव्य का, थाल सजा के हम
लाये हैं वासुपूज्य गुरुवर, के चरणों में२
पद अनर्घ मैं, पाऊं गुरूवर
आश लेकर आये हैं, गुरुवर चरणों में२ ।।९।।

ॐ ह्रूँ श्री आ. वासुपूज्य सागराय अनर्घ्य पद प्राप्तये अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

मुख से कहत न बन सके, लिखूं कलम छुट जाय
गुण हजारों हैं भरे, कुछ कुछ कहत सुनाय

पुष्पांजलिं

जयमाल सुनाता हूँ मैं आज, श्री वासुपूज्य गुरुवर जी की
जीवन गाथा लिखूं मैं आज, निज आतम के वैरागी की
कितनी प्यारी सूरत है मानो तो ये जिनमूरत हैं
ज्ञानी ध्यानी ये गुरुवर हैं समता ममता के धारी हैं
बुन्देल खण्ड की पुण्य धरा, वो नगरि महेवा प्यारी थी
जहाँ जन्म लिया गुरु वासुपूज्य ने, सौ सौ खुशियां छाईं थीं
बालपने में नाम आपका, दयाचन्द अतिप्यारा था
भाई बहनों और माता पिता की, वो आँखों का तारा था
जब तरुणाई तन पर छाई, वैराग्य की राह पै कदम बढ़े
श्री पारस सागर गुरुवर के चरणों में जाकर आप पड़े

संसार के बन्धन में गुरुवरजी तुम्हें डालने वाले थे
भोले क्या जाने महिमा इनकी, ये जिनवर के प्यारे थे
बालपने में ही जिनवर से, तुमने नाता जोड़ा था
संसार के बन्धन का मन वच से तुमने नाता तोड़ा था
जब जन्म लिया गुरुवर तुमने, नगरी में खुशियां छाईं थीं
नर नारी ने मिल प्रेम भाव से, लोरी सब ने गाईं थीं
नगर सागवाड़ा में तुमने, भेष दिगम्बर धारा था
पारस सागर गुरुवर का, बस एक अमोल नजारा था
संसार में ना कोई है गुरु, बस तेरा एक सहारा है
प्राणों से प्यारा नाम गुरुवर, वासुपूज्य तुम्हारा है
जिनकी कुक्षी से जन्म लिया, वो माता रामा बाई थी
कालीचरण पिता के घर में, ढेरों खुशियाँ छाईं थीं
कुछ पुण्य उदय से गुरुवरजी, हम तेरे दर को पाये हैं
जगजाल से छुट जायें, यही आशिका लेने आये हैं
नैया तो मेरी भटक रही, भव भँवरों में वो डूब रही
खेवटिया गुरुवर तुम ही हो, भव सागर पार लगा देना
तेरी नजरों में सम होवे, चाहे वो मित्र वा शत्रु हो
हितकारी गुरुवर तुम ही हो, कल्याणी गुरुवर तुम ही हो
घोर परीषह कितने हो, सब शान्त भाव से सहते हो
जो शरण में तेरी आते हैं वे सच्ची राहें पाते हैं

धत्ता

जय गुरु गुण गाऊं, भक्ति रचाऊं, बलि बलि जाऊं, तव चरणे।
नित पूज रचाऊं, मन हर्षाऊं, वीन बजाऊं, मन भाऊं तव चरणे।।

ॐ ह्रूँ आ. श्री १०८ वासुपूज्यसागराय जयमाला पूर्णार्घं निर्वपामीति स्वाहा।

दोहा- वासुपूज्य गुरुराज जी, सब जन के हितकार
पूर्ण हुई जयमालिका, खुशियां अपरम्पार

(पुष्पांजलिं क्षिपामि)

रचयिता संघस्थ बा.ब्र. सुगन्ध कुमार जैन

प. पू. आचार्य श्री वासुपूज्य सागरजी महाराज की पूजन नं.- २

हृदय कमल में आन विराजो मेरे हो गुरुराज
मन वच तन से पूज रचाऊँ तुम मेरे महाराज
नाम तिहारा वासुपूज्य सागर है वो बड़ा साज
भक्ति भाव से पूजा रचाऊँ, अष्ट द्रव्य ले आज

ब्रह्मचर्य एवं ८४ लाख उत्तरगुण मंत्र विधान

ॐ ह्रूँ श्री १०८ आचार्य वासुपूज्यसागराय अत्र अवतर[२] संवौषट् आह्वाननम्। अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनम्। अत्र मम सन्निहितो भव[२] वषट् सन्निधिकरणम्। पुष्पांजलिं क्षिपेत

तर्ज (देख तेरे संसार की हालत.....)

वासुपूज्य महाराज की महिमा, गाऊं कर ले साज
कि मैं तो पूजा रचाऊँ आज

(अन्तरा)

जल की झारी लेकर आया, मन मंदिर में गुरु को बुलाया
जन्म जरा के नाशन हेतू, गुरु तेरे चरणों में लाया
युगल करों से कलशा भरकर, नीर चढाऊं साज - कि मैं तो.....।।१।।

ॐ ह्रूँ श्री आचार्य वासुपूज्य सागराय जन्मजरा मृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

मलयागिरि चन्दन घिस कर लाया, मन में गुरुवर को है समाया
संसार ताप के नाशन हेतू, गुरु तेरे चरणों में लाया
युगल करों से चरण कमल पै - चन्दन चढाऊं साज - कि मैं तो.....।।२।।

ॐ ह्रूँ श्री आचार्य वासुपूज्य सागराय भवाताप विनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

तंदुल पुंज को क्षाल कराया, मन मंदिर में गुरु को बिठाया
अक्षय पद की प्राप्ति हेतु मैं, गुरु तेरे चरणों में लाया
युगल करों से शालि पुंज ले - गुरु को चढाऊं साज - कि मैं तो.....।।३।।

ॐ ह्रूँ श्री आचार्य वासुपूज्य सागराय अक्षय पद प्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

जुही मोगरा चमेली लाया, गुरुवर मेरे मन को भाया
काम बाण के नाशन हेतु, गुरु तेरे चरणों में चढाऊं
युगल करों में प्रसून आजले - गुरु को चढाऊं साज - कि मैं तो.....।।४।।

ॐ ह्रूँ श्री आचार्य वासुपूज्य सागराय कामबाण विनाशनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

लाडू पेड़ा बरफी लाया, मन मंदिर में गुरु को बिठाया
क्षुधा रोग के नाशन हेतु, गुरु तेरे चरणों में लाया
युगल करों में मिष्ट पक्व ले, गुरु को चढाऊं साज - कि मैं तो..... ।।५।।

ॐ ह्रूँ श्री आचार्य वासुपूज्य सागराय क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

बाती युत घृत दीप ले आया, गुरुवर तेरे गुण को गाया
मोहान्धकार के नाशन हेतु, गुरु तेरे चरणों में आया
युगल करों में दीप ज्योति ले - गुरु को चढाऊं साज - कि मैं तो.....।।६।।

ॐ ह्रूँ श्री आ. वासुपूज्य सागराय मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

अगर तगर को कूट कुटाया, मन मंदिर में गुरु को बिठाया
अष्ट कर्म के नाशन हेतु, गुरु तेरे चरणों में लाया
युगल करों में धूप चूर्ण ले - गुरु को चढाऊं साज - कि मैं तो..... ।।७।।

ॐ ह्रूँ श्री आ. वासुपूज्य सागराय अष्ट कर्म दहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

केला बेला आम ले आया, चरण रज ले मैं तो नहाया
मोक्ष महाफल पाने हेतु, गुरु तेरे चरणों में लाया
युगल करों में मीठे फल ले - गुरु को चढाऊं साज - कि मैं तो..... ।।८।।

ॐ ह्रूँ आ. वासुपूज्यसागराय मोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

अष्ट द्रव्य का थाल सजाया, मन मंदिर में गुरु को बिठाया
पद अनर्घ के पाने हेतु, गुरु तेरे चरणों में लाया
युगल करों में जल फलादि ले - गुरु को चढाऊं साज - कि मैं तो.... ।।९।।

ॐ ह्रूँ आ. वासुपूज्य सागराय अनर्घ्य पद प्राप्तये अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

दोहा- आगम की राहों पे चलते हो मेरे गुरुराज
ज्ञान करादो आगम का रखदो मेरी लाज
तर्ज- चलो सम्मेद शिखर चालो.....
तीरथ करलो पुण्य कमा लो.....

आवो जयमाल रचावो रे,
हाथों में श्रीफल को लेके गुरु गुण गावो रे
चलो जयमाल रचावो रे

(अन्तरा)

मध्य प्रान्त की पुण्य धरा, बुन्देल खण्ड बड़ा प्यारा
ग्राम महेवा जन्म लिया गुरुवर का बड़ा नजारा
जय गुरुवर की बोलो - पूज रचा जयमाल रचा के पापों को धोलो
आवो जयमाल रचालो रे - हाथों में .....
छुप छुप देखे, सुन सुन दौडे, हंस हंस आवे रे
बालक की महिमा को जन जन मन में बसावे रे - जय०
कालीचरण पिता थे तुम्हारे, माता रामाबाई
बहन तीन थी प्यारी प्यारी, तीन थे तुम तो भाई - जय०
तरुणपना तन में छाया, वैराग्य उमड़ कर आया
पारस सागर गुरुवर के चरणों में तुम तो जाया - जय०
बालपने में बन्धन तोड़ा, जिनवर से नाता जोड़ा
परिवार की मोह माया का, गुरु तुमने बन्धन तोड़ा - जय०
नगर सागवाड़ा में गुरुवर, तुमने तो दीक्षा पाई
प्यारेलाल पन्नाजी से तुमने तो शिक्षा पाई - जय०

ब्रह्मचर्य एवं ८४ लाख उत्तरगुण मंत्र विधान

वसगड़े जिला कोल्हापुर, महाराष्ट्र का प्यारा
पद आचार्य मिला पारस का, देखे समाधि नजारा - जय०
अरिहंत प्रभु के लख चौरासी, उत्तर गुण लिख दिये
हाथ जोड़ सुगन्ध रचे, आशीष गुरुवरजी ने दिये - जय०
नमन करूं में युगल करों से, गुरु गुण गाऊं भक्ति से
हाथ जोड़ के द्रव्य चढ़ाता, पूजा करता शक्ति से

ॐ ह्रूँ आ. श्री १०८ वासुपूज्यसागराय जयमाला पूर्णार्घं निर्वपामीति स्वाहा।

दोहा

दिल में सम्यक् धार कर, आवो नारी नर।
हाथों में ले पुष्पांजलिं, क्षेपण करते दर।।
(पुष्पांजलिं)

रचयिता संघस्थ बा.ब्र. सुगन्ध कुमार जैन

प. पू. आचार्य श्री वासुपूज्य सागरजी महाराज की पूजन नं.-३

आवो आवो जी - भक्ति करलो, आये हैं गुरुवरजी
आवो जी पूजा करलो जी
मन भक्ति में - झूमे मारो, आवोजी मेरे साथ
आवो जी पूजा करलो जी

ॐ ह्रूँ श्री १०८ आचार्य वासुपूज्यसागर अत्र अवतर^{२} संवौषट् आह्वाननम्। अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनम्। अत्र मम सन्निहितो भव^{२} वषट् सन्निधिकरणम्।

पुष्पांजलिं क्षिपेत

तर्ज (बाहुबली भगवान का मस्तकाभिषेक.....)

वासुपूज्य गुरुराज की पूजा रचावो
पूजा रचावो आवो गुरु गुण गावो
पूजा रचावो आवो पूजा रचावो

(अन्तरा)

स्वच्छ नीर भरी कनक कुंभ में, प्रासुक करके लाया
बालब्रह्म ये परम पूज्य हैं, गुरुवर मन में समाया
जन्म जरा के नाशन हेतु^{२} - प्रासुक निर्मल नीर चढ़ाया^{२}
ज्ञानी सन्त मिले ना जग में, पूजा का फल पाया, पूजा रचाया
मैं तो पूजा रचाया

ॐ ह्रूँ श्री आचार्य वासुपूज्य सागराय जन्मजरा मृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

मलयागिरि का चन्दन देखो, घिस घिस के रंग लाया।
अध्यात्म योगी ये परम पूज्य है, गुरुवर मन में समाया।।
संसार ताप के नाशन हेतु[२], चरण कमल चन्दन को चढाया[२]
ज्ञानीसन्त मिले ना जग में, पूजा का फल पाया, पूजा रचाया मैं.....

ॐ ह्रूँ श्री आचार्य वासुपूज्य सागराय भवाताप विनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

तंदुलपुंज को क्षाल करा के, सुवरण थाल भराया
सरल स्वभावी परम पूज्य हैं, गुरुवर मन में समाया
अक्षय पद की प्राप्ति हेतु[२] मैं -प्रेम भक्ति अक्षत को चढ़ाया[२]
ज्ञानी सन्त मिले ना जग में - पूजा का फल पाया, पूजा रचाया मैं.....

ॐ ह्रूँ श्री आचार्य वासुपूज्य सागराय अक्षय पद प्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

भाँति भाँति के सुमन तरु से, रंग बिरंगे लाया
आत्म वैरागी परम पूज्य ये गुरुवर मन में समाया
काम बाण के नाशन हेतु[२] - गुरु चरणों में पुष्प चढ़ाया[२]
ज्ञानी सन्त मिले ना जग में, पूजा का फल पाया, पूजा रचाया मैं.....

ॐ ह्रूँ श्री आचार्य वासुपूज्य सागराय कामबाण विनाशनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

मीठे मीठे मन भावन, पकवान बना के लाया
तत्त्व ज्ञानी ये परम पूज्य हैं, गुरुवरजी मन में भाया
क्षुधा रोग के नाशन हेतु[२] - मिष्ट पक्व गुरु चरण चढाया[२]
ज्ञानी सन्त मिले ना जग में, पूजा का फल पाया, पूजा रचाया मैं.....

ॐ ह्रूँ श्री आचार्य वासुपूज्य सागराय क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दश दिशि में जगमग जगमग, करने को दीप ले आया
सिद्धान्त शास्त्री ये परम पूज्य हैं, गुरुवर मन में समाया
मोह तिमिर के नाशन हेतु[२] - गुरुचरणों में दीप चढ़ाया [२]
ज्ञानी सन्त मिले ना जग में, पूजा का फल पाया, पूजा रचाया मैं.....

ॐ ह्रूँ श्री आ. वासुपूज्य सागराय मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

गंध मनोहर फैली देखो, दश दिशि में महकाई
तर्क वितर्की परम पूज्य हैं, गुरुवर मन में समाया
अष्टकर्म के नाशन हेतु[२] - गुरु चरणों में धूप चढ़ाया[२]
ज्ञानी सन्त मिले ना जग में, पूजा का फल पाया, पूजा रचाया मैं.....

ॐ ह्रूँ श्री आ. वासुपूज्य सागराय अष्ट कर्म दहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

रंग रंगीले सेव संतरे, भाँति भाँति फल लाया
शास्त्र पारखी परम पूज्य हैं, गुरुवर मन में समाया
महामोक्ष फल पाने हेतु[२] - फल गुरुवर चरणों में चढ़ाया[२]
ज्ञानी सन्त मिले ना जग में, पूजा का फल पाया, पूजा रचाया मैं.....

ॐ ह्रूँ श्री आ. वासुपूज्य सागराय मोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

जल फल आठों दरब मिलाया, गुरुवर तेरे गुण गाया
दृढ़ संकल्पी परम पूज्य हैं, गुरुवर मन में समाया
शिवपद पाने हेतु मैं तो[२] - अर्घ गुरु चरणों में चढाया[२]
ज्ञानी सन्त मिले ना जग में, पूजा का फल पाया, पूजा रचाया मैं.....

ॐ ह्रूँ श्री आ. वासुपूज्य सागराय अनर्घ्य पद प्राप्तये अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

दोहा- नमन करुं अरिहंत को सिद्ध प्रभु को प्रणाम
जयमाला अब मैं रचूं ले गुरुवर का नाम

पुष्पांजलिं

तर्ज- उड़ा जा रहा है पंछी.....

अरे साथी आ गुरुगुण गा ले, गुरुगुण गा जयमाल रचा ले

(अन्तरा)

प्रान्त मध्य की पुण्य धरा
उसके गुण गाऊं सुन लो जरा
पुण्य धरा का ग्राम महेवा, महेवा के लाल की सुन ले जरा
जन्म हुआ उत्सव मनाये
प्यारी प्यारी लोरी बहना गाये
रामा है माता कालीचरण पिता, बालपना कुछ क्षण में बीता
तरुणाई तन पर थी छाई
वैराग्य की घड़ी उमड के आई
बन्धन तोड़ा जीवन मोड़ा, परिवार के घर फन्द को तोड़ा
नाम तुम्हारा दयाचन्द भाई
पार्श्व सागर के चरणों में जाई
मगशिर सुदी दशमी तिथि आई, प्यारी दिगम्बरी दीक्षा पाई
नाम करण हुआ वासुपूज्य सागर
ज्ञान की तुम तो बन गये गागर
नैया मेरी भटक रही है, बीच भँवर में अटक रही है
भव सागर से निकालो गुरु
नैया मेरी कर दो शुरु
घोर परीषह कितने सहे - बडे काम गुरु तुमने किये
अरिहंतों के लख चौरासी
उत्तरगुण लिख दिये सांची
सुगन्ध मन वच तन से लिखे, गुरुवर के आगे सब है फीके

धत्ता

पूर्ण हुई जयमाल गुरु की, भक्ति में मन हर्षाऊं
अर्घ थाल में दीप जला के गुरु चरणों में चढाऊं

ॐ ह्रूँ श्री आ. वासुपूज्य सागराय जयमाला पूर्णार्घं स्वाहा।

दोहा- जन जन के मन में बसे - वासुपूज्य गुरुराज
पूर्ण हुई जयमालिका - पूजा रचाऊं आज

(पुष्पांजलिं)

रचयिता संघस्थ बा.ब्र. सुगन्ध कुमार जैन

प. पू. आचार्य श्री वासुपूज्य सागरजी महाराज की पूजन नं.-४

हाथ जोड़ कर शीश नमाऊँ गुरुवर तुमको आज।
जन्म मरण के नाशने पूजा करूँ ले साज।।

ॐ ह्रूँ श्री १०८ आचार्य वासुपूज्यसागर अत्र अवतर[२] संवौषट् आह्वाननम्। अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनम्। अत्र मम सन्निहितो भव[२] वषट् सन्निधिकरणम्।

पुष्पांजलिं क्षिपेत्

तर्ज (करता हूँ वन्दना.....)
करता हूँ पूजा गुरुवर की
वासुपूज्य सागर गुरुवर की - हाँ हाँ गुरुवर की
करता हूँ पूजा

(अन्तरा)
जन्म जरा मृत्यु के नाशन हेतु, झारी भर जल को लाया।
आश लेके आया, वर दे दो गुरु[२], बिन पूजा के मन ये भरता नहीं।।
करता हूँ पूजा - ऽऽऽ।।१।।

ॐ ह्रूँ श्री आचार्य वासुपूज्य सागराय जन्मजरा मृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

भव ताप के नाशन हेतू मैं, घिस घिस के चन्दन लाया।
आश लेके आया, वर दे दो गुरु[२], चन्दन को चरण में चढाता हूँ।।
करता हूँ पूजा - ऽऽऽ।।२।।

ॐ ह्रूँ श्री आचार्य वासुपूज्य सागराय भवाताप विनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

अक्षय पद की प्राप्ति हेतु मैं - तन्दुल को क्षाल कराया हूँ[२]
आश लेके आया, वर दे दो गुरु[२], अक्षत को चरण में चढाता हूँ
करता हूँ पूजा - ऽऽऽ।।३।।

ॐ ह्रूँ श्री आचार्य वासुपूज्य सागराय अक्षय पद प्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

काम बाणों के नाशन हेतु मैं, जुही चमेली गुलाब लाया²
आश लेके आया, वर दे दो गुरु², पुष्पों को चरण में चढाता हूँ
करता हूँ पूजा - ऽऽऽ।।४।।

ॐ ह्रूँ श्री आचार्य वासुपूज्य सागराय कामबाण विनाशनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

नाश करने क्षुधा रोगों को, बरफी पेड़ा मैं सन्मुख लाया हूँ²।।
आश लेके आया, वर दे दो गुरु², मिष्ठान्न को मैं चढाता हूँ।
करता हूँ पूजा - ऽऽऽ।।५।।

ॐ ह्रूँ श्री आचार्य वासुपूज्य सागराय क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

मोहान्ध को नाशन हेतु, घृत कर्पूर की ज्योति जलाई²।।
आश लेके आया, वर दे दो गुरु², दीपक को सजा के लाया हूँ।
करता हूँ पूजा - ऽऽऽ।।६।।

ॐ ह्रूँ श्री आ. वासुपूज्य सागराय मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

अष्ट करम के नाशन हेतु, अगर तगर की धूप लाया हूँ²।।
आश लेके आया, वर दे दो गुरु², दशांगी धूप चढाता हूँ।
करता हूँ पूजा - ऽऽऽ।।७।।

ॐ ह्रूँ श्री आ. वासुपूज्य सागराय अष्ट कर्म दहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

महा मोक्ष फल पाने हेतु, अनार श्रीफल लाया हूँ²।।
आश लेके आया, वर दे दो गुरु², श्रीफलों को चरण चढ़ाता हूँ।
करता हूँ पूजा - ऽऽऽ।।८।।

ॐ ह्रूँ श्री आ. वासुपूज्य सागराय मोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

अनर्घ पद पाने के हेतु, अष्ट द्रव्य को लाया हूँ²
आश लेके आया, वर दे दो गुरु², जलफलादिक द्रव्य को चढाता हूँ।
करता हूँ पूजा - ऽऽऽ।।३।।

ॐ ह्रूँ श्री आ. वासुपूज्य सागराय अनर्घ्य पद प्राप्तये अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

वासुपूज्य गुरुराजजी भवोदधि पार उतार।
वरणूँ अब जयमालिका गाऊँ जीवन सार।।
तर्ज- श्री सिद्धचक्र का पाठ करो.....
(अन्तरा)

श्री वासुपूज्य गुरुवर की महिमा गावो मिल ये ज्ञानी,
जयमाल रचावो प्राणी.....
पुण्यधरा बुन्देल खण्ड की, नगरि महेवा प्यारी थी, जहाँ जन्म लिया था
वासुपूज्य गुरु ज्ञानी - जयमाल रचावो प्राणी.....

ब्रह्मचर्य एवं ८४ लाख उत्तरगुण मंत्र विधान

गुरुभक्त श्री कालिचरणजी, दारा उनकी रामाजी - थे माता पिता गुरु
वासुपूज्य गुरु ज्ञानी - जयमाल रचावो प्राणी.....
नगरी में नाच नचाये थे, थाली डण्डा बजवाये थे, जब जन्म हुआ था
वासुपूज्य गुरु ज्ञानी - जयमाल रचावो प्राणी.....
दयाचन्द था नाम आपका, आँखों का तारा सबका, थे बालपने में
वासुपूज्य गुरु ज्ञानी - जयमाल रचावो प्राणी.....
जब योवन तन पर छाया था, विषयों में नहीं लुभाया था - दृढ़ किया मनको
वासुपूज्य गुरु ज्ञानी - जयमाल रचावो प्राणी.....
बन्धन पड़ने से ही पहले, घर बार त्याग तप करने चले - बंधन को तोडा
वासुपूज्य गुरु ज्ञानी - जयमाल रचावो प्राणी.....
एक दिवस गये गुरु दरपे जी, कचलुंच देख तुम हर्षेजी - वैराग्य हुआ था
वासुपूज्य गुरु ज्ञानी - जयमाल रचावो प्राणी.....
जय बोलो पारससागर की, निज आतम के वैरागी की - थे गुरु आपके
वासुपूज्य गुरु ज्ञानी - जयमाल रचावो प्राणी.....
नगर सागवाड़ा में तुमने, वस्त्रों को त्याग दिया क्षण में - यथाजात हुए
वासुपूज्य गुरु ज्ञानी - जयमाल रचावो प्राणी.....
अरिहंत के गुण छयालिस हैं, लखचौरासी उत्तर गुण हैं - लिख दिये आपने
वासुपूज्य गुरु ज्ञानी - जयमाल रचावो प्राणी.....
मन वच तन से ''सुगन्ध'' रचे, जयमाल गुरु की सबको जँचे - कल्याण कर दो
वासुपूज्य गुरु ज्ञानी - जयमाल रचावो प्राणी.....

दोहा- जन जन के मन में बसो - वासुपूज्य गुरुराज
पूर्ण हुई जयमालिका - पूजा रचाऊं आज

ॐ ह्रूँ श्री आ. वासुपूज्य सागराय जयमाला पूर्णार्घं स्वाहा।

जय माल रचाऊँ गुरु गुण गाऊँ भक्ति में मन हर्षाऊँ।
भक्ति कर में पुष्प हाथ ले पुष्पाजलिं अर्पण करूँ।।
पुष्पांजलिं क्षिपामि

रचयिता संघस्थ बा.ब्र. सुगन्ध कुमार जैन

प. पू. आचार्य श्री वासुपूज्य सागरजी महाराज की पूजन नं.-५

सम्यक् डालों पे लगे तीन रतन अमोल
दर्शन, ज्ञान, चारित्र को, करले भाई तू मोल
वासुपूज्य गरुराजजी सन्तों में अनमोल
श्रद्धा भक्ति से तूं आ पूजा मुख से बोल

ॐ ह्रूँ श्री १०८ आचार्य वासुपूज्यसागर अत्र अवतर[२] संवौषट् आह्वाननम्। अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनम्। अत्र मम सन्निहितो भव[२] वषट् सन्निधिकरणम्।

पुष्पांजलिं क्षिपेत्

तर्ज (वासुपूज्य का रूप बनाना.....)

वासुपूज्य की पूजा रचावो-अष्ट द्रव्य को लेके आवो

(अन्तरा)

दुःखी प्राणी जगत के सारे-गुरु तुम ही तारण हारे-२
जन्म जरा मरण को निवारे-जल चढ़ाये मिल के सारे - वासुपूज्य०

ॐ ह्रूँ श्री आचार्य वासुपूज्य सागराय जन्मजरा मृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

तृष्णा की खाई अपार है - मेटो उसमें ही सार है-२
संसार ताप को निवारे - चन्दन चढ़ाये मिल के सारे- वासुपूज्य०

ॐ ह्रूँ श्री आचार्य वासुपूज्य सागराय भवाताप विनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

क्षयकारी है यह जग सारा - नम्बर उसमें है हमारा-२
अक्षय पद मिले गुरुजी हमे - अक्षत को चढ़ाके चरण नमे - वासुपूज्य०

ॐ ह्रूँ श्री आचार्य वासुपूज्य सागराय अक्षय पद प्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

पारिजात मंदार मैं लाया - गुरु चरणन ढिग चढाया
काम बाण नशे गुरु मेरा - मिल जाये सहारा तेरा-वासुपूज्य०

ॐ ह्रूँ श्री आचार्य वासुपूज्य सागराय कामबाण विनाशनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

पकवान नवीने लाया - क्षुधा मेटन में चढ़ाया
क्षुधा मेरी नश जाये - गुरु तेरी महिमा गाये-वासुपूज्य०

ॐ ह्रूँ श्री आचार्य वासुपूज्य सागराय क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

तुम ज्ञान प्रकाश के धारी - मोहान्ध मेरी निवारी
दीपक लेके मैं चढ़ाया - अन्धकार मिटवाने आया-वासुपूज्य०

ॐ ह्रूँ आ. वासुपूज्य सागराय मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

मैं अगर तगर को मिलाया - कृष्णागरु धूप बनाया
अष्ट करम के नाशन हेतु - धूप चढ़ाने घी मैं लाया -वासुपूज्य०

ॐ ह्रूँ आ. वासुपूज्य सागराय अष्ट कर्म दहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

कंचन की थाल भरी मैं - सुरस पावन फल लाया
मोक्ष फल की आश को लेके - गुरु चरण मैं तो चढ़ाया - वासुपूज्य०

ॐ ह्रूँ श्री आ. वासुपूज्य सागराय मोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

जल फल आठों मैं मिलाया, चढ़ाने को अर्घ बनाया
लेकर मैं अर्घ चढ़ाया, अनर्घ पद पाने आया - वासुपूज्य०

ॐ ह्रूँ श्री आ. वासुपूज्य सागराय अनर्घ्य पद प्राप्तये अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

दोहा - आर्त रौद्र को छोड़ के धर्म शुक्ल हो ध्यान
वासुपूज्य गुरुराज जी, कितने हैं महान

तर्ज- मैंने तुम्हारी गागर से कभी पानी पिया.....

चलो जयमाला - आवो रचालो - मंदिर के अंगने आवो
गुरुगुण गावो रे
हो - ग्राम महेवा जन्म लिया - जन जन अति मन हर्षाया
बालक की महिमा सब गाया - बालक सबसे प्रीत पाया। चलो०
हो - रामा माता के तुम हो जाया - कालीचरण गोद बिठाया
बालकपन तुम पार लगाया - योवन में प्रवेश पाया । चलो०
हो - शादी को तुम ने ठुकराया - ब्रह्मचर्य व्रत अपनाया
पारस सागर गुरु पाया - दिगम्बर पद तुम अपनाया। चलो०
हो - आतम ध्यानी तुम कहाया - ८४ लख मंत्र बनाया
आचार्य पद तुम पाया - जयमाला मिल हम सब गाया । चलो०
दोहा - पूर्ण हुई जयमालिका - भवोदधि पार उतार
आशीष दो सुगन्ध को - मिले जीवन का सार

ॐ ह्रूँ श्री आ. वासुपूज्य सागराय जयमाला पूर्णार्घं निर्वपामीति स्वाहा।

दोहा - आदि अन्त प्रणमूं सदा - हाथ जोड़ शिर नाय।
बार बार पूजा करुं - ऐसी भावना भाय।।

पुष्पांजलिं क्षिपामि

रचयिता संघस्थ बा.ब्र. सुगन्ध कुमार जैन

प. पू. आचार्य श्री वासुपूज्य सागरजी महाराज की पूजन नं.-६

श्री गुरुचरण नमूं कर जोड़ - गुरु जीवन को दे दो मोड़।
सम्यक् संघ मिथ्या का जोड़ - मिथ्या को जड़ से दो तोड़।।

ॐ ह्रूँ श्री १०८ आचार्य वासुपूज्यसागर अत्र अवतर[३] संवौषट् आह्वाननम्। अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनम्। अत्र मम सन्निहितो भव[३] वषट् सन्निधिकरणम्। पुष्पांजलिं क्षिपेत्

तर्ज (श्री सिद्धचक्र का पाठ करो .....)

हाथों में कलशा लेकर के, जल को चढ़ाने आजा
मंदिर में गुरु विराजा।
जन्म जरा मृतु क्षय करन के, गुरु के द्वारे आजा
मंदिर में गुरु विराजा।।

ॐ ह्रूँ श्री आचार्य वासुपूज्य सागराय जन्मजरा मृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

चन्दन मलयागिरि लेकर के, गुरु चरण चढ़ाने आजा
मंदिर में गुरु विराजा।
संसार ताप क्षय कारण हेतु, गुरु के द्वारे आजा
मंदिर में गुरु विराजा।।

ॐ ह्रूँ श्री आचार्य वासुपूज्य सागराय भवाताप विनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

चोखा शुचि नीर से क्षाल करा, आकर के तू चढ़ाजा
मंदिर में गुरु विराजा।
अक्षय पद मिल जाये आश ले, गुरु को शीश नवाजा
मंदिर में गुरु विराजा।।

ॐ ह्रूँ श्री आचार्य वासुपूज्य सागराय अक्षय पद प्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

कुन्द चमेली भाँति भाँति के, सुमन तूं ले आ साजा
मंदिर में गुरु विराजा।
कामबाण ना बढ़े न मेरा, धीरे-धीरे क्षय हो जा
मंदिर में गुरु विराजा।।

ॐ ह्रूँ श्री आचार्य वासुपूज्य सागराय कामबाण विनाशनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

पापर घेवर मन भावन और चढ़ाये खाजा
मंदिर में गुरु विराजा।
अनादि काल की क्षुधा मिटे, भैया मंदिर में आजा
मंदिर में गुरु विराजा।।

ॐ ह्रूँ श्री आचार्य वासुपूज्य सागराय क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

मणिमय दीपक जगमग करता, आरति लेके आजा
मंदिर में गुरु विराजा।
मोहअन्ध के नाशन हेतु, मंदिर के द्वारे आजा
मंदिर में गुरु विराजा।।

ॐ ह्रूँ श्री आ. वासुपूज्य सागराय मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

अगर तगर घनसार मिलाके, धूप ये देखो साजा

मंदिर में गुरु विराजा।
कर्म अष्ट रिपु नष्ट हैं करजे, बिन पूजा के ना जा
मंदिर में गुरु विराजा।।

ॐ ह्रूँ श्री आ. वासुपूज्य सागराय अष्ट कर्म दहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

निंबू श्रीफल - सेव संतरा, ऋतु ऋतु के फल ताजा
मंदिर में गुरु विराजा।
मोक्ष फल को प्राप्त करो - बिन पूजा के तूं ना जा
मंदिर में गुरु विराजा।।

ॐ ह्रूँ श्री आ. वासुपूज्य सागराय मोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

अष्ट द्रव्य मिश्रित करके मैं, अर्घ बनाया साजा
मंदिर में गुरु विराजा।
पद अनर्घ पाने की आशा - पूजा का फल तूं पाजा
मंदिर में गुरु विराजा

ॐ ह्रूँ श्री आ. वासुपूज्य सागराय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

दोहा - गुरुवर मेरे दिल बसो, भव से काढ़न हार।
तेरी महिमा क्या बताऊँ, वो है अपरम्पार।।

पुष्पांजलिं क्षिपामि

जयमाला

तर्ज (हिन्द देश के रहने वाले.....)

गुरुवर की जयमाल सुनाऊं - उनके गुण को गाऊं रे
वासुपूज्य है नाम तिहारा - तोरी महिमा सुनाऊं रे
माता की कुक्षी से पाया तुमने तो था छः नम्बर
जिसके नीचे खेल खेलते थे वो, महेवा का अम्बर - गुरु०
पढ़ने में भी नहीं कम थे - लाते थे पहला नम्बर
धर्म भावना अन्दर जागी - त्याग दिया फल उदुम्बर - गुरु०
कालीचरण - माँ रामा के पुत्रों में था तीसरा नम्बर
शादी को ठुकराया तुमने छोड़ दिया सब आडम्बर - गुरु०
रंगीन कपड़े छोड़े तुमने, श्वेत धार लिया अम्बर
बाल ब्रह्मचारी पारस के शिष्य थे पहले नम्बर - गुरु०
पार्श्व गुरु से दीक्षा ले बन गये छोटे से दिगम्बर
दुबले पतले छोटे छोटे दिखने में थे एक नम्बर - गुरु०
पद आचार्य मिला पारस का बसगड़े का था अम्बर
लाख ८४ मंत्र लिखे सब मंत्रों में है एक नम्बर
मगशिर कृष्ण तीज को जनमे था वो महिना नवम्बर

ब्रह्मचर्य एवं ८४ लाख उत्तरगुण मंत्र विधान

नगर सागवाडा दीक्षा ली थी वो भी महिना दिसम्बर
दीक्षा भू पे जन्म पाया मैं वो भी महिना दिसम्बर
पूजा ये सुगन्ध रची थी वो भी महिना अक्टुम्बर

ॐ ह्रूँ श्री आचार्य १०८ वासुपूज्य सागराय जयमाला पूर्णार्घं निर्वपामीति स्वाहा।

दोहा - पुलकित मन मेरा हुआ, पूजा करके आज।
आशीष दो गुरुवर हमे, तुम मेरे महाराज।।

पुष्पांजलिं क्षिपेत

रचयिता संघस्थ बा.ब्र. सुगन्ध कुमार जैन

आरती-१

वासुपूज्य गुरूनी सब आरती उतारो
आरती उतारो सब आरती उतारो
वासुपूज्य गुरूनी सब आरती उतारो
अरे नाचो रे नाचो गाओ रे गाओ
नाचो रे नाचो गाओ रे गाओ आरती उतारो
वासुपूज्य गुरूनी.....
आजनो लाहो लीजो रे तमे आरती उतारो[२]
काले कोने देख्यो रे सब आरती उतारो
वासुपूज्य गुरूनी.....
लाख लाख दीवड़ा नी आरती उतारो[२]
जनम सफल करो आज रे सब आरती उतारो
वासुपूज्य गुरूनी.....
धन्य है माता रामा ओ देवी[२]
धन्य कालीचरन रा लाल रे सब आरती उतारो
वासुपूज्य गुरूनी.....
..... नगर मां वासुपूज्य पधारया
थाय छे जय जयकार रे सब आरती उतारो
वासुपूज्य गुरूनी.....

आरती-२

मैं तो आरती उतारूं रे, वासुपूज्य गुरुवर की
मैं तो पूजा रचाऊं रे, अन्तर्यामी की
जय जय वासुपूज्यसागर जय जय हो - जय[२]
गुरु लियो है जब अवतार, महेवा नगरी में
आनंदघन छाय अपार, सबके घर घर में
दीप लेऊं, धूप खेऊं, अक्षत नैवेद्य धरूं - पूजा रचाऊं रे
आ थाकी मैं तो - पूजा रचाऊं रे। मैं तो आरती.....
वन अठारह बरस के जाय, जाकर तप कीना
तप करके धर्म बढ़ाय, सबके मन भीना
दीप लेऊं, धूप खेऊं, अक्षत नैवेद्य धरूं - पूजा रचाऊं रे
आ थाकी मैं तो पूजा रचाऊं रे। मैं तो आरती.....
रामाबाई जो ध्यान लगाय, पावे शिवपुर को
आतम धन्य होय अपार, पावे शिवपुर को
दीप लेऊं, धूप खेऊं, अक्षत नैवेद्य धरूं - पूजा रचाऊं रे

आ थाकी मैं तो पूजा रचाऊं रे। मैं तो आरती.....
गुरु पार्श्व सागरजी के पथ, पट्ट पर विराजित हो
भव्य जीवों को सच्ची राह पे, तुम लगाते हो
क्रोध छोड़ूं, मान छोड़ूं, माया और लोभ छोड़ूं- पूजा रचाऊं रे
आ थाकी मैं तो पूजा रचाऊं रे। मैं तो आरती.....
नित झालर की बाजे झनकार, गुरुजी के द्वारे पर
दीप लेऊं, धूप खेऊं, अक्षत नैवेद्य धरूं - पूजा रचाऊं रे
आ थाकी मैं तो पूजा रचाऊं रे। मैं तो आरती.....

आरती-३

प्यारा लागे छे गुरूराज, आज थारी आरती उतारूं
आरती उतारूं थारी मूरत निहारूं, छोड़ा है घर संसार
आज थारी.....
लाख लाख दीवड़ा नी आरती उतारूं
लाख लाख तोरण बंधावो आज थारी०
प्यारा लागे.....
मंदिर मां घनन घनन घण्टा बाजे छे
झनन झनन झालर बाजे, आज थारी०
प्यारा लागे.....
माता है तोरी रामा जो देवी[२]
पिता छे कालीचरण दास, आज थारी०
प्यारा लागे.....
बुन्देल खंड मां, जन्म लियो छे[२]
धन्य छे महेवा ग्राम, आज थारी०
प्यारा लागे.....
..... नगर मां वासुपूज्य पधारया२
थाय छे जय जयकार, आज थारी०
प्यारा लागे.....
पानड़ी पानड़ी पोपट बोले[२]
मंदिर मंदिर श्रावक बोले[२]
बोले छे जय जयकार, आज थारी०
प्यारा लागे.....
लाख चौरासी मंत्रों के रचिता
वासुपूज्य गुरूराज, आज थारी०
प्यारा लागे.....

आरती-४

बोलो छम् छम् छम् छम्, बाजे घुंघरू[२]
हाथों में दीपक लेकर आरती करूं ओ हाथों में.....
वासुपूज्य आचार्य गुरू की[२], आज उतारे हम आरतियां हो[२]
ऐसे बाल ब्रह्म मुनिवर की हम सब उतारे आरतियां
बोलो छम् छम्.....
ग्राम महेवा जन्म लिया गुरू[२] सब जन मंगल गाये हो[२]
धन्य धन्य वो माता पिता जो[२] ऐसे लाल जनमते हैं हो[२]
बोलो छम् छम्.....
पिता कालीचरण के गुरू लाडला[२], माता रामाबाई के लाल हो[२]
धन्य धन्य महेवा की धरती[२], जहाँ जनमें वासुपूज्य गुरु हो[२]
बोलो छम छम.....
पार्श्व सागरजी के शिष्य सु प्यारे[२] शांत भाव चित्त में धरते हो
छत्तीस गुणों के पालन करता, काम क्रोध को वश में किया
बोलो छम् छम्.....
महिमा गुरूवर की अपरंपार है, वाणी में अमृत झरता है[२]
करुणा दया विशाल हृदय में, गुरुवर के हरदम रहती है हो[२]
बोलो छम् छम्.....
त्याग की मूर्ति मनोहर देखो, सब के मन में समा गई है हो[२]
शिवपुर की राह दिखाते, ऐसे रत्नत्रय के धारी[२]
बोलो छम छम.....
जब तक रहेंगे चांद और तारे, तब तक गुरुवर का नाम अमर हो२
संघस्थ सर्व त्यागी जनों की, हम सब उतारे आरतियां
बोलो छम् छम्.....
हाथों में दीपक.....

आरती-५

वासुपूज्य सागर की गुण आगर की
ले मंगल दीप जलाय हो, आज उतारूं आरतियां
पिता आपके कालीचरणजी, माता रामाबाई- गुरुवर माता०
ग्राम महेवा जन्म लियो है सब जन मंगल गाई२
न रागी की, न द्वेषी की, ले आतम ज्योति जलाय हो
मैं आज उतारूं.....
वासुपूज्य सागर.....
घोर उपवास व्रतों के धारी आतम ब्रह्म विहारी - गुरुवर आतम

खड़ग धार के पथ पर चल कर शिथिलाचार निवारी
गुरुवर शिथिलाचार.....
गृह त्यागी की, वैरागी की, ले मंगल दीप जलाय हो
मैं आज उतारूं.....
वासुपूज्य सागर.....
गुरुवर आज नयन से लखकर आलोकित सुख पाया- गुरुवर आलोकित
भक्ति भाव से आरती करके, फूला नहीं समाया
गुरुवर फूला नहीं.....
ऐसे ऋषिवर की ऐसे मुनिवर की करूं आरती बारंबार हो
मै आज उतारूं.....
वासुपूज्य सागर की.....

आरती-६

वासुपूज्य सागर गुरुवर, ज्ञान दिवाकर मुनिवर
आज उतारूं थारी आरती
हो योगी झुक झुक उतारूं थारी आरती
कालीचरण रा लाडला थे रामाबाई रा जाया२
महेवा में जन्म लियोजी, सब जन मन हर्षाया२
बन गया बाल ब्रह्मचारी, दीक्षा की मन में धारी
आज उतारूं.....
पंच महाव्रत पालन करता दस लक्षण के धारी
सत्य मधुर वाणी बरसाता, सब जन के हितकारी
आतम ज्योति जगाई, तन से ममता को हटाई
आज उतारूं.....
कठिन कठिन ये विधियां लेता घोर परीषह सहता
कर्म परीक्षा हरदम लेता उग्र उग्र तप करता
मन में समता धर लीनी तन की परवाह न कीनी
आज उतारूं.....
किस विध महिमा गाऊं थारी शब्द कहां से लाऊं
चरणों में म्हने शरणो दीजो भव सागर तिर जाऊं
अरजी को चित्त में धरजो, हम सब ने पार उतारो
आज उतारूं.....
पार्श्व सिन्धु के पथ पर गुरूवर आप विराजित हो
धर्म की नैया खेने वाले आप यतिवर हो
बांह पकड़ लो स्वामी, तारो हो अंतर्यामी
आज उतारूं.....

अरे ! ये क्या हुआ, आपने हमें अपना बना लिया।
हम आये थे आपको अपना बनाने के लिये।।
परम पूज्य गुरुवर आचार्य वासुपूज्यसागरजी महाराज ने अपने व्यक्तित्व से, अपनी चर्या से, अपनी आत्मसाधना से तप, त्याग और संयम की आराधना से केवल अपने उदय स्थान (जन्म स्थान) को ही नहीं अपितु सर्वत्र भारत के भू-भाग को, जैन जैनेतर समाज के मर्मस्थलों को छूकर उसी प्रकार आलोकित किया, प्रभावित किया जैसे सूर्य आकाश में उदयाचल पर उदित होकर सम्पूर्ण भूमण्डल को आलोकित करता है। यह अत्युक्ति नहीं है, यह उनकी अपनी विशेषता है। एक बार उनके पास आकर तो देखिये, एक बार उनके पास बैठ कर तो देखिए, आपकी सारी जिज्ञासाओं का, शंकाओं का समाधान आपको मिल जायेगा। उनकी साधना और साधुता सब कुछ कह देगी। मैं तो यह कह सकता हूँ कि-
" कुछ लोगों की कुछ बातों में कुछ तो अन्तर होता है।
कुछ मन में उतर जाते हैं, कुछ मन से उतर जाते है।। "

पं. रतनचन्दजी
एम. ए. आचार्य

३७५०० प्रमादों के निकालने का गूढ़ यंत्र

स्त्रीकथा १ देशकथा ८ देशकालानुचितकथा १५ कलहकथा २२	अर्थकथा २ भाषाकथा ९ भंडकथा १६ परिग्रहकथा २३	भोजनकथा ३ गुणबंधकथा १० मूर्खकथा १७ कृष्यादिआरंभकथा २४	राजकथा ४ देवीकथा ११ आत्मप्रशंसाकथा १८ संगीतवाद्यकथा २५	चोरकथा ५ निष्ठुरकथा १२ परपरिवादकथा १९	वैरकथा ६ परपैशुन्यकथा १३ परजुगुप्साकथा २०	परपाखंडकथा ७ कन्दर्प कथा १४ परपीड़ाकथा २१

अनंतानुबंधी क्रोध ० अप्रत्याख्याना. माया १५० संज्वलन क्रोध ३०० अरति ४५०	अनंतानुबंधी मान २५ अप्रत्याख्यानावरण लोभ १७५ संज्वलन मान ३२५ शोक ४७५	अनंतानुबंधी माया ५० प्रत्याख्यानावरण क्रोध २०० संज्वलन माया ३५० भय ५००	अनंतानुबंधी लोभ ७५ प्रत्याख्यानावरण मान २२५ संज्वलन लोभ ३७५ जुगुप्सा ५२५	अप्रत्याख्यानावरण क्रोध १०० प्रत्याख्यानावरण माया २५० हास्य ४०० स्त्री वेद ५५०	अप्रत्याख्यानावरण मान १२५ प्रत्याख्यानावरण लोभ २७५ रति ४२५ पुरुष वेद ५७५	नपुंसक वेद ६००

स्पर्शनेन्द्रियाधीनता ०	रसनेन्द्रियाधीनता ६२५	घ्राणेन्द्रियाधीनता १२५०	चक्षु इन्द्रियाधीनता १८७५	कर्ण इन्द्रियाधीनता २५००	मन की आधीनता ३१२५

निद्रा ०	निद्रानिद्रा ६२५०	प्रचला ९३७५	प्रचलाप्रचला १२५००	स्त्यानगृद्धि १५६२५

द्रव्य प्रणेय ०	भाव प्रणेय १८७५०

ब्रह्मचर्य एवं ८४ लाख उत्तरगुण मंत्र विधान

पंचगुरूणांवन्दे प.पू. पार्श्वसागराय नमः

चौरासी लाख उत्तरगुणों का यह गूढ़यंत्र हैं प्रथम विषमप्रस्तार की अपेक्षा गूढ़यंत्र

आ०प्राय०	प्र०	तदु०	वि०	व्यु०	तप०	छेद	मूल	परिहार	श्रद्धान
१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०

आ०	अनु०	दृष्ट०	बादर०	सूक्ष्म०	छन्न०	शब्दा०	बहु०	अव्यक्त०	तत्सेवी०
०	१०	२०	३०	४०	५०	६०	७०	८०	९०

स्त्री०	प्रणी०	गंध०	प्रिय०	आभू०	गीतादि०	धन०	कु०	राज०	रात्रि०
०	१००	२००	३००	४००	५००	६००	७००	८००	९००

क्षमा	मार्दव	आर्जव	शौच	सत्य	संयम	तप	त्याग	आ०	ब्रह्म०
०	१०००	२०००	३०००	४०००	५०००	६०००	७०००	८०००	९०००

भू०	जल	अग्नि	वायु	प्र०	सा०	द्वी०	त्री०	च०	पं०
०	१००००	२००००	३००००	४००००	५००००	६००००	७००००	८००००	९००००

अ०	व्यति	अति०	अना०
०	१०००००	२०००००	३०००००

अहिंसा	सत्य	अचौर्य	ब्रह्मचर्य	अपरिग्रह	क्रोध त्याग	मान त्याग	माया त्याग	लोभ त्याग	भयत्याग	अरति त्याग	रति त्याग
०	४०००००	८०००००	१२०००००	१६०००००	२०००००	२४०००००	२८०००००	३२०००००	३६०००००	४०००००	४४०००००

जुगुप्सा त्याग	मनो.मं. त्याग	व.मं. त्याग	का.मं. त्याग	मि.द. त्याग	प्रमाद त्याग	पिशुनता त्याग	अज्ञान त्याग	इंद्रिय जय
४८०००००	५२०००००	५६०००००	६०००००	६४०००००	६८०००००	७२०००००	७६०००००	८०००००

ब्रह्मचर्य एवं ८४ लाख उत्तरगुण मंत्र विधान

पंचगुरूगुणांवन्दे प.पू. आ. पार्श्वसागराय नमः

चौरासी लाख उत्तरगुणों का यह गूढ़यंत्र हैं प्रथम समप्रस्तार की अपेक्षा गूढ़यंत्र

अहिंसा	सत्य	अचौर्य	ब्रह्मचर्य	अपरिग्रह	क्रोध त्याग	मान त्याग	माया त्याग	लोभ त्याग	भयत्याग त्याग	अरति त्याग	रति त्याग	जुगुप्सा त्याग
१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३
मनो.मं. त्याग	व.मं. त्याग	का.मं. त्याग	मि.द. त्याग	प्रमाद त्याग	पिशुनता त्याग	अज्ञान त्याग	इंद्रिय जय					
१४	१५	१६	१७	१८	१९	२०	२१					

अतिक्रमत्याग	व्यतिक्रमत्याग	अतिचारत्याग	अनाचारत्याग
०	२१	४२	६३

भू.की रक्षा	जल की रक्षा	अग्नि की रक्षा	वायु की रक्षा	प्रत्येक वनस्पति० रक्षा	साधारण वनस्पति० रक्षा	द्वींद्रिय० की रक्षा	त्रींद्रिय० की रक्षा	चौइंद्रिय० की रक्षा	पंचेन्द्रिय० की रक्षा
०	८४	१६८	२५२	३३६	४२०	५०४	५८८	६७२	७५६
क्षमा	मार्दव	आर्जव	शौच	सत्य	संयम	तप	त्याग	आकिंचन्य	ब्रह्मचर्य
०	८४०	१६८०	२५२०	३३६०	४२००	५०४०	५८८०	६७२०	७५६०
स्त्रीसंग त्याग	प्रणीत रसाहार०	गंधादि त्याग	प्रिय शैय्यासन०	आभूषण त्याग	गीतादि त्याग	धन त्याग	कुशील संगत्याग	राजसेवा त्याग	रात्रिभ्रमण त्याग
०	८४००	१६८००	२५२००	३३६००	४२०००	५०४००	५८८००	६७२००	७५६००
आकंपित दोष त्याग	अनुमानित दोष त्याग	दृष्ट दोष त्याग	बादर दोष त्याग	सूक्ष्म दोष त्याग	छन्न दोष त्याग	शब्दा कुलित० त्याग	बहुजन दोष त्याग	अव्यक्त० दोष त्याग	तत्सेवी दोष त्याग
०	८४०००	१६८०००	२५२०००	३३६०००	४२००००	५०४०००	५८८०००	६७२०००	७५६०००
आलोचना.	प्रतिक्रमण.	तदुभय.	विवेक.	व्युत्सर्ग.	तप.	छेद.	मूल.	परिहार.	श्रद्धान.
०	८४००००	१६८००००	२५२००००	३३६००००	४२०००००	५०४००००	५८८००००	६७२००००	७५६००००

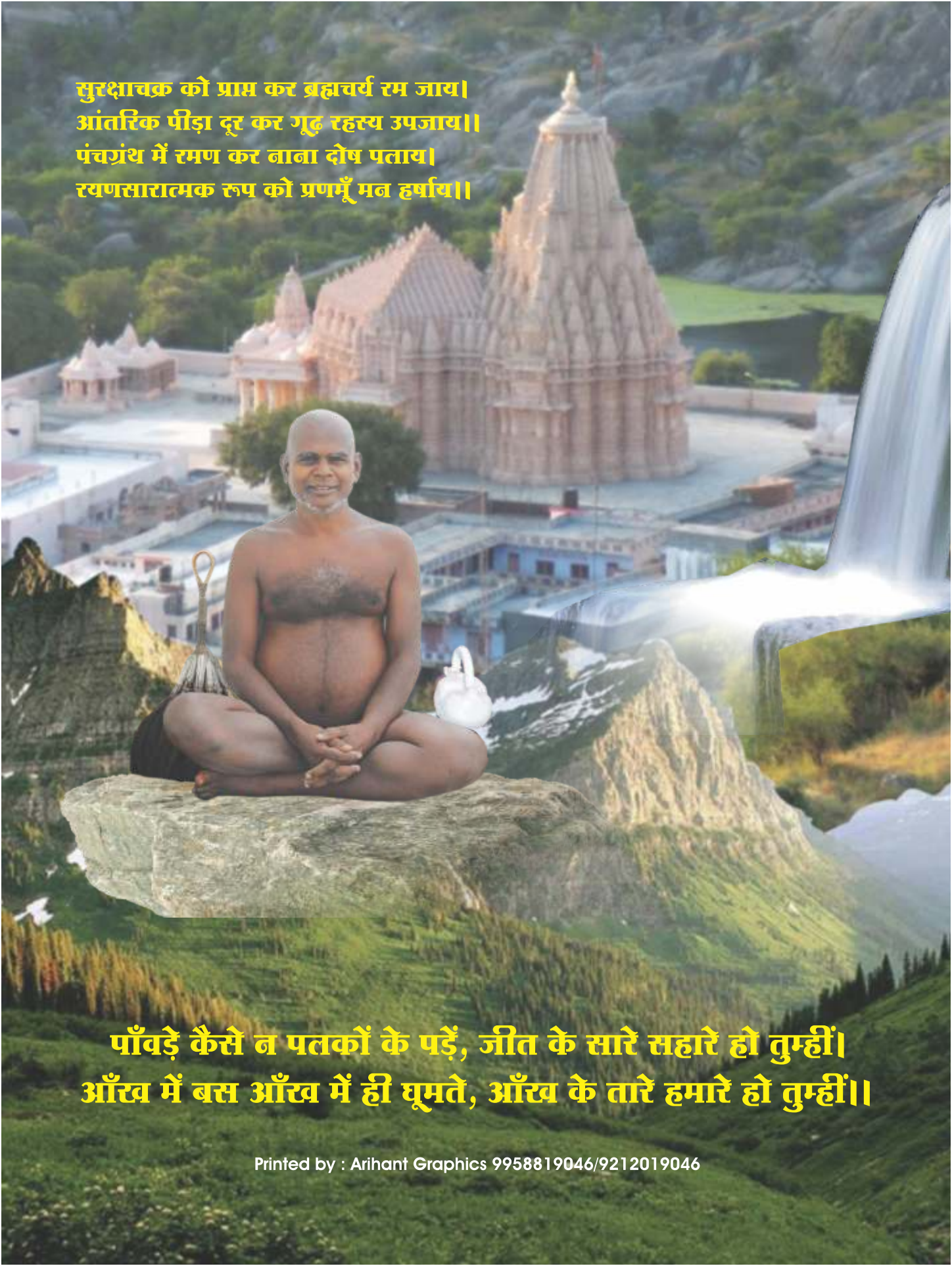

Printed by : Arihant Graphics 9958819046/9212019046